विप्लव प्रकाशन सं०—२५

सिंहावलोकन

दूसरा भाग

हिन्दुस्तानी-समाजवादी-प्रजातंत्र सेना द्वारा भारत में सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टा के सम्बन्ध में लेखक के संस्मरण ।

यशपाल

प्रकाशक

विप्लव कार्यालय, लखनऊ

मार्च १९५२ मूल्य ५॥) रुपये

प्रकाशक—
विप्लव कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक—
साथी प्रेस
लखनऊ

समर्पित हैं—

मेरी यह स्मृतियां अपने उन साथियों की स्मृति में जिनके प्रति विश्वास और जिनके सहयोग के भरोसे अपने देश की जनता के लिये मनुष्यता के अधिकार पाने के संघर्ष में मृत्यु का भय भी रुकावट न डाल सका था।

और

आज के अपने उन साथियों को जो पहले किये जा चुके प्रयत्नों में असफलता के अनुभवों और भविष्य में भय की आशंका देख कर भी अपना सर्वस्व बाजी पर लगाने में झिझक नहीं दिखा रहे। अपने यह अनुभव उनके लिये उपयोगी हो सकने के विश्वास में प्रस्तुत कर रहा हूं।

यशपाल

प्रसंग क्रम

भूमिका

पुस्तक के परिचय के सम्बन्ध में आवश्यक प्रायः सभी बातें सिंहावलोकन के पहले भाग के आरम्भ में लिखी जा चुकी हैं। अब फिर पुस्तक का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। पहले भाग के प्रकाशन के बाद पाठकों की प्रतिक्रिया रूप कुछ विचार या आलोचनायें सुनने को मिली है। हि० स० प्र० स० के अधिकांश साथियों ने उस भाग को बहुत ही निष्पक्ष और तटस्थ रूप में लिखा गया समझा है। दूसरा भाग प्रकाशित करते समय उन्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैंने इस भाग में भी अपनी चेतना में वैसा ही व्यवहार और दृष्टिकोण बनाये रखने का यत्न किया है।

एक दो साथियों से मुझे ऐसे भी सुझाव मिले हैं कि मेरी पुस्तक में कुछ साथियों या प्रकरणों की चर्चा छूट गई है। ऐसा हुआ है और इसका कारण है कि मैं पुस्तक को इतिहास के रूप में नहीं, अपनी स्मृतियों के रूप में लिख रहा हूं। जिन व्यक्तियों या घटनाओं से मेरा पर्याप्त परिचय नहीं रहा, उनके विषय में चुप रहना ही मैंने उचित समझा है। जिन घटनाओं और व्यक्तियों की चर्चा मैं आलोचनात्मक ढंग से न कर सकता था, उन्हें छोड़ ही दिया है।

एक-आध जगह से दबे-दबे स्वर में यह भी सुनने को मिला है कि मुझे जो बातें अपने अनुकूल जान पड़ीं, मैंने अपनी स्मृतियों में उन्हें ही स्थान दिया है और जो मेरे प्रतिकूल जा सकती थीं, उन्हें छोड़ गया हूँ। इस प्रकार की आलोचना का उत्तर यही दे सकता हूँ कि अतीत की उन घटनाओं के विषय मे लिखने का अधिकार और अवसर सभी को है। जो साथी उन घटनाओं की, अपनी स्मृति द्वारा उस समय पर अधिक प्रकाश डाल कर वास्तविकता के विश्लेषण में सहायता दे सकते हैं, उन्हें ऐसा अवश्य करना चाहिये। दूसरी ओर बहुत अधिक मुखों से सुना है कि मैंने अपनी अपेक्षा दूसरों की ही चर्चा और श्लाघा अधिक की है, मैं केवल पृष्ठभूमि में सहायक-पात्र के ही रूप में आया हूँ। उस भाग मे वर्णित घटनाओं में मेरा जितना भाग था, उससे अधिक अपनी बात कहना मुझे ठीक न जंचा। मैंने उस भाग में भी

अपने आपको विनय से या संकोच से छिपाया नहीं है। मुझे या आन्दोलन में मेरा भाग जानने की इच्छा इस भाग में अपेक्षाकृत अधिक पूरी हो सकेगी।

इस भाग मे आन्दोलन को बढ़ाने और हानि पहुँचाने वाली दोनों ही तरह की प्रवृत्तियों, घटनाओं का और उनसे सम्बन्धित साथियों का भी वर्णन मैंने किया है। उन घटनाओं पर लीपापोती कर भड़कीले आवरण चढ़ा देने से कोई लाभ न होता। 'सिंहावलोकन' की उपयोगिता उन भूलों का विश्लेषण कर उनसे कुछ निष्कर्ष निकाल सकने में ही है। अनेक भूलो में मैंने भी भाग लिया है। अपनी आलोचना करने में मैंने ममता या संकोच नहीं किया। भूलों का ठेका मैंने ही नहीं ले लिया था। जिन दूसरे साथियों से भूलें हुईं, उनकी चर्चा भी मैंने उसी स्पष्टवादिता से की है जैसे अपनी भूलों की।

हम लोग आज उन दिनों की सफलताओं और विफलताओं की पूंजी पर निर्भर नही कर रहे हैं। उस समय हमने जो कुछ भी किया आज छोटे मोटे इतिहास का अंग बन कर समाज के लिये विश्लेषण की चीजें बन चुकी है। उस समय उन घटनाओं के पात्र होने के कारण हम उन घटनाओं का विश्लेषण कर कार्य-कारण के सम्बन्ध नही जोड़ सकते थे। उस समय हमारे उद्देश्य और भावनायें ही हमारे दृष्टिकोण और परख को निश्चित कर सकती थीं। आज हम उन घटनाओं के परिणामों को कसौटी बना कर अपने तत्कालीन दृष्टिकोण और भावनाओं के औचित्यानौचित्य की जांच कर सकते है। उन घटनाओं मे व्यक्तिगत नाते का मोह छोड़ कर हम आलोचक बन सकें, यही हम लोगों को अब शोभा देता है।

यशपाल

होली, १२ मार्च १९५२

एक

छिन्न सूत्रों की खोज

काँगड़ा पहाड़ी नदियों की लम्बी-लम्बी गोरी बाहों के आलिंगन में लिपटी हरी-हरी पहाड़ियों पर छिटकी संक्षिप्त सी बस्ती सब से ऊँची पहाड़ी की चोटी पर एक बहुत बड़े किले के भग्नावशेष नीले आकाश की ओर सिर उठाये है। उत्तर-पश्चिम की ओर बहुत समीप ही सदा बर्फ से ढकी पहाड़ियाँ चाँदी के उजले ढेरों की तरह आँखों को चकाचौंध करती रहती हैं। मेरे मन में काँगड़ा के लिये सदा ही प्रबल आकर्षण रहा है, अब भी है। अनेक पहाड़ों मे घूम फिर कर भी मन सदा काँगड़ा की ओर उड़ जाने के लिये छटपटाता रहता है। फरारी की उस अवस्था में काँगड़ा की प्राकृतिक शोभा मुझे कुछ भी संतोष न दे रही थी। मैं उसे देख ही न पा रहा था। प्रतिक्षण यही चिन्ता थी कि इस छोटी सी बस्ती में ऐसे बहुत से लोग मुझे पहचानते हैं जिन्हें मैं अपनी फरारी का कारण और उद्देश्य नहीं बता सकता। मेरा यहाँ बने रहना निरापद नहीं। काँगड़ा में अपने सम्बन्धी वकील साहब के घर मे शरण लेना मेरे लिये ही आशंका का कारण न था बल्कि वकील साहब के लिये भी।

मेरे सामने एक ही मार्ग था कि किसी ऐसे बड़े नगर में जाकर टिकूं जहाँ हजारों-लाखों आदमी एक दूसरे को जाने-पहचाने बिना अपने अपने काम-काज में लगे, आस पास बने रहते हैं। ऐसी जगह जाकर अपने दल के शेष रह गये साथियों का पता लगाऊँ और कुछ नये लोगों को अपने विचारों के प्रति आकर्षित कर अपने दल का साथी बनाऊँ। विदेशी सरकार पर चोट करने के लिये हथियारों का संग्रह किया जाय। उस समय तक ऐसे एक ही नगर लाहौर से मैं परिचित था परन्तु वहाँ परिचितों की संख्या बहुत ही अधिक थी। लाहौर की

पुलिस भी मुझे थोड़ा बहुत पहचानती थी। मैंने जम्मू जाने का निश्चय किया।

जम्मू कांगड़ा की अपेक्षा उस समय भी बहुत बड़ा नगर था। सन् १९२६-२७ में दो ढाई महीने वहाँ रह चुका था। फिरोजपुर में कांग्रेस के कार्य के समय और नेशनल-कालेज तथा हिन्दू-संघ के दफ्तर के मित्र और परिचित कृष्णजी सन्यास लेकर आनन्द स्वामी बन चुके थे। उन्हों ने जम्मू के 'वेद-आश्रम' में राष्ट्रीय भावना से संगठन का एक केन्द्र बनाया था। इस केन्द्र में सहायता देने के लिए ही उन्हों ने मुझे बुला लिया था। नेशनल कालेज में गर्मी की छुट्टियाँ थीं इसलिए मैं जम्मू जा सका था। स्वामी जी गीता का उपदेश देकर भीम, अर्जुन और कृष्ण के आदर्श नौजवानों के सामने रखते थे। मैं नौजवानों को लाठी, गतका बिन्नौट, जुजुत्सू और छुरी से लड़ने और आत्मरक्षा का तरीका सिखाता था और खुदीराम बोस और लाला हरदयाल जैसे क्रांतिकारी लोगों की बातें करता था। कुछ नौजवान मेरी बातों की ओर आकर्षित भी होने लगे थे। उस समय कालेज की नौकरी के कारण वह सम्बन्ध छोड़कर लौट गया था। अब पुराने सम्बन्धों से लाभ उठाने की आशा थी। वहां साधारणतः परिचितों की संख्या भी कम ही थी।

जम्मू में मेरे एक सम्बन्धी चिरन्जीलाल रियासत की नौकरी में थे। उन्हीं के यहां पहुँचा। मेरे राजनैतिक दृष्टिकोण या विचारों से तो उन्हें क्या सहानुभूति होती परन्तु मेरे साहस के प्रति जरूर थी। उन्हें धोखे में न रख अपनी फरारी की बात कह दी। वे डरे नहीं। उन्हीं के यहां ठहरा। फरारी का अनुभव नहीं था इसलिए आरम्भ में दिन में बाहर बिल्कुल न निकलता। अवसरवश उनकी स्त्री और बाल-बच्चे उस समय जम्मू से बाहर अपने सम्बिन्धियों के यहां गये हुये थे। मैं दिन भर लेटा कोई पुस्तक पढ़ा करता और रात में निकल पुराने साथियों से सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा करता। पुराने साथियों में से केवल तीन-चार से बात की। इनमें से एक थे मास्टर साहब, दुबला-पतला, लम्बा शरीर, सांवला सा रंग। चौबीस वर्ष बीत चुके हैं, नाम याद नहीं रहा। इनकी मारफत एक नये साथी भागराम से परिचय हुआ। साथी भागराम और मेरा साथ बहुत दिन तक निभा। कई बार दोनों ने एक साथ जोखिमें झेलीं और मौत का सामना साथ-साथ किया। आखिर वह मुझ से पहिले ही गिरफ्तार हो गया। परिचितों में जो

काफी शिक्षित थे उनसे प्रायः सैद्धान्तिक बातचीत होती। अभिप्राय था कि वे अपने परिचय के क्षेत्र में विदेशी सरकार से संघर्ष और एक नयी आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था के लिए यत्न कर चेतना जगा सकें। इस प्रयोजन से कुछ पुस्तकों की भी आवश्यकता हुई।

इन्द्रपाल लाहौर, पुरानी अनारकली में ही जमा हुआ था। उसे पत्र लिखा कि बहिन प्रेमवती और दुर्गा भाभी से उपयोगी पुस्तकें ले कर भेज दें। इन में एक पुस्तक 'पामदत्त' की 'मार्डन इन्डिया' थी। यह पुस्तक उस समय ग़ैरकानूनी और ज़ब्त थी। 'मार्डन इन्डिया' को मैंने बड़े ध्यान से पढ़ा। इस पुस्तक से मुझे अंग्रेजी शासन के शोषक रूप को समझने में विशेष सहायता मिली। दिन के समय घर में निष्क्रिय बना रहता था। मैंने 'मार्डन इन्डिया' का अनुवाद सरल हिंदी में कर डाला। यह अनुवाद एक दो वर्ष बाद लाहौर के किसी प्रकाशक ने प्रकाशित भी किया था परन्तु उस पर न मेरा नाम था न पामदत्त का। परन्तु उससे उद्देश्य में कुछ सहायता मिली ही होगी।

'मार्डन इन्डिया' का अनुवाद कर देने और परिचितों के सीमित क्षेत्र द्वारा विदेशी सरकार से संघर्ष की भावना का प्रचार आरम्भ कर देने से ही मै सन्तुष्ट न हुआ। इस विचार से कि रियासत में ब्रिटिश भारत की अपेक्षा हथियार रखने के कानून शिथिल हैं, यहाँ हथियार पा लेना सुविधाजनक होगा, परिचितों द्वारा हथियार खरीदने की चेष्टा भी आरम्भ की। हथियार मिले तो परन्तु प्रायः देशी और पुराने ढङ्ग के। उदाहरणतः गज से भरे जाने वाले या टोपी लगाकर चलाये जाने वाले पिस्तौल या रिवाल्वर। यह हमारे लिए बेकार थे। बम बनाने की धुन भी लगी ही हुई थी। लाहौर की बम फैक्टरी में सुखदेव के साथ बम का मसाला बनाने का जो प्रयत्न किया था उस का अनुभव याद था। मैं निरन्तर अनुमान कर रहा था कि मसाला बनाने में जो भयंकर धुआं और गन्ध उठती है उसी के कारण पड़ोसियों को सन्देह हुआ होगा या हमारे रसायनिक पदार्थ खरीदने अथवा बम के खोल ढलवाने की जगह से ही हमारी फ़ैक्ट्री का सुराग़ पुलिस को लगा होगा।

अपनी पूरी बुद्धि और कल्पना शक्ति से मैं बम बनाने का ऐसा तरीका सोच रहा था जिससे कि कोई संदेह पैदा किये बिना, कोई बाहरी सहायता लिये बिना बम बनाया जा सके। बम बनाना और हथियार इकट्ठे करना ही मुझे उस समय क्रान्ति के लिये सब से प्रमुख और

आवश्यक बात जान पड़ रही थी और इस क्रान्ति को आरम्भ करने का साधन मेरी कल्पना में मुट्ठी भर सचेत और आत्म त्यागी नौजवान ही थे। अनेक वर्ष बाद कई दूसरे साथियों को भी क्रान्ति के उद्देश्य से फरारी की अवस्था में देखा। यह लोग क्रान्ति के लिये हथियार इकट्ठे करने और बम बनाने की बात नहीं सोचते थे और न मध्यम श्रेणी के परिमित क्षेत्र में ही क्रान्ति की भावना उत्पन्न कर देने से संतुष्ट थे। हम लोगों की भाँति इन लोगों के लिये भी गिरफ्तारी का भय था। समाजवादी क्रान्ति में विचार रखने वाले ऐसे मजदूर कार्य-कर्ता भी घरबार छोड़ कर क्रान्ति को ही जीवन का लक्ष्य बनाये थे। भरद्वाज, संतसिंह युसुफ और भी दूसरे अनेक कार्यकर्ताओं को मैंने ऐसी अवस्था में देखा है। इन लोगों ने पुलिस पर कभी गोली नहीं चलाई। वे गिरफ्तारी का भय सिर पर होते हुए भी निहत्थे, साधारण भेष बदले, रात-बिरात मजदूरों की बस्तियों में क्रान्ति के बीज बोते फिरते थे। हम लोगों ने भी, विशेष कर मैं अपनी ही बात कह रहा हूं अपना लक्ष्य तो समाजवादी क्रान्ति ही माना था परन्तु उस क्रान्ति का साधन मध्यम और निम्न-मध्यम वर्ग के गिने-चुने नौजवानों द्वारा क्रान्ति की विदेशी शासन विरोधी चेतना जगाना ही माना हुआ था। इसी के साधन स्वरूप मैं एक नये बम का आविष्कार करने और शस्त्र जुटाने की चेष्टा जम्मू में करता रहा।

अपनी कल्पना में नये बम की आयोजना तैयार कर ली। जम्मू में इस प्रकार के कामों के सहयोगी साथी भागराम और मास्टर साहब ही थे। बम का निर्माण कर सकने के लिये विस्फोटक पदार्थों के सम्बन्ध में जो कुछ साहित्य मिल सका, वह पढ़ डाला। अपनी योजना साथी भागराम और मास्टर साहब को समझाई। उन्हें भी विश्वास हो गया कि इस नये तरीक़े से बिना विशेष जोखिम के आवश्यक संख्या में बम तैयार किये जा सकेंगे। मेरी इस योजना का तत्व समझने के लिये सेना में व्यवहार किये जाने वाले साधारण बम (हैन्ड ग्रेनेड) का कुछ परिचय आवश्यक है। बम लोहे का एक अन्डाकार खोखला गोल होता है। इस गोले पर कुछ आड़े और पड़े कटाव बने रहते हैं। भीतर विस्फोटक पदार्थ रहता है। बम के ऊपर तमंचे के ढंग का एक घोड़ा लगा रहता है और बम के खोल के मुँह पर स्पर्श मात्र से आग पकड़ लेने वाला कोई पदार्थ टोपी में भरा रहता है। बम गिरने पर घोड़ा

के मुंह पर लगी, विस्फोटक पदार्थ की टोपी पर लगने से आग पैदा होकर तोड़े के सूत्र से भीतर भरे विस्फोटक पदार्थ में पहुँच जाती है। लोहे का गोला फट कर छोटे-छोटे टुकड़ों में छितरा जाता है और यह टुकड़े दूर दूर तक सब ओर घातक मार करते हैं।

इस तरीके के आधार पर मैंने नये बम की आयोजना तैयार की। जम्मू रियासत में तोड़ेदार बन्दूकों पर कोई लाइसेन्स न होने के कारण बारूद अनायास मिल सकता था। बारूद से कारतूस भर लेना कोई कठिन बात नहीं। शिकारी लोग प्रायः कारतूस के खोलों को स्वयं भर लेते हैं। विलायती कारतूसों पर निर्भर न करने के लिये हम लोगों ने आध इञ्च व्यास की पीतल की नली ले एक-एक इञ्च के टुकड़े काट, इन टुकड़ों का एक सिरा छेद की हुई टिकिया से मूँद कर कारतूस बना लेने का तरीका भी सोच लिया। ऐसे दो कारतूस बनाये गये। एक कारतूस को जंगल में जाकर अजमा भी लिया। अगला क़दम था, खोल तैयार करने का। उस के लिए तजवीज़ थी कि खोल 'प्लास्टर आफ़ पेरिस' का ढाल लिया जाय और उसमें शरीफ़े के दानों की तरह कारतूसों को सब ओर जड़ दिया जाय।

उपरोक्त बम के आविष्कार की सफलता में हम तीनों को पूरा विश्वास था परन्तु पर्याप्त संख्या में कारतूस बनाने और दूसरे विस्फोटक पदार्थ खरीद कर नये बम का परीक्षण कर सकने योग्य सामान खरीदने के लिये दाम नहीं थे। दो कारतूस बनाने के लिए पीतल की नली बाज़ार में एक लोहार से ही कटवा ली थी और उसके एक सिरे पर टाँका भी उसी से लगवा लिया था। ऐसे अधिक खोल दुकान से बनवाने पर लोहार को सन्देह हो जाने की आशंका थी। अपने आविष्कार के प्रति भरोसा कर मैंने बम के सम्बन्ध में सब काम स्वयं ही कर सकने के लिए आवश्यक औज़ार खरीद लेने का निश्चय किया। कह चुका हूं कि पैसे की कमी के कारण इस योजना को तुरन्त व्यवहार में लाने की सुविधा नहीं थी।

पैसे की कमी के अतिरिक्त दूसरे साथियों से अलगाव भी मुझे खल रहा था। सुखदेव कुछ दूसरे साथियों सहित गिरफ्तार हो चुका था; जो शेष थे उनमें से भगवती भाई को छोड़ कर कोई मुझ से अधिक जानने वाला न था। मुझे फ़रार हुए लगभग एक मास होने को आ रहा था। इस बीच मैं भगवती भाई के बारे में कुछ भी न जान सका।

मैं जानता था कि दिल्ली युक्त-प्रान्त और देश के दूसरे भागों में हमारे दल का संगठन मौजूद है। लाहौर मे समय-समय पर सुखदेव के साथ इनमें से अनेक साथियों को देखा भी था। परन्तु उनके ठीक नाम-धाम मालूम न थे, जो मालूम थे वे काल्पनिक थे। मुझे यह मालूम हो गया था कि बहिन प्रेमवति घूंघट निकाल सुखदेव के सम्बन्धियों के साथ जेल जा उस से मिल आई हैं। इन्द्रपाल की मार्फत मैंने इन्हें सुखदेव से दल के कुछ सूत्रों का पता ले लेने के लिये लिखा।

इसी समय समाचारपत्रों में पढ़ा कि लाहौर जेल में सुखदेव ने अनशन व्रत कर दिया है। मेरे पत्र के उत्तर में लाहौर से इन्द्रपाल ने भी इस समाचार का समर्थन किया कि सुखदेव सात दिन से अनशन किए हुए है। उस के निकट सम्बन्धी और वे भी केवल जेल अफसरों की उपस्थिति में ही उस से मिल सकते हैं। ऐसी अवस्था में कोई बात कैसे पूछी जा सकती थी? सुखदेव की प्रकृति से आशंका हुई कि शायद इस आदमी ने बिना विरोध गिरफ्तार हो जाने की ग्लानि में अनशन कर दिया है। यदि इस ने जिद में प्राण दे दिए तो साथियों से सम्बन्ध जोड़ सकने की कोई भी सम्भावना न रह जायगी। दल के दूसरे लोगों से सम्बन्ध जोड़ने के लिए मैंने लाहौर जाकर जेल में बन्द सुखदेव से मिलने का पूर्ण निश्चय किया। मैं चाहता था कि इन साथियों को अपना आविष्कार बताकर काम को आगे बढ़ाऊं। इस उत्साह में चुपचाप जम्मू में बैठे रहना सम्भव न रहा।

मैं जम्मू से चल रात नौ दस बजे लाहौर पहुँच गया। एक मास पश्चात् लाहौर आया था। मन में आशंका तो जरूर थी परन्तु लाहौर छोड़ते समय जैसी धुक-धुक और घबराहट अब नहीं थी। अभी तक रिवाल्वर या पिस्तौल भी पास नहीं था। अब यह विचार था कि यों चुपचाप छिपे रहने से भी फायदा क्या? जम्मू से चलते समय सावधानी के लिए ग्रामीण पंजाबी की सी वेष-भूषा में गया ताकि ध्यान आकर्षित न हो। सस्ते कपड़े का मैली ढीली लम्बीसी कमीज, तहमत और सिरपर ढीलो-ढाली पगड़ी। ऐसी अवस्था में 'पुरानी अनारकली' में इन्द्रपाल की बैठक में पहुँचा।

इन्द्रपाल 'पुरानी अनारकली' में एक मैली-कुचैली भोजनशाला के ऊपर दूसरी और तीसरी मन्जिल की कोठरियाँ किराये पर लिये था। बैठक पर "कातिब बिरादरान" (कातिबबन्धु) का बोर्ड लगा था।

उस के दो शिष्य और मित्र भी साथ रहते थे। इन्द्रपाल को विस्मय तो अवश्य हुआ परन्तु उसने अपने समीप बैठे साथियों के सम्मुख अपना विस्मय प्रकट न किया। इन्द्र पाल से एकान्त में अनुरोध किया कि शीघ्र ही दुर्गा भाभी या बहिन प्रेमवती को बुला लाये। दुर्गा भाभी के लिए काफी समय इधर उधर घूमे बिना पीछा करने वाली खुफिया पुलिस से पीछा छुड़ाना कठिन था। प्रेमवती लायलपुर से आयीं सुखदेव की सम्बन्धी स्त्रियों के साथ जेल जाकर उससे मिल आई थी। उन्हों ने बताया कि सुखदेव से कुछ पता ले लेना सम्भव नहीं क्योंकि बात करते समय जेल के अधिकारी समीप बैठे रहते हैं।

मैंने कहा, स्वयं जेल जाकर सुखदेव से मिलूँगा। मेरी बात से उन्हें आश्चर्य हुआ परन्तु मेरे आग्रह पर मान गई। मैंने उन्हें अपने नाप का एक सूट, जूते, हैट और एक अदालती वकालत नामे का प्रबन्ध साथी धन्वन्तरी या एहसान इलाही की मारफत कर लेने के लिये कहा।

अगले दिन दोपहर तक ये सब चीजें मिल गईं। मैं वकील बन कर जेल में सुखदेव से मिलने जा रहा हूँ, यह बात दुर्गा भाभी को भी मालूम थी। उन्होंने कभी किसी दुस्साहस से बचने की सलाह किसी को नहीं दी। वे लोगों से घिरी रहने के कारण स्वयं मिलने न आ सकीं परन्तु सलाह दी कि जेल वालों का संदेह बचाने के लिये सुशीला दीदी की सब से छोटी बहिन शकुन्तला को सुखदेव की बहिन बता कर साथ ले जाऊँ।

शकुन्तला उस समय लाहौर कालेज में पढ़ रहीं थीं। एक-डेढ़ बरस से भाभी के यहाँ ही थीं। उनके घर की बार-बार तलाशियों के कारण वह जब्त साहित्य छिपाने और पुलिस का सामना करने में खूब चतुर हो चुकी थीं। स्वभाव से प्रायः चुपचाप भाभी के मकान में इकट्ठी हुई क्रान्तिकारी बन्दियों के सम्बन्धियों की भीड़ के भोजन आदि का प्रबन्ध वही संभाले थीं। मेरे फरार होने की अवस्था में झूठमूठ सुखदेव की बहिन बन कर मेरे साथ सुखदेव से मिलने के लिये जेल जाने में उन के लिये भी कम आशंका न थी परन्तु उन दिनों हम लोगों में भय और झिझक किसी को छू नहीं गया था।

मैं कालर-टाई और सूट से दुरुस्त, ऐनक बदल (जो नम्बर ठीक न होने के कारण मुझे बार बार उतार कर हाथ में ले लेनी पड़ती थी)

शकुन्तला के साथ जेल पहुँचा। जेल के अधिकारियों को लायलपुर के इंगलैन्ड से ताज़ा लौटे बैरिस्टर के रूप में परिचय दिया। जबान घुमा-घुमा कर विलायत से आये नौजवान की तरह अंग्रेज़ी में बात की कि अभियुक्त सुखदेव के ताऊ लाला अचिन्तराम को यह समाचार पाकर बहुत दुख और चिन्ता हुई है कि उनका भतीजा एक हफ्ते से अनशन किये है। मैं उनकी ओर से अभियुक्त को यह समझाना चाहता हूँ कि उस के ऐसे व्यवहार से उस के सम्बंधी बहुत दुखी और नाराज़ हैं। यह समाचार सुनकर सुखदेव की माँ भी अनशन करने लगी है। यह अवस्था बहुत चिन्ताजनक है। इसके अतिरिक्त मैं अभियुक्त से उस की सफाई के बारे में भी परामर्श करना चाहता हूं। जेलर से मैंने बड़े सौजन्य से बात की। कानून के प्रति अपना आदर प्रकट करने के लिये जेब से सिगरेट निकाल पहले पूछ लिया—'यहाँ सिगरेट पीना नियम विरुद्ध तो नहीं ?"

शकुन्तला अपने भाई की चिन्ताजनक अवस्था के प्रति दुख प्रकट करने के लिये आँसू बहाने लगी। वह लायलपुर से आइ आधी देहातिन गृहस्थिन की सी पोशाक पहने वैसा ही व्यवहार भी कर रही थी। मैंने जेलर के सामने शकुन्तला को सम्बोधन किया—'रोने से क्या फ़ायदा ? तुम अपने भाई को समझाओ कि यह मूर्खता छोड़े !"

जेलर को विश्वास हो गया। सुखदेव को भीतर से जेल के दफ्तर मे बुलवाया गया। वे मैले से कपड़े पहिने था और अनशन के कारण बीमार जान पड़ रहा था। सुखदेव की ओर संकेत कर मैंने शकुन्तला से प्रश्न किया—"क्या यही तुम्हारा भाई है ?"

शकुन्तला भाई के स्नेह में रो पड़ी। सुखदेव परिस्थिति समझ गया और अपरिचित की तरह मुझ से मेरा परिचय करने लगा। मैंने जेलर की उपस्थिति में सुखदेव को उसकी मूर्खता के लिए फटकारा और कानून के महत्व की बात समझाई और उस से उस के गिरफ्तार होने की परिस्थिति के बारे मे प्रश्न किया और सहसा जेलर की ओर घूम, मुस्करा कर शंका की—"ऐसे प्रश्नों का उत्तर अभियुक्त सरकारी अफ़सर की उपस्थिति में कैसे दे सकता है ?"

जेलर कुछ दूर हट गया। मैं सुखदेव के और समीप हो धीमे स्वर में बात करने लगा। उस के बिना विरोध गिरफ्तार हो जाने का कारण

पूछा। सुखदेव ने उत्तर दिया—"जो होना था, हो गया। संक्षेप में क्या बता सकता हूं। समय आने पर पता लग ही जायगा।"

मैंने साथियों से अपना सम्बन्ध विच्छेद हो जाने की कठिनाई बताई और प्रभात (शिववर्मा), कालीचरण (कैलाशपति), ठाकुर भाई (महावीरसिंह) आदि से सम्बन्ध जोड़ने का सूत्र पूछा। मैं इन लोगों के वास्तविक नाम उस समय नहीं जानता था परन्तु लाहौर में दल के कार्यकर्त्ता के रूप में इन लोगों से परिचय हो चुका था। यह भी मालूम था कि ये लोग पंजाबी नहीं, युक्तप्रान्त के हैं। भगवतीचरण को खोज लेने का कोई सूत्र सुखदेव को मालूम न था। यू० पी० दल के शेष लोगों से सम्पर्क जोड़ने के लिए उस ने मुझे सहारनपुर में प्रभात का पता दे दिया। पंजाब में पुनः सम्पर्क स्थापित करने के लिए पण्डित जयचन्द्र जी विद्यालंकार और लाला रामशरणदास जी से मिलने की सलाह दी। बात-चीत के अन्त में मैंने सुखदेव को फिर ऊँचे स्वर में तुरन्त अनशन छोड़ देने की सलाह दी और वकालतनामे पर उस के हस्ताक्षर कराकर शकुन्तला को साथ ले जेल से लौट आया।

फ़रारी की अवस्था में यह दुस्साहसपूर्ण काम करने की बात जो भी सुनता मेरे साहस और चतुराई की सराहना करने लगता परन्तु मैं जानता हूँ कि आशंका से मेरा हृदय धुकधुक कर रहा था। जेल के फाटक के भीतर तो यही आशंका थी कि "चूहेदानी के भीतर चले जाना कठिन नहीं, निकल भी जाऊँ तभी गनीमत है।" दल से सम्पर्क जोड़ना अत्यन्त आवश्यक था और उसके लिए सुखदेव से मिलने के सिवा कोई चारा मुझे सूझ नहीं रहा था।

× × ×

दो

सहारनपुर बम फैक्टरी

सुखदेव के बताये तीन सूत्रों में से एक सहारनपुर की लकड़मन्डी में डा० निगम की डाक्टरी की दूकान थी। सुखदेव ने कहा था कि यदि उसकी गिरफ्तारी के समाचार से मकान बदल न लिया गया होगा तो वहाँ प्रभात मिल जायगा। दूसरा पता था, लाला रामशरणदास जी का। रामशरणदास जी १९१४-१८ के अँग्रेजी-सरकार विरोधी षड़यंत्र में लम्बी सज़ा काट कर दो-एक वर्ष पूर्व ही काला पानी से लौटे थे। भगतसिंह और सुखदेव उन्हें अनुभवी मान उनकी मारफ़त पुराने क्रांतिकारियों से सम्बन्ध जोड़ने के लिये उन्हें घेरे रहते थे। रामशरणदास जी से मेरा अपना भी कुछ परिचय था ही। उस समय रामशरणदास जी अमृतसर में थे। भाग्य की बात, उसी संध्या इन्द्रपाल की बैठक में ही मुझे उन की गिरफ्तारी का भी समाचार मिल गया।

तीसरा पता था, जयचन्द्र जी विद्यालंकार का। जयचन्द्र जी भी पुलिस की नज़रों में चढ़े हुए संदिग्ध थे। वे गिरफ्तार नहीं हुए थे। फ़रार न होकर अब भी खुलेआम 'गवालमण्डी' में रह रहे थे। संदिग्ध होकर भी इनके गिरफ्तार न किये जाने का एक कारण यह भी हो सकता था कि पुलिस उन से मिलने जुलने वाले व्यक्तियों को पहचान कर क्रान्तिकारियों के सूत्रों का पता लगाना चाहती हो। उनके मकान पर जाना उचित न था और उन्हें बुला भेजना वे अपने महत्व और प्रतिष्ठा के अनुकूल न समझते। भगवती भाई के विरुद्ध जयचन्द्र जी के षड़यन्त्र की याद ने भी उनसे मिलने के लिये उत्साहित न किया। सहारनपुर जाकर प्रभात या शिववर्मा से ही मिलने का निश्चय किया। शिववर्मा से लाहौर-बमफैक्टरी में परिचय हो चुका था। मैं उसके संयत व्यवहार और बोलचाल से प्रभावित भी था। सब से बड़ा आकर्षण सुखदेव द्वारा दिलाई आशा था कि शिववर्मा की मार्फत आज़ाद से सम्पर्क हो जायगा।

सहारनपुर जाने से पहले भगवतीभाई का पता लगाने के लिए दुर्गा भाभी से परामर्श करना चाहता था। उनके मकान पर जाना उचित न था। वहाँ जेल में बन्द क्रान्तिकारियों के सम्बन्धियों की भीड़ थी और उनसे मिलने-जुलने वालों पर नज़र रखने के लिए खुफिया पुलिस भी ताक लगाए रहती थी। इन्द्रपाल ने भाभी को एकान्त में बुला लाने का यत्न किया पर भाभी को एकान्त की फुर्सत मिलती कैसे? घर पर जमा भीड़ और जेल में बन्द सभी साथी उसके भाई और देवर बन गए थे। उन सब के लिए बढ़िया-बढ़िया खाने बनाकर जेल भिजवाते रहना उन्हों ने क्रांतिकारी कर्तव्य मान लिया था। कर्तव्य और उत्तरदायित्व कन्धों पर आ पड़ने पर दुर्गा भाभी का 'दुर्गा' रूप प्रकट हो रहा था। बहिन प्रेमवती की मार्फत उनका संदेश मिला। भाभी का अनुमान था कि लाहौर में धड़ पकड़ आरम्भ हो जाने पर भगवती भाई न तो जल्दी लाहौर आने की और न घर के पते पर पत्र लिखने की ही मूर्खता करेंगे। वे सम्भवतः कलकत्ते में सुशीला-दीदी के सुरक्षित और असन्दिग्ध स्थान से हम लोगों से सम्पर्क जोड़ने का यत्न कर सकते हैं। निश्चय किया, सहारनपुर में शिववर्मा से मिल भगवती भाई को खोज में कलकत्ता चला जाऊंगा। कलकत्ते जाने के लिए आवश्यक व्यय जुटाने की प्रतीक्षा में दो दिन लाहौर में ही ठहरना पड़ा।

जेल में सुखदेव से मिलने के लिए खूब साफ सूट पहन कर गया था लेकिन इस बैठक में इन्द्रपाल का मैला कुरता पहन और तहमत बाँधे पड़ा रहता। मेरे आने पर इन्द्रपाल ने पूछा था—"अपने साथियों को तुम्हारा क्या परिचय दूं?" उसे सलाह दी थी—"गांव का पड़ोसी और बचपन का साथी बता दो। गाली देकर मेरी कुछ निन्दा भी कर देना। उन्हें मुझ से मिलने की इच्छा भी न होगी।" मेरे दिन भर घर में रहने के कारण इन्द्रपाल के साथियों को सन्देह न हो इसलिए इन्द्रपाल ने कह दिया—"आँखें आई हुई होने के कारण धूप में नहीं निकलता।" —एक सस्ती सी हरी ऐनक मैंने लगाली।

लाहौर से जाने की तैयारी में था। १४ मई को सुबह ही अपने साथियों की आँख बचाकर इन्द्रपाल ने मुझे खबर दी—"सहारनपुर में एक डाक्टर की दुकान में बम-फैक्टरी पकड़ी गयी है और प्रभात और हरीश दो क्रान्तिकारी गिरफ्तार हो गए हैं।" मैं अंग्रेजी का समाचार पत्र पढकर घटना का अधिक ब्यौरा जानना चाहता था परन्तु इन्द्रपाल

के साथियों को सन्देह न होने देने के लिए मन मारे रहा। ज़रूरत भी क्या थी? मन्डी-चोबफरोशान (लक्कड़मन्डी) में डाक्टर की दुकान में बम फैक्टरी और प्रभात ही नाम काफ़ी था। यदि एक दिन पहले चल दिया होता तो मैं भी फंस जाता। यह बचाव भी उतना ही आकस्मिक था जितना कि लाहौर की बम फैक्टरी पकड़ी जाने वाली रात मेरा वहाँ न रहना। अब कलकत्ते जाने के सिवा रास्ता न था।

सहारनपुर की बम फैक्टरी का पकड़ा जाना दल के लिए बड़ी भारी चोट थी। उस समय हि० स० प्र० स० का केन्द्र सहारनपुर में ही था। अवसर की बात थी कि केन्द्र में उस समय अधिक आदमी मौजूद न थे। आज़ाद का व्यक्तिगत परिचय और प्रभाव झाँसी और ग्वालियर में अधिक होने के कारण वे वहां ही थे। उन दिनों हिसप्रस का फैलाव प्रायः उत्तर प्रदेश, देहली और पंजाब में ही था। भौगोलिक दृष्टि से सहारनपुर आगरा की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक तो था ही परन्तु आगरा से केन्द्र बदल देने का एक और भी कारण हो गया था।

असेम्बली-बमकांड से पहले भगतसिंह कामकाज के सिलसिले में इलाहाबाद भी जाता रहता था। इलाहाबाद के स्थानीय नेता यतीन सान्याल ने भगतसिंह का परिचय ललितमोहन बैनर्जी से भी करा दिया था। ललित दल के काय में शिथिलता की शिकायत कर काम को आगे बढ़ाने और फैलाने की उत्सुकता प्रकट करता रहता था। भगतसिंह ने उसे विशेष रूप से उत्साही और लगन का साथी समझा। ललित इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में एम० एस सी० में पढ़ रहा था। जिस समय यतीन्द्र दास बम बनाने की शिक्षा देने के लिए कलकत्ते से आगरे आया, दूसरे अनेक चतुर और महत्त्वपूर्ण साथियों के साथ भगतसिंह ने ललित को भी इस शिक्षा के लिए उपयोगी समझ आगरा बुलवा लिया।

ललित ने आगरा आकर जब तीन मकानों में कई साथियों का जमघट, बम बनाने का विराट आयोजन और शस्त्रों का जमाव देखा तो उत्साहित होने के बजाय उसके हाथ-पांव फूल गए। उसने तुरन्त इलाहाबाद लौट जाना चाहा। उस की घबराहट और कंपकपी इतनी स्पष्ट थी कि इस की ओर आज़ाद, सुखदेव, शिव और यतीन्द्र कई साथियों का ध्यान गया। ऐसे आदमी को केन्द्र में बुला लेने की भगतसिंह की नादानी पर सब लोगों ने एतराज़ किया। यतीन्द्र ने सावधान किया—"इस आदमी की कायरता दल को ले डूबेगी! इसे इलाहाबाद नहीं,

यहाँ ही यमुना किनारे किसी सुनसान जगह ले जाकर गोली मार यमुना में ही ढकेल देना चाहिए !" भगतसिंह ने यतीन्द्र की बात का विरोध किया। दूसरे साथियों को भी इतनी उग्रता उचित न जंची। ललित को इलाहाबाद लौट जाने दिया लेकिन इस बात पर सभी साथी सहमत थे कि ललित के पहचाने स्थान को तुरन्त बदल देना चाहिए। यतीन्द्र की आशंका ठीक ही प्रमाणित हुई। इलाहाबाद में गिरफ्तार होते ही ललित क्षमा मिल जाने की आशा में सरकारी गवाह बन गया।

आगरा और दिल्ली के मकानों को दल के अनुशासन के अनुसार बदला तो यों भी जाता क्योंकि भगत और दत्त अब जल्दी ही असेम्बली में बम फेंक कर गिरफ्तार होने वाले थे। नियमानुसार उनकी जानी हुई जगह बदल दी जानी चाहिए थी। डा० गयाप्रसाद को सहारनपुर में एक मकान किराये पर ले लेने का आदेश दिया जा चुका था परन्तु वे अभी सुविधाजनक जगह ले नहीं पाये थे। घटना की आशंका से आगरा का वह मकान, 'जहाँ ललित गया था' तुरन्त छोड़ दिया गया और वहाँ का सामान अस्थायी रूप से दिल्ली में, बाज़ार सीताराम के मकान में ढो दिया गया।

अवसरवश सीताराम बाज़ार के मकान को भी जल्दी ही बदल लेना आवश्यक हो गया। यहाँ किराये पर लिए हुए कमरे तिमंजिले पर थे। सब से नीचे की मन्जिल में रहने वाले लोग 'झांपड़ मार देने' या 'उठा कर फेंक देने' की धमकी दिये बिना बात करना भी अपनी हेठी समझते थे। इनके इस व्यवहार के कारण ही बाज़ार में इनका दबदबा भी था। वे अपने दबदबे के प्रदर्शन के किसी भी अवसर से चूकना नहीं चाहते थे। इन्हें 'गुरू' या 'उस्ताद' सम्बोधन किया जाता था और पीठ पीछे कुछ और। नीचे इनके दरवाजे के सामने साइकिल रख दी जाने के कारण एक दिन इन से जयदेव कपूर का झगड़ा हो गया। साधारणतः दल के लोग अपनी ओर किसी प्रकार ध्यान आकर्षित न करने के लिए झगड़े-फिसाद से बच, विनय से ही रहते थे। कहावत तो है कि 'ताली एक हाथ से नहीं बजती' परन्तु कभी निश्चल हाथ पर ही दूसरा हाथ इतने ज़ोर से आ पड़ता है कि बचाने पर भी ताली बज ही जाती है। ऐसी ही बात यहाँ भी हो गई और जगह बदल लेनी पड़ी। इतनी सी बात का कोई महत्व न होता पर हुआ! क्या? वह आगे पता चलेगा।

सहारनपुर में डा० गयाप्रसाद ने दल के काम के बहुत अनुकूल एक मकान मुहल्ला 'चोबफरोशां' या 'लकड़मण्डी' में किराए पर ले लिया। मकान तो ले लिया परन्तु पैसे की कमी के कारण उस में डाक्टर की बैठक और डिस्पेन्सरी का सरंजाम न जमा सके। इस से पूर्व डाक्टर फ़िरोजपुर में दल के लिए ऐसा बहुत अच्छा अड्डा जमा चुके थे। वहां वे तुरन्त ही विश्वस्त और सम्मानित नागरिक बन कायस्थ बिरादरी के सेक्रेटरी भी हो गये थे। उनकी होमियोपैथी, एलोपैथी और हकीमी की मिली-जुली प्रैक्टिस से निर्वाह लायक आमदनी भी होने लगी थी। लेकिन सहारनपुर पैसे की कमी के कारण जुगाड़ न जमा। शिव वर्मा और जयदेव कपूर देहली से आगरा का सामान तो ला कर यहां भरने लगे परन्तु बहुत यत्न करने पर भी पैसा न ला सके। डाक्टर कुछ रुपया आने की प्रतीक्षा में बैठक में पड़े तख्त पर बैठे या लेटे कोई पुस्तक पढ़ते रहते या औंघाते रहते। डिसपेन्सरी के नाम पर एक स्टैथिसकोप (फेफड़े जांचने की चोंगा लगी रबड़ की नली) और एनीमाकैन (रबड़ की नली लगा वस्ती कर्म का डिब्बा) दीवार पर कीलों से लटके रहते।

शिव वर्मा आगरे में बम बनाने में सिद्धहस्त यतीन्द्र से शिक्षा पा चुके थे। आगरे में बना बम का मसाला और लाहौर में सुखदेव के ढलवाये बम के खोल भी मौजूद थे। शिव और कपूर ने इन बमों को भर कर उपयोग के योग्य बना लेना उचित समझा। इन बमों के उपयोग का अवसर भी शिव और कपूर की कल्पना में आगया था। उन दिनों वायसराय देहरादून के जंगलों में शिकार के लिये आये हुए थे। शिव ने झांसी जाकर आजाद से वायसराय पर हाथ चलाने की आज्ञा माँगी। आज़ाद ने पहले परिस्थिति का ब्यौरा बताने के लिए कहा। यह दोनों खुफ़िया-पुलिस वालों जैसे कपड़े और व्यवहार अपना कर उन्हीं से "सवारी" के आने-जाने का स्थान और समय का पता रखने लगे।

साण्डर्स-बध, असेम्बली-बमकांड और लाहौर में बमफैक्टरी पकड़ी जाने की घटनायें ऊपर-तले जल्दी-जल्दी हो चुकी थीं। जगह-जगह क्रांतिकारियों की गिरफ्तारियाँ भी हो रही थीं। लाहौर में सुखदेव की गिरफ़्तारी का समाचार मिल चुका था। वह इस मकान को जानता था, इसलिए सुखदेव के बयान देने का विश्वास न होने पर भी इस मकान को नियमानुसार बदल लेना आवश्यक हो गया था परन्तु कठिनाई थी पैसे की। वातावरण में राजनीति के क्रांतिकारी रंग की सनसनी थी।

पैसा न होने के कारण शिव और कपूर स्थानीय ढङ्ग के कपड़े नहीं बनवा पाये थे। कानपुर, इलाहाबाद के विद्यार्थियों जैसे ही कपड़े पहनते थे। इन लोगों के कपड़े और डा० गयाप्रसाद की सामान से शून्य दुकान लोगों का ध्यान आकर्षित करने लगी। यह लोग समीप के वाचनालय में अखबार पढ़ने के लिए जाते तो लोग इन से राजनैतिक बातचीत करने लगते। तीनों ने इस स्थिति को भाँपा और सहारनपुर से डेरा हटा देने की आवश्यकता अनुभव करने लगे। १० या ११ मई के दिन एक खद्दरधारी सज्जन ने डाक्टर से एकान्त मे मिल कर चेतावनी दी—"आपका क्रांतिकारियों से तो कोई सम्बन्ध नहीं ? सुना है, पुलिस इस शहर मे क्रांतिकारियों का अड्डा खोज रही है।" डा० ने राजनीति से अपना वैराग्य बता कर उन्हें निश्चिन्त कर दिया परन्तु सहारनपुर से तुरन्त उठ चलने के लिये छटपटाने भी लगे। यह हो न पाया ? तीनों के निकल चलने लायक पैसा न था। तीनों की जेब से मिला कर कानपुर तक का एक ही ओर का किराया निकला। डा० अपने किसी सम्बन्धी से रुपया उधार लाने के लिये कानपुर चले गये। तब शिव और कपूर के पास केवल दस आने रह गये थे। डाक्टर के १२ तारीख को सुबह ही लौट आने की आशा थी। दो दिन तो चना-चबेना से काटे जा सकते थे।

दल के इस मकान का पता पुलिस को कैसे लगा, यह बात ध्यान देने की है। गयाप्रसाद, शिव और कपूर को बहुत दिन तक यही कलख रहा कि साधन न होने के कारण डाक्टरी की दुकान का पर्दा न बन सका और पुलिस भीतर की असलीयत जान गई। खुफिया-पुलिस में इतनी चातुरी कम ही देखी है। इससे पूर्व इस मकान को जानने वाले दो व्यक्ति गिरफ्तार हो चुके थे, एक सुखदेव और दूसरा फणीन्द्रनाथ घोष। सुखदेव ने इस मकान का पता पुलिस को दिया होता तो यह मकान दो-तीन सप्ताह पहलेही पकड़ा जाता; दूसरी बात, वह मुझे यहाँ जाने के लिये न कहता। सुखदेव ने बयान तो ज़रूर दिया था लेकिन कुछ दूसरे ढंग से। उसके बयान से कोई भी गिरफ्तारी न हुई। सुखदेव ने आगरा के इसी मकान का पता पुलिस को दिया था जिसे दल उस की गिरफ्तारी से पहले ही बदल चुका था। फणीन्द्र सहारनपुर का मकान पकड़ा जाने से दो-तीन दिन पहले ही कलकत्ते में गिरफ्तार हुआ था और गिरफ्तार होते ही क्षमा की आशा में मुखबिर भी बन गया था।

फणीन्द्रनाथ घोष १६१४—१६१८ के क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग ले चुका पुराना विश्वस्त क्रान्तिकारी था। वह नज़रबन्दी भी काट चुका था। हि० स० प्र० स० में भी उसका स्थान महत्वपूर्ण था। बिहार के संगठन का पूरा उत्तर दायित्व उसी पर था। काकोरी कांड के बाद दल के छिन्न-भिन्न हो जाने पर संगठन फिर से जमाने में उस ने आज़ाद और भगतसिंह को काफी सहायता दी थी परन्तु इस समय उस में कुछ शैथिल्य आ रहा था। इसका कारण उस के अपने मन का चोर ही था। हिसप्रस के नियमों के अनुसार दल में विवाहित लोगों के सम्मिलित होने की मनाही नहीं थी परन्तु दल के लोगों को विवाह करने से पहले दल की अनुमति ले लेना आवश्यक था। साधारणतः इस नियम का अधिक महत्व न था क्योंकि विवाह का प्रश्न उठता न था। दूसरी ओर इस नियम की ओर साथियों का ध्यान दिलाये बिना नियम भंग हो जाने पर कड़ाई दिखाई गयी। परिणाम में दो तीन विकट घटनायें हो गईं। फणीन्द्र के सम्बन्ध में ऐसा अवसर भी न आया। अपने विवाह की बात वह साथियों से छिपाये था परन्तु अब संकट से कतराने लगा। उस के जाने-माने पुराने क्रान्तिकारी होने के कारण असेम्बली-बमकांड और लाहौर बमफैक्टरी पकड़ी जाने के बाद पुलिस उसे भी खोज रही थी। बचने के लिये वह घर से तो फरार हो गया परन्तु अपनी नव-वधु के आकर्षण का दमन न कर सका वह फरारी की हालत में कलकत्ता, अपनी ससुराल ही जा पहुँचा।

फणीन्द्र के विवाह की बात साथियों को मालूम न थी परन्तु पुलिस तो जानती थी और उसकी खोज में उसकी ससुराल पर भी आंख रखे थी। ससुराल आने पर वह गिरफ्तार हो गया और गिरफ्तार होते ही क्षमा के मोल में दल का भेद दे साथियों की गिरफ्तारी कराने लगा। यतीन्द्रनाथ दास, कमलनाथ तिवारी, बैजनाथ सिंह विनोद, केदारमणि शुक्ल, सुरेन्द्र पाण्डे और ललित आदि उसी के बताने से गिरफ्तार हुए। सहारनपुर के मकान का पता भी उसी ने दिया था, मुकद्दमा चलने पर यह बात स्पष्ट हो गई। इसीलिए आजाद को उसे दण्ड देने का विशेष आग्रह था। 'जलगांव' अदालत में उस पर गोली चलाई गई और एक बार १६३० में इलाहाबाद मे भी उस पर चोट की गई। लेकिन वह बच ही गया। अस्तुः—

जब खुफिया-पुलिस किसी मकान पर नजर रखती है तो अनुभवी

लोग तुरन्त ताड़ जाते हैं। शिव और कपूर को अपने मकान के प्रति पुलिस का सन्देह होने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। १२ तारीख दोपहर से कपूर को मन ही मन एक धुकधुकी या अनिष्ट की आशंका अनुभव हो रही थी। उसने अपने मन की बात शिव से कही। दोनों ने बारी-बारी से आधी-आधी रात पहरा देने का निश्चय किया। उस रात गरमी बहुत थी। हवा बिलकुल बन्द। इसलिए दोनों ही छत पर जा पास-पड़ोस में नज़र दौड़ाते रहे। यह क्रान्तिकारियों का पुराना अनुभव था कि पुलिस प्रायः ही प्रातः चार या पांच बजे छापा मारने आती है। जब सुबह लगभग छः-साढ़े छः बज गए तो दोनों नीचे उतर आये। पौ फटने के समय ठण्डी हवा चलने लगी थी। रात भर के जगे दोनों, सुबह डाक्टर के रुपया लेकर लौट आने को आशा में आंगन में पड़ी खाटों पर लेट गये और गहरी नींद सो गये।

इस मकान में सामने सड़क पर तीन दरों का एक लम्बा कमरा था। यही कमरा डाक्टर की बैठक या डिसपेंसरी था। इस कमरे की बगल में एक दरवाजे से बरोठा या घर के भीतर के आँगन के लिए रास्ता था। आंगन के पार फिर ऐसा ही लम्बा कमरा और बरोठे के दहिनी ओर भी लम्बा सा कमरा था। इन कमरों के दरवाजे आंगन में और एक दूसरे में भी खुलते थे। सुबह सात-साढ़ेसात बजे के लगभग, जब गर्मियों का सूर्य अच्छा खासा चढ़ चुका था, बरोठे के किवाड़ों के बहुत ज़ोर से खटखटाने की आहट हुई। इतनी आहट पर भी कपूर की नींद न टूटी। शिव ज़ोर की आहट से हड़बड़ा कर "ठहरो! ठहरो!!" पुकारता हुआ उठा और डाक्टर के लिए दरवाज़ा खोल दिया। देखा तो पुलिस! सिपाहियों ने उसे घेर लिया। शिव डाक्टर के लिए दरवाज़ा खोलने आया था इसलिए खाट पर सिरहाने रखा पिस्तौल न लिया था।

पुलिस ने प्रश्न किया—"आप ही डाक्टर हैं?"

शिव ने इनकार किया—"नहीं, मैं उनका रिश्तेदार हूं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ता हूं। गरमी की छुट्टी में एक मित्र के साथ मंसूरी गया था। लौटते हुए यहां परसों आया हूं। डाक्टर साहब घर में किसी ज़रूरत के कारण कानपुर गये हैं।"

शिव ने अनुमान कियां, पुलिस सन्देह कर यहां आई है। चतुरता से बातचीत कर यदि उनका सन्देह दूर कर दिया जाये तो लौट जायगी। परन्तु पुलिस काफ़ी जानकारी के आधार पर आई थी। डिप्टी सुपरिं-

टेंडेंट मथुरादत्त जोशी कोतवाल और पुलिस के सशस्त्र दस्ते के साथ स्वयं आये थे। बरोठे से एक दरवाज़ा बैठक में था। वे बैठक में चले गये।—"क्या पढ़ते हो ?....कौन कौन प्रोफेसर है ?" तहकीकात करते हुए जोशी साहब बैठक की आलमारियों मे रखी पुस्तकों की पड़ताल करने लगे और कुछ पुस्तकों को जब्त साहित्य बताने लगे। इसी समय भीतर से पुकार आई—"हजूर, इधर आइये यहां बहुत कुछ है।"

कोतवाल आंगन और दूसरी कोठरियों की ओर चला गया था। कपूर अभी गाढ़ी नींद मे सो ही रहा था। कोतवाल ने उसे हाथ पकड़ कर उठाया और तीन सिपाहियों के बीच एक ओर खड़ा कर दिया। जोशी कोतवाल की पुकार सुन शिव को साथ लिये भीतर की कोठड़ी की ओर चले। आंगन में शिव ने कपूर को घिर गया देखा।

भीतर के कमरे की आलमारियों में बम बनाने के रासायनिक बर्तन और सामान रखे हुए थे। एक सन्दूक में तैयार बम और छोटे बेग में दो पिस्तौल तथा कारतूस भी थे। जोशी साहब शिव से इस सामान के सम्बन्ध में पूछताछ करने लगे। चतुरता से बात बनाकर बच जाने की सम्भावना अब नहीं रही थी लेकिन चारों ओर से पुलिस से घिर जाने के कारण झपट कर हथियार उठा लेने का भी अवसर न था। बातचीत मे ही ऐसा कोई अवसर आ सकता था। जोशी साहब शिव से ही आलमारियां खुलवा कर पूछताछ कर रहे थे—"यह क्या है, वह क्या है ?"

"मैं क्या जानूं ! डाक्टर साहब का समान है। वे हकीमी भी करते हैं। दवाइयां बनाने और कुश्ते फूंकने का सामान होगा।"—शिव ने अनुमान प्रकट किया। जोशी और शिव दोनों पैंतरेबाज़ी से बात कर रहे थे। एक बक्स की ओर संकेत कर जोशी ने शिव को हुक्म दिया—"इसे खोलिये !"

"सब कुछ मैं ही खोलूं ? तालाशी आप ले रहे हैं, आप स्वयम् खोलिये !"—शिव ज़रा अकड़ा।

"नहीं आप को खोलना होगा"—जोशी ने जिद्द की।

"अच्छा ?"—शिव ने बक्स का ढक्कन उठा भीतर हाथ डाल ललकारा—"अब मरो तुम सब ! यह बम है !"—सन्दूक से एक बम निकाल उसने ऊपर उठाया। जोशी साहब ने चिल्ला कर हुक्म दिया—

"पकड़ो ! भागो !" और सब से आगे स्वयम ही भागे। दूसरे लोगों ने भी 'पकड़ने' के बजाय 'भागने' की ही आज्ञा का पालन किया। शिव दूसरी ओर की आलमारी की तरफ लपका। भरा हुआ बम उसके हाथ आ गया था परन्तु आकस्मिक बिस्फोट की दुर्घटना से बचाव के लिये बमों के तोड़े इस आलमारी में रखे हुए थे। वहीं दो पिस्तौल भी एक छोटे बेग में थे। इस आलमारी की ओर घूमते शिव की पीठ अपनी ओर होती देख कोतवाल लौट पड़े और प्रत्युत्तर में ललकार कर बोले—"रेवोल्यूशनरियों को पकड़ने आये तो मौत का क्या डर ?" उन्हों ने झपट कर शिव को कमर से उठा फर्श पर पटक दिया और उस के दोनों कंधों को अपने घुटनों से दबा लिया। कोतवाल शरीर के लहीम-शहीम, दिल और जाति से राजपूत थे। शिव का हाथ तोड़े या पिस्तौल तक न पहुंच पाया। सिपाही भी लौट पड़े। शिव की खूब पिटाई हुई और उसके दोनो हाथ पीठ पीछे बांध दिये गये। कपूर को भी हथकड़ी पहना दी गई।

जोशी साहब भय से चिल्लाते हुए भाग कर मकान के बाहर पहुँच गए थे। शत्रु के काबू कर लिए जाने की खबर पा पिस्तौल से धमकाते हुए लौटे। बदहवासी में आंगन में खड़े, पुलिस से घिरे कपूर को ही पिस्तौल दिखा कर धमकाने लगे—"बम को रखो नीचे !........नहीं तो अभी गोली मारता हूँ।" (Put down the bomb or I will shoot you !)।

नींद की बेखबरी में गिरफ्तार हो जाने और अप्रत्याशित हो-हल्ले से कपूर औसान खो बैठा होगा नहीं तो उस भगदड़ में कुछ न कुछ करने का यत्न करता। परन्तु जोशी को अपने से भी अधिक घबराया देख उसे मजाक सूझा—"होश कीजिए जनाब, मेरे हाथ बंधे हुए नहीं दीखते ? देखिये आप के पिस्तौल की नली कहां जा रही है ?"—वास्तव में ही जोशी के हाथ हवा में हिलते पत्तों की तरह कांप रहे थे और पिस्तौल की नली जमीन की ओर थी।

इन लोगों के बांधे-बूंध लिए जाने पर डिप्टी सुपरिंटेन्डेन्ट जोशी अभियुक्तों और सामान को कोतवाली पहुँचाने का हुक्म दे, इस घटना का वृत्तान्त डिप्टीकमिश्नर को स्वयं सुनाने के लिए उस के बँगले की ओर चल दिये। इनके चले जाने के बाद कोतवाल पराजित शत्रु के प्रति राजपूती उदारता से बोले—"इतने पिस्तौल-कारतूस और बम होते

हुए भी आप लोग बिना कुछ करे-धरे गिरफ्तार हो गए ? आप लोग चाहते तो हम सब को मार कर मजे में भाग जाते !"

"आप लोगों को मारने से हमें क्या मिलता ? हिन्दुस्तानियों का राज कायम करने के लिए तो हम लड़ रहे हैं; उन्हीं को मारने लगें ? गोरी चमड़ीवाले आते तो आप लोग देखते !"—उत्तर इसके सिवा और हो ही क्या सकता था परन्तु यह उत्तर केवल सिपाहियों को व्यक्तिगत सहानुभूति के लिए बहका लेने का प्रयत्न ही नहीं समझ लिया जा सकता। हि० स० प्र० स० की भावना क्रान्ति को सर्वसाधारण के सहयोग पर उठाने की थी। निरन्तर उसी दृष्टिकोण से सोचते रहने के कारण, या उस विचार को बिलकुल जड़ता से अपना लेने के कारण कपूर और वर्मा शत्रु सरकार के हाथ-पांव (पुलिस) को भी सर्वसाधारण जनता का अंग और अपना देशवासी मान आक्रमण करने से चूक गए। यह कायरता नहीं, भावना को जड़ता से अपना लेना ही था।

सिपाहियों पर इस बात का असर भी हुआ। "अरे बाबू, हम लोगों का क्या ? टुकड़ाखोर कुत्ते हैं। मर ही जाते तो क्या था ? यों भी हम जैसे सैकड़ों रोज मरते हैं। आप लोगों की ही जिन्दगी की कीमत है जो दूसरों के लिए कुछ कर रहे हैं।"—सिपाहियों ने उत्तर दिया और दो-तीन की तो सचमुच आँखें छलक आईं। एक खिन्न स्वर में बोला—"हम लोग क्या जानते थे कि आप लोग कौन हैं ? हमें तो कहा गया था, 'कोकीन-फरोशों' को पकड़ने जा रहे हैं।"

दोनो ओर की बातों में कितनी सचाई थी, वह जाने दीजिए परन्तु शिव और कपूर के संयत व्यवहार से कोतवाल और सिपाहियों को इनके खानदानी, शरीफ़ और ईमानदार होने में सन्देह न रहा। बाद में वे इन्हें सभी प्रकार की क़ानूनी सुविधा देते रहे। कोतवाल तो प्रायः देश के लिए इनके त्याग की प्रशंसा और अपनी गद्दारी के प्रति ग्लानि भी प्रकट करते रहते। अपनी स्पष्टवादिता में कोतवाल ने अपने इस व्यवहार का रहस्य भी प्रकट कर दिया। शिव को गिरफ्तार किया था कोतवाल ने अपनी जान पर खेल कर। उन्हें इस बहादुरी के लिए बहुत प्रशंसा और पदोन्नति की आशा थी। लेकिन डिप्टी सुपरिंटेंडेंट जोशी ने बहादुरी और चतुरता का सब श्रेय, कलक्टर को दी गई रिपोर्ट में, स्वयं ही समेट लिया। कोतवाल को जब "माया मिली न राम"

तो वे विदेशी सरकार के टुकड़ाखोर कुत्ते बनने की ग्लानि अनुभव करने लगे।

डा० गयाप्रसाद रुपये के लिये सभी सम्भव उपाय कर तीन दिन बाद खाली हाथ लौटे। यदि अखबार पढ़ लिया होता तो उन्हें सहारनपुर लौटना ही न चाहिये था। साधारणतः फरार क्रान्तिकारी देश के भिन्न-भिन्न भागों में होने वाली घटनाओं के प्रति चौकस रहने के लिये सुबह ही अखबार पढ़ लेते थे। डाक्टर ने रास्ते में अखबार नहीं पढ़ा। पढ़ा इसलिये नहीं कि कानपुर में लौटने भर का किराया भी मुश्किल से मिला था। सोचा कि सहारनपुर में तो अखबार खरीदा ही गया होगा, पहुँच कर पढ़ लेंगे। सहारनपुर के स्टेशन पर ही पुलिस उनकी प्रतीक्षा में चौकस थी परन्तु डाक्टर अपनी स्वाभाविक शान्त और निश्चिन्त मुद्रा के कारण भीड़ में उलझ मकान तक निरापद पहुँच गये।

डाक्टर की प्रतीक्षा में पुलिस के चार सिपाही मकान के भीतर ही ठहरा दिये गये थे। किवाड़ खटखटाने पर उन में से एक ने दरवाजा खोला और झपट कर गयाप्रसाद को कड़े आलिंगन में बांध लिया। सिपाही का गला डाक्टर के गले से सट कर चेहरा उन के कंधे पर नजर से बाहर हो गया। डाक्टर ने भी उसे उतने ही गहरे आलिंगन में कस लिया। दोनों ही स्नेह प्रदर्शन की होड़ में आलिंगन का जोर एक दूसरे से अधिक बढ़ाये जा रहे थे। आखिर इस प्रेम से ऊब कर गयाप्रसाद बोले—"बस बस, बहुत हो गया यार ! अब छोड़ो ! बात भी तो सुनो ?"

दल के लोगों में काशीराम को भी ऐसा ही गूढ़ आलिंगन करने की आदत थी। वह बहुत समय से डाक्टर से मिला न था। दिल्ली से उसके आने की प्रतीक्षा भी थी। आलिंगन में बंध और चेहरा न देख पाकर डाक्टर ने अनुमान कर लिया कि उनकी अनुपस्थिति में काशीराम आ गया है और प्रेमविह्वल हो रहा है। डाक्टर की नसीहत के उत्तर में उन्हें आलिंगन में बांधने वाले ने अपने साथियों को पुकारा—"दौड़ो, दौड़ो ! तीसरा भी आ गया !"—गयाप्रसाद जब तक परिस्थिति समझें, भीतर से तीन और सिपाहियों ने आकर उन्हें धर दबाया और हाथों में हथकड़ियां भर दीं।

कोतवाली की ओर ले जाये जाते समय डाक्टर को अपनी जेब का खयाल आया। कानपुर से लौटते समय वे लखनऊ होकर आये थे।

उस समय काकोरी-षड़यंत्र के बन्दी जोगेश चैटर्जी को जेल से भगाने की योजना बन रही थी। इस सम्बन्ध में चैटर्जी के सन्देश, काकोरी-षडयंत्र के वकील श्री चन्द्रभानु गुप्त और मोहनलाल जी सक्सेना की मार्फत आते-जाते थे। गयाप्रसाद की जेब में इसी सम्बन्ध के कागज थे जिन में चन्द्रभानु गुप्त और मोहनलाल सक्सेना के नाम भी थे। यह नाम बहुत जाने पहचाने हैं। यही चन्द्रभानु गुप्त (सी० बी० गुप्ता) आजकल उत्तर प्रदेश की कांग्रेसी सरकार के मंत्री है। मोहनलाल जी सक्सेना केन्द्रीय सरकार में शरणार्थियों के पुनर्वास विभाग के मंत्री रह चुके हैं। डाक्टर को अपनी जेब के कागज़ों की याद आयी और खयाल आया कि यह कागज़ पुलिस के हाथ पड़ जाने से क्रान्तिकारियों से सहानुभूति रखने वाले कांग्रेसी वकील संकट में पड़ जायंगे। वे चलते चलते थम गए —"हम पेशाब करना चाहते हैं।"

"कोतवाली पहुंच कर कर लेना"—सिपाहियों ने उत्तर दिया।

"जब हमें हाजत होगी तब करेंगे, या जब तुम्हें होगी ?"—डाक्टर सड़क पर अड़ गये। सिपाहियों ने मजबूर होकर उन के एक हाथ से हथकड़ी निकाल दी और हथकड़ी की रस्सी थामे खड़े हो गये। सड़क किनारे बैठते ही गयाप्रसाद ने खुले हाथ से भीतर की जेब से वह कागज़ निकाल मुंह में भर जैसे तैसे चबा कर निगल लेना चाहा। कागज़ गले में अड़ गये। उन का दम घुट कर आंखे बाहर निकलने लगीं। मुंह से शब्द निकलना कठिन हो गया। वे सड़क पर बैठ गये और अंजली से पानी के लिये संकेत किया। सिपाही डाक्टर के कष्ट का कारण तो न समझे पर एक सिपाही समीप की दुकान से पानी ले आया। घूंट भर डाक्टर ने गला साफ़ किया और प्राण बचे।

श्री० चन्द्रभानु गुप्त और मोहनलाल सक्सेना जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों को फंसा सकने वाले कागज़ों को गयाप्रसाद ने प्राणों पर संकट झेल निगल लिया, यह बहुत समझदारी का काम था। उन दिनों लाहौर बम फैक्टरी में तथा इधर-उधर गिरफ्तार होने वाले दल के कुछ सदस्यों के पुलिस के भय से दल और दल से सहानुभूति रखने वालों के भेद खोल देने के कारण क्रान्तिकारियों के प्रति जनता का विश्वास और आदर घट रहा था। क्रान्तिकारियों की असावधानी के कारण कांग्रेस के प्रसिद्ध व्यक्तियों के संकट में फंस जाने से तो दल की बदनामी की आंधी आ जाती। जनता क्रान्तिकारियों से तो वीरता, साहस और

दृढ़ता की आशा रखती थी परन्तु अपने लिये भीरुता को स्वाभाविक सतर्कता समझती थी। जब क्रान्तिकारी पुलिस को मारपीट कर भाग निकलते या पकड़े जाने पर भी भेद खोले बिना फांसी और जेल भुगत लेते तो क्रान्तिकारियों को उदारता से सहायता मिलने लगती। किसी क्रान्तिकारी के गिरफ्तार होकर भेद खोल देने पर फरार साथियों को जनता से रूखा व्यवहार मिलने लगता। साधारण सी सहायता का अनुरोध करने पर भी उत्तर मिलता—"तुम लोगों को सहायता देना अपना गला फांसी में फंसा लेना है। तुममें से कोई गिरफ्तार होकर इतना भी कह देगा कि हमने तुम्हें प्यास में एक गिलास पानी पिला दिया था तो हमारी मौत के लिये वही काफ़ी है।" ऐसी अवस्था में डाक्टर के कागज़ निगल जाने का महत्व कम न था। यह घटना गयाप्रसाद के स्वभाव और व्यवहार का बहुत अच्छा नमूना भी है, बिना होहल्ला और बहस किये अपने विचार में उचित काम के लिये जान पर खेल जाना! बात करने में तो जान पड़ता है डाक्टर बड़ी कठिनाई से होंठ हिला पा रहे हैं। चलते हैं तो जैसे अनिच्छा से कदम उठा रहे हों! लेकिन बिना रुके चलते जांयगे; सफर चाहे जितना लम्बा हो!

जनता के ऐसे भीरु व्यवहार के साथ ही दूसरे प्रकार के उदाहरण भी देखने में आते थे। पुलिस सहारनपुर-बम फैक्टरी के साथ साण्डर्स-बध, असेम्बली-बमकाण्ड और लाहौर बमफैक्टरी का सम्बन्ध जोड़ने के लिए प्रमाण जुटा रही थी। दल सीताराम बाज़ार का मकान तो छोड़ चुका था परन्तु मुखबिर जयगोपाल और हंसराज ने इस मकान का पता पुलिस को बता दिया था। पुलिस इस मकान के नीचे रहने वाले 'गुरू' लोगों को ले जाकर जगह-जगह से गिरफ्तार क्रान्तिकारियों को दिखा कर पूछती थी—"क्या यह लोग तुम्हारे मकान के ऊपर के अड्डे में कभी आते जाते थे?" उन्हें सहारनपुर ला डाक्टर, शिव और कपूर को दिखा कर वही प्रश्न पूछा गया। आँखों ही आँखों में इन लोगों ने उन्हें और उन्हों ने इन्हें पहचाना परन्तु 'गुरू' लोग पहचान से इनकार कर गये। बाद में उन लोगों ने किसी सिपाही की मार्फत शिव और कपूर को सन्देश भी भिजवाया—"तब आप लोगों की असलीयत न जानने के कारण आप की कद्र नहीं की। भरोसा रखिए, हम लोगों की जात से आप को कोई नुकसान न पहुँचेगा। बल्कि हम लोगों के लायक कोई खिदमत हो तो बिला तकल्लुफ हुक्म कीजियेगा।" इसी प्रकार

लकड़मण्डी में डाक्टर की दुकान के पड़ोस में रहने वाले निम्न-स्थिति के कई लोगों को भी इन्हें पहचानने के लिए लाया गया। कपूर अपने बयान पर डटे हुआ था कि वह इस घर के सामान और मामले की बाबत कुछ नहीं जानता। अपने मित्र के साथ एक दिन पहले ही वहाँ आया था। पुलिस उसे पड़ोसियों से पहचनवाकर सिद्ध करना चाहती थी कि कपूर वहाँ ही रहता रहा है। इस समय तक इन लोगों के क्रान्तिकारी होने की बात फैल चुकी थी और अधिकांश लोगों ने इन्हें पहचानने से इन्कार कर दिया।

इस प्रकरण में यह भी अप्रासंगिक न होगा कि श्री चन्द्रभानु गुप्त और श्री मोहनलाल सक्सेना जेल में बन्द क्रान्तिकारियों के गुप्त और जोखिम भरे सन्देश ले कैसे आते थे? अंग्रेज़ सरकार अपने न्याय की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये हवालात में बन्द अभियुक्तों का यह अधिकार स्वीकार करती थी कि अभियुक्त अपनी सफ़ाई के बारे में अपने वकीलों से गुप्त परामर्श कर सकते हैं। काकोरी के क्रान्तिकारी अभियुक्त जेल और पुलिस के अफ़सरों की देखरेख में इन वकीलों से बातचीत करते थे परन्तु सुनवाई की सीमा से दूर। न्याय की दृष्टि से अभियुक्तों का यह अधिकार तर्कसंगत भी है। यदि अभियोग लगाने वाली पुलिस यह जान जाय कि अभियोग के विरुद्ध क्या सफ़ाई या गवाही दी जा सकती है तो इस सफ़ाई और गवाही की काट भी पुलिस तैयार कर सकेगी और अभियुक्त कभी कानूनी सफाई न दे सकेगा। इसी अधिकार के आधार पर चन्द्रभानु जी गुप्त और मोहनलाल जी सक्सेना काकोरी के अभियुक्तों के गुप्त सन्देश उन के क्रान्तिकारी साथियों तक पहुँचा सकते थे।

गुप्त सन्देश आने-जाने का सन्देह कर पुलिस ने कई बार अभियुक्तों के इस अधिकार पर रोक लगानी चाही थी। ऐसी अवस्था में क्रान्तिकारी अभियुक्तों और उनके कांग्रेसी वकीलों ने प्रबल विरोध किया। अंग्रेज़ी सरकार अपने न्याय की स्वयम् इतनी प्रतिष्ठा करती थी कि सन्देह के बावजूद उन्हों ने अभियुक्तों का यह अधिकार न छीना। कांग्रेसी सरकार के रामराज्य में अभियुक्तों का आत्मरक्षा का यह अधिकार भी सत्य-अहिंसा की लपेट में आ गया है। फरवरी १६४६ में देशव्यापी रेल हड़ताल की रोक-थाम करने के लिये कांग्रेसी सरकारों ने देश भर में मज़दूर और कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं को समेट कर जेलों में डाल दिया।

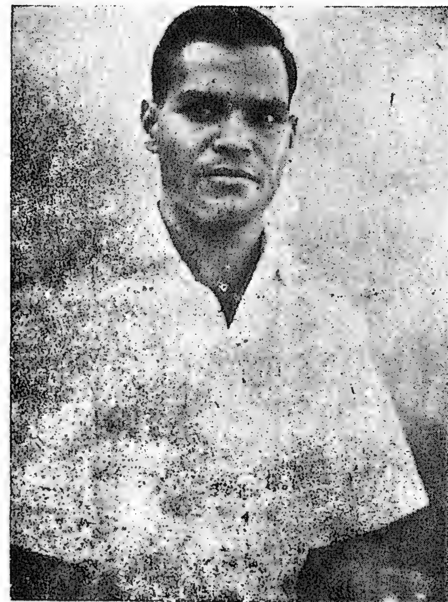
हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना की सहारनपुर बम फैक्टरी में गिरफ्तार साथी



शिव वर्मा



डा० गयाप्रसाद



जयदेव कपूर

था। कम्युनिस्ट पार्टी का मेम्बर या किसी भी मजदूर संगठन का सदस्य न होने पर भी मैं इस लपेट में आकर लखनऊ जिला जेल में बन्द हो गया। कुछ कम्युनिस्ट और मजदूर साथियों ने गोल-मोल अभियोगों के आधार पर गिरफ्तार कर लिये जाने के विरुद्ध अदालती कारवाई करनी चाही। उन्हों ने अपने वकीलों को मुलाकात के लिये जेल में बुलाया। वकीलों को मुलाकात का अवसर बड़ी कठिनाई से मिला। खुफिया पुलिस के अफसरों का आग्रह था कि वे अभियुक्तों और वकीलों की बातचीत का प्रत्येक शब्द सुनना चाहते हैं। इस अन्याय के विरोध में अभियुक्तों और वकीलों ने मुलाकात करने से ही इनकार कर दिया।

एक साहित्यिक के नाते मेरी गिरफ्तारी का विरोध बहुत से पत्र-पत्रिकाओं और कुछ प्रभावशाली कांग्रेसी लोगों ने भी किया। मेरा स्वास्थ्य भी खराब था। मुझे नाम मात्र की जमानत और सार्वजनिक भाषण और लेखन से दूर रहने की शर्त पर छूट जाने का अवसर दिया गया। मैंने रिहाई की यह शर्त स्वीकार न की। कुछ ही दिन पूर्व शहीद रुद्रदत्त भारद्वाज के बीमारी की हालत में गिरफ्तार होकर अगले ही दिन मर जाने की घटना के कारण अभी जनता में कांग्रेसी सरकार के प्रति घृणा का गुब्बार ताजा ही था। मेरे शर्त स्वीकार करने से इनकार कर देने पर भी मुझे स्वास्थ्य के विचार से छोड़ दिया गया।

जेल से छूटने पर मैं तत्कालीन पुलिस मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री से मिला और जेल में बन्द अभियुक्तों के अपने वकीलों से पुलिस की सुनवाई से बाहर बातचीत करने का अधिकार छीन लिये जाने के अंधेर की शिकायत की। शास्त्रीजी ने चर्खा कातते समय अपनी नज़र तकले से निकलते हुए सूत की ओर किये ही उत्तर दिया—"आप नहीं जानते इन कम्युनिस्टों को! यह लोग बड़े धूर्त होते हैं। हिंसा में विश्वास रखते हैं। इन्हें गिरफ्तार करने का यत्न किया जाता है तो फरार होकर छिप जाते हैं।"

शास्त्री जी को याद दिलाया कि सन् १९३१ में अंग्रेज सरकार द्वारा कांग्रेस के गैरकानूनी घोषित कर दिये जाने पर और १९४२ में भी अहिंसा-वादी कांग्रेसी फरार होकर अपना राजनैतिक काम कर रहे थे। कम्यु-निस्टों को आप प्रकट आन्दोलन चलाने ही नहीं दें तो वे गुप्त आन्दो-लन चलाने के लिये मजबूर हैं। मुझे शास्त्रीजी की खिसियाहट वैसी ही

जान पड़ी जैसे कुत्ता अपनी झपट से भाग गई बिल्ली पर खौंखिया रहा हो। आग्रह किया कि पुलिस की सुनवाई से बाहर वकील से परामर्श करना अभियुक्त का कानूनी अधिकार है। अंग्रेज सरकार क्रांतिकारियों को कम धूर्त और हिंसक नहीं समझती थी परन्तु उन्हों ने अभियुक्तों का यह अधिकार कभी नहीं छीना। शास्त्री जी ने हां-हूँ कर अधिकार की बात तो स्वीकार की। इस बात की ओर ध्यान देने का विश्वास दिलाया परन्तु बाद में भी कुछ न हुआ। ऐसी घटनाओं से जनता कांग्रेसी 'रामराज्य' की नैतिकता और अंग्रेज के 'रावणराज्य' की नैतिकता की तुलना कर खिन्न हुए बिना नहीं रह सकती।

सहारनपुर की बम फैक्टरी पकड़ी जाने का परिणाम मेरे लिये व्यक्तिगत रूप से हुआ, दल के मूल संगठन से सम्बन्ध की आशा टूट जाना। अब कलकत्ते जाकर भगवती भाई को ढूंढ़ने के सिवा और राह नहीं थी।

× × ×

तीन

कलकत्ता और बम का असफल आविष्कार

उस समय तक कलकत्ते से मेरा परिचय हिन्दी में अनुवादित बंगाली उपन्यासों में वर्णित चित्रों और 'रौलट-कमेटी' की रिपोर्ट में दी गई क्रान्तिकारी घटनाओं तक ही सीमित था। इस महानगरी में एक व्यक्ति से भगवती भाई का सूत्र पा सकने की आशा थी। यह थीं, दीदी सुशीला। दुर्गा भाबी से मालूम हुआ था कि कलकत्ते के सेन्ट्रल एवेन्यू में एक करोड़पती सेठ छाजूराम की हवेली है। सुशीला दीदी इन्हीं सेठ की कुमारी की अध्यापिका थीं और इन्हीं के मकान के एक कमरे में रहती भी थीं। लाहौर से कलकत्ते तक रास्ते में दो बार टिकट खरीदा। प्रयोजन था कि इतनी लम्बी यात्रा करने वाले टिकट की ओर ध्यान आकर्षित न हो। साथ सामान कुछ भी न था। एक छोटे से बेग में लाहौर जेल जाते समय पहिनी पोशाक साथ लिये था। सेठ के मकान पर जाने से पहिले स्टेशन पर ही वेटिंगरूम में कपड़े बदल लिये और सेठ जी के मकान पर सम्मानित वेष-भूषा में पहुँचा।

अप्रत्याशित रूप से मुझे अपने सामने खड़ा देख सुशीला दीदी को उत्साह और चिंता दोनों ही हुई। उत्साह इसलिये कि लाहौर की बमफैक्टरी पर पुलिस के धावे में सुखदेव और दूसरे साथियों के गिरफ्तार हो जाने और सहारनपुर में भी दल की बम फैक्टरी पकड़ ली जाने के बाद उन्हें दल के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने की आशंका हुई थी। कलकत्ते में भी यतीन्द्रनाथ दास, फणीन्द्रनाथ घोष आदि दल के कई लोग गिरफ्तार हो चुके थे। सब ओर आतंक और निरुत्साह छाया हुआ था। दल के प्रति या दल के कुछ लोगों के प्रति शुसीला दीदी की सहानुभूति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि लाहौर में सांडर्स को गोली मार कर भागने के बाद भगतसिंह को दीदी ने निशंक अपने यहां शरण दी थी। चिन्ता का कारण स्पष्ट ही था कि मैं

पूर्ण सूचना या प्रबन्ध का अवसर दिये बिना फरारी की अवस्था में उनके यहां जा धमका। सेठ के परिवार के लोगों को मेरा क्या परिचय दें ? दीदी को इस बात से उत्साह हुआ कि गिरफ्तारी का भय होने पर भी मैं केवल छिपने की ही बात नहीं सोच रहा था बल्कि भगवती भाई को ढंढ़कर काम में सहयोग देना चाहता था।

मेरे आने से सुशीला दीदी को सान्त्वना मिलने का एक और भी कारण था :—लाहौर बम फैक्टरी पकड़े गये एक मास बीत चुका था। यह बात फैल चुकी थी कि बम फैक्टरी का मकान भगवती भाई के नाम से किराये पर लिया गया था। जयचन्द्र जी भगवतीचरण के विरुद्ध अपने प्रचार में इस घटना को उनके सी० आई० डी० का आदमी होने का प्रमाण बता रहे थे। सुशीला दीदी को भगवती भाई के प्रति दल के साथी रूप में ही नहीं बल्कि व्यक्तिगत आदर भी था। वे उन्हें कविता लिख कर राखी बांधती थीं और भगवती भाई भी सुशीला दीदी को एक अति असाधारण व्यक्ति समझते थे। भगवती भाई के प्रति मेरा दृढ़ विश्वास देख दीदी को भरोसा हुआ।

सुशीला जी से मालूम हुआ कि भगवती भाई हैं तो कलकत्ते में ही परन्तु उन्हें सहसा खोज मिल लेना सम्भव नहीं। उन का स्थान सुशीला जी को मालूम नहीं था। मालूम होने का कुछ लाभ भी न था। भगवती भाई अति निम्न-श्रेणी के एक 'बासे' में रहते थे। ऐसी जगह सुशीला दीदी जैसी गोरी-चिट्टी, सम्भ्रान्त रूपरेखा और सम्मानित वेष-भूषा की महिला का पहुँचना संदेह का ही कारण होता। भगवती तीसरे या चौथे दिन 'मैदान' मे या 'चौरंघी' पर दीदी से मिल लेते थे। सुशीला जी से मालूम हुआ कि भगवती दल का काम करने के लिये दृढ़ता से अड़े हुये थे परन्तु जयचन्द्र जी के दुष्प्रचार के कारण अत्यन्त दुखी थे कि अपनी इमानदारी का विश्वास कैसे दिलायें ? खास कर कलकत्ता के क्षेत्र में क्रान्तिकारियों को जयचन्द्र जी पर ही विश्वास था।

तीसरे या चौथे दिन सन्ध्या समय सुशीला .दीदी के साथ भगवती भाई से मिलने की आशा में 'चौरंघी' की तरफ गया। हम लोग ट्राम की लाईन के परे 'मैदान' के किनारे-किनारे 'विक्टोरिया स्मारक' की ओर चले जा रहे थे। एक व्यक्ति मोटा-मैला कुरता, घुटनों तक ऊंची धोती पहिरे, दरबानों की सी दाढ़ी बढ़ाये, काली टोपी पहिने नमस्कार के संकेत से माथे को छू कर हम लोगों के सामने खड़ा हो गया। यहाँ

भगवतीचरण से मिलने की आशा थी इसलिए तुरन्त पहचान लिया। साधारण तौर पर पहचान लेना कठिन होता। मन उछल पड़ा कि पंजाबी ढङ्ग से गूढ़ आलिंगन में मिलें परन्तु मन मार रह गये। मैं कलकत्त के साधारण भद्र लोक की भाँति खूब साफ कमीज़ और धोती पहिने था। वैसी ही पोशाक में सुशीला दीदी थीं। एक साधारण दरबान से आत्मीयता प्रकट कर लोगों को विस्मित करना उचित न था।

भगवती भाई ने अपने रहने की जगह, 'बांसतल्ला' का सस्ता मारवाड़ी बासा मुझे दिखा दिया। एक तंग गली में से बासे का गली नुमा अंधेरा दरवाज़ा आँगन तक जाता था। आँगन के चारों ओर चौमंजिली कोठरियां थी। प्रत्येक कोठरी में एक या दो परिवार समाए हुए थे। अधिकांश गरीब दिखाई पड़ने वाले मारवाड़ी और कुछ कोठरियों में परिवारहीन लोग भी थे। सभी परिवार अपने घर का जूठन, कूड़ा, दोने, कुल्हड़ आदि आँगन में फेंकते रहते थे। मारवाड़ी स्त्रियां माथे पर जड़ाऊ 'बोरला' बाँधे, शरीर को अपर्याप्त रूप से ढँके खिड़कियों में बैठी आमने-सामने की कोठरियों की स्त्रियों से बातचीत करती रहतीं। तीन-चार दिन करोड़पति के मकान की भव्यता में गुज़ार कर मैं भगवती भाई की कोठरी में आ गया और उन्हीं की भाँति उत्तर प्रदेश के 'भैयों' (दरबान या ग़रीब मुनीम) की पोशाक में घूमने फिरने लगा।

मैंने भगवती भाई को जम्मू में किए बम के अपने नए आविष्कार की बात बताई। उन्हों ने कौलिज में साइन्स पढ़ी थी। इस विषय में मेरी अपेक्षा उनकी समझ का मूल्य अधिक था। पूरा विवरण सुन वे भी फड़क उठे—"अरे यार बस यह हो जाय तो फिर बात ही क्या ?" उन्हों ने उस पर तर्क किया। अन्त में सान्त्वना पा बहुत प्रसन्न हुए और मेरी प्रशन्सा में बोले—"तू तो भैया रत्न है" (यू आर ए ज्यूएल !)। भगवती जब किसी से प्रसन्न हो जाते तो इसी विषेशण से सम्बोधन किया करते थे।

इस समय तक हम दोनों बेहथियार ही थे। भगवती भाई ने कलकत्ते में अपना समय व्यर्थ नहीं गवांया था। मेरे पहुँचने से पूर्व ही लाहौर षड्यन्त्र के सम्बन्ध में गिरफ़्तार यतीन्द्रनाथ दास के मकान का पता भवानीपुर में ले लिया था। हम दोनों यतीन्द्रनाथ दास के भाई किरण दास से मिले। किरण दास जेल में बन्द अपने भाई यतीन्द्र से

मिलने लाहौर गया था तो दुर्गा भाबी के यहां ही ठहरा था। वह क्रांतिकारी बन्दियों के और उनके सम्बन्धियों के प्रति दुर्गा भाबी की श्रद्धा और बलिदान हो जाने के व्यवहार को अपनी आँखों देख आया था। हम लोगों ने किरण से स्पष्ट बात की। कलकत्ता के क्रान्तिकारियों से परिचय करा देने और कम से कम दो पिस्तौल खरीदवा देने का अनुरोध किया। अपना विश्वास किरण के प्रति प्रकट करने के लिए दो पिस्तौलों के मुँह माँगे दाम भी पेशगी दे दिये।

यह बात अप्रासंगिक न होगी कि मेरी जेब में शायद पंद्रह-बीस रूपये से अधिक नहीं थे। जो कुछ था वह लाहौर में बहिन प्रेमवती और दुर्गा भाबी द्वारा इकट्ठा किया दल का ही पैसा था। भगवती भाई के पास अपना, निजी लगभग पाँच सौ रूपया था। पिस्तौलों के लिये लगभग तीन सौ इसी रूपये में से दिये गये थे। किरण ने रूपया लेते समय पूर्ण आत्मविश्वास से दो दिन में दो पिस्तौल ला देने का वायदा किया था। दिन पर दिन बीतने लगे। सप्ताह से अधिक बीत गया परन्तु पिस्तौल न मिले। हम लोग किरण के बताये स्थान पर जाते और वह न मिलता। अपने घर आने के लिये उस ने मना कर दिया था कि उस के सम्बन्धियों को संदेह न हो और उस के घर पर पहरा देने वाले खुफिया पुलिस के लोग हमारा पीछा न करने लगें।

हमारे अनुरोध पर किरण ने रात्रि के अन्धकार में दो बार हमें 'दादा' लोगों से भी मिलाया। इन नेताओं ने हमारे संगठन की व्यापकता के बारे में प्रश्न किये। हमें स्वीकार करना पड़ा कि साथियों की गिरफ्तारी के कारण हमारा सम्बंध इस समय दल से टूटा हुआ है। इन लोगों ने हमारे तरीकों के प्रति निराशा प्रकट की और समझाया कि क्रान्ति ऐसे छुट पुट कामों से नहीं हो सकेगी। आप लोग पहिले अपना संगठन कायम कर लीजिये उसके बाद हम परिस्थिति देख कर कुछ कह सकेंगे।

किरण के रंग-ढंग से हमें सन्देह होने लगा। उसके पीछे घूमने और बंगाली दादाओं से मिलने के लिये एक ही आदमी पर्याप्त था। नीति और चातुर्य से बात करने मे और भारी भरकम शरीर से भी भगवती मेरी अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक थे। सौ रूपया अपने पास से मुझे दे कर उन्हों ने कहा—"तुम जम्मू लौट जाओ। आवश्यक औज़ार खरीद कर नये ढंग से बम तैयार करो। मैं सप्ताह-

दस दिन में, यहां जो हो सकेगा करके, जम्मू पहुँच जाऊँगा। बम तैयार हो जाय तो उसके परीक्षण के लिये मेरी प्रतीक्षा करना।

मेरे जम्मू पहुँचने पर भागराम लोहा काटने की आरी, छैनी, हथौड़ी और एक छोटी बांक खरीद लाया। पीतल की आध इंच व्यास की नली से टुकड़े काट और सीसा गला कर गोलियां ढाल हम लोगों ने कारतूस बना लिये। कारतूसों में टोपी की जगह विस्फोटक पदार्थ को स्पिरिट में गूंध बत्तियां बना कर लगा दीं। यही काम अधिक कठिन था। इसके बाद रेत की एक गोल पोटली बाँध अपने बनाये कारतूसों को उचित स्थानों पर जमा, गुंधे हुआ 'प्लास्टर-आफ पैरिस' थाप कर भीतर से खोखला गोला बना लिया। गोले के सूख जाने पर पोटली के मुंह पर बंधा धागा खोल देने से रेत बाहर निकल गयी और महीन कपड़े को भी खींच लिया। गोले के भीतर के पोल में आतिशबाज़ी के प्रयोग में आने वाला एक विस्फोटक पदार्थ भर दिया। मुंह पर एक कई गज़ लम्बी तोड़े की रस्सी लगा दी। इस बम में बम के फेंके जाने पर उसे चलाने वाला घोड़ा और घोड़े की चोट से आग पैदा करने वाला द्रव्य नहीं लगाया गया था। विचार था, यदि हमारा यह बम पूरी शक्ति से फटकर गोलियों को घातक रूप से फेंकने में सफल हो जायगा तो शेष त्रुटि भी शीघ्र ही पूरी कर ली जायगी। मुझे अपनी सूझ और भागराम के हाथ की दस्तकारी पर बहुत भरोसा था। लगभग बम तैयार होते ही भगवती भाई जम्मू आ पहुँचे।

भगवती भाई को किरण से केवल एक पिस्तौल, बीस कारतूस और अनेक क़समों के साथ दूसरा पिस्तौल एक मास के भीतर दे देने का वायदा मिला था। यह पिस्तौल मिल जाने पर हम लोग अपने आपको सशस्त्र अनुभव करने लगे। मन में उल्लास और उत्साह अनुभव होने लगा कि अब हम व्यर्थ में नहीं मरेंगे। यह ठीक है कि हम इतने भोले नहीं थे कि एक ही पिस्तौल से ब्रिटिश सरकार को उखाड़ फेंकने का स्वप्न देखने लगते परन्तु एक पिस्तौल का भी मूल्य बहुत था। पहली बात तो यह कि पकड़े जाने का अवसर आने पर पुलिस का मुकाबिला कर आत्म रक्षा का प्रयत्न कर सकते थे। ऐसा प्रयत्न दूसरों के लिए साहस का उदाहरण होता। इससे अधिक पिस्तौल का राजनैतिक उपयोग था। क्रान्ति और विद्रोह की निरी सैद्धान्तिक बातें करने से लोगों पर ऐसा-वैसा ही प्रभाव पड़ता था परन्तु अपने उद्देश्य के प्रमाण

स्वरूप प्रत्यक्ष हथियार दिखा देने पर लोगों मे सहसा उत्साह और विश्वास उत्पन्न हो जाता था। ब्रिटिश सरकार के हथियार-विरोधी कानून और पुलिस की हजार सतर्कता के बावजूद हम हथियार रख सकते है, यह हमारे सम्पर्क में आने वाले लोगों की दृष्टि मे हमारी क्षमता और सरकार की पराजय का प्रमाण था। नौजवानों को रिवाल्वर, पिस्तौल और बम दिखा कर प्रभावित करने का तरीका केवल उस समय ही रहा हो सो बात नहीं। १६४२-४४ तक सशस्त्र क्रान्ति के पथ पर चलने वाले ऐसा ही करते रहे है। मेरी अपेक्षा भारी-भरकम डील डौल, गम्भीर चेहरे के भगवती भाई के सशस्त्र प्रकट होने का प्रभाव जम्मू के साथियों पर अधिक ही पड़ा।

दूसरे ही दिन नये तैयार किए बम को अजमाने के लिए हम लोग नगर से लगभग चार मील दूर ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी जंगल में गये। अपने आविष्कार की सफलता देखने के लिए मेरा मन उमग रहा था। हम में से किसी को भी सफलता मे सन्देह नहीं था परन्तु उसे प्रत्यक्ष कर लेना चाहते थे। बम को एक छोटे गढ़े में रखकर मन-मन, डेढ़-डेढ़ मन पत्थरों से ढक दिया। बम रखने की जगह से लगभग पचीस-तीस फुट की दूरी पर एक बड़ी चट्टान दीवार की तरह खड़ी थी। गोलियों के निकास के लिए जगह छोड़ दी थी। ख्याल था, बम की कोई न कोई गोली इस चट्टान पर लगेगी ही। इससे बम के प्रभाव की दूरी का अनुमान हो सकेगा। मैं और भगवती इस चट्टान से परे एक ऊंची जगह जा खड़े हुए। भागराम ने तोड़े में आग लगा दी और समीप एक काफी गहरे गढ़े में कूद गया।

बम के विस्फोट का शब्द काफी ज़ोर से हुआ परन्तु पत्थर न हिला चट्टान पर एक भी गोली लगने का कोई निशान न बना। समीप जाकर देखा तो कारतूस प्लास्टर आफ पैरिस का गोला फट जाने के कारण आस-पास बिखरे हुए थे। बहुत निराशा हुई। मेरा मुंह लटक गया। भगवती भाई ने मुझे तसल्ली दी। उस समय तो मैं न समझ सका कि हमारे कारतूसों ने दूर तक मार क्यों नहीं की, यह बात कुछ दिन बाद ही समझ आई।

हम दोनो खिन्न चित्त हो जम्मू नगर के नीचे बहती 'तवी' नदी की ओर घूमने चले गये। चांदनी रात थी। नदी किनारे बैठ हम लोगों ने निश्चय किया कि बम बनाने के 'तिलस्मी' आविष्कारों से काम नहीं

चलेगा। लोहे के खोल बनाए बिना चारा नहीं। दूसरे लोगों से खोल ढलवाने और कटवाने में सदा आशंका रहेगी। इस काम को कर सकने वाला आदमी, भागराम तो हमारे साथ था परन्तु ऐसा क़ारखाना जमाने के लिए काफ़ा रुपये और समय की आवश्यकता थी। इस समय बहुत सी गिरफ्तारियाँ हो जाने के कारण जनता में हमारे प्रति सहानुभूति और उत्साह घट गया था। आर्थिक सहायता कम ही मिलती थी। मिलती थी तो सैद्धान्तिक सहानुभूति से नहीं, व्यक्तिगत लिहाज़ से। अधिकांश काम भगवती भाई के ही पैसे से चल रहा था। बहुत मामूली सी सहायता बहिन प्रेमवती के इधर-उधर से माँग-ताँग कर कुछ इकट्ठा करने से मिल जाती थी। जनता की सहानुभूति पाने और उसे उत्साहित करने के लिए तुरन्त ही कुछ करना आवश्यक था। बम के खोल बन भी जाते तो विस्फोटक पदार्थ के बिना उनका कोई उपयोग नहीं हो सकता था। अलबत्ता विस्फोटक पदार्थ बना लेने पर अच्छे खोलों के बिना भी उसका उपयोग हो सकता था।

'तवी' के किनारे चाँदनी रात में बैठ, टिटीहरी की पुकारें सुनते हुए हम लोगों ने निश्चय किया, यदि हम खूब सशक्त विस्फोटक पदार्थ काफी मात्रा में बना सकें तो अधिक लोगों की सहायता और बम के खोलों के बिना भी मसाले को रेल गाड़ी की पटरी के नीचे दबा कर वाइसराय की ट्रेन उड़ा सकते हैं। यदि हम दोनों में से एक व्यक्ति जान देकर भी यह काम कर सके तो जनता की भावना हमारे पक्ष में बदल जायगी और भविष्य में काम अधिक व्यापक रूप में और तेजी से हो सकेगा।

दल के विस्फोटक पदार्थ बनाने वाले विशेषज्ञ यतीन्द्रनाथ दास, सुखदेव और शिव वर्मा गिरफ़्तार हो चुके थे। कलकत्ते में भगवती भाई ने किरण दास की मारफ़त बम का मसाला बनाने वाले व्यक्ति का परिचय पाने की बहुत कोशिश की परन्तु असफल रहे। भगवतीचरण ने सोच कर बताया—एक आदमी ऐसा है जो चेष्टा करने पर अवश्य यह नुसखा ढूंढ़ सकता है। उन्हों ने कहा—"जयचन्द्र के वैमनस्यपूर्ण प्रचार के बावजूद वह व्यक्ति मेरा विश्वास कर लेगा।" इस व्यक्ति का नाम उन्हों ने बताया, देवदत्त शर्मा। देवदत्त गवर्नमेण्ट कालेज, लाहौर में रसायन के अध्यापक थे। उनकी भगवती भाई से पुरानी मित्रता थी। शायद एक समय दोनों सहपाठी रह चुके थे। देवदत्त जी से मेरा भी

परिचय था। इस समय कालेज में छुट्टियाँ होने के कारण देवदत्त अपने घर श्रीनगर, कश्मीर में ही थे। भगवती भाई ने उन से मिलने के लिए कश्मीर जाने का विचार प्रकट किया।

मैंने भगवती भाई के कश्मीर जाने पर आपत्ति की—"देवदत्त को तुम पर विश्वास है परन्तु इस समय लाहौर के सैकड़ों आदमी श्रीनगर, में होंगे। तुम इसके पूर्व श्रीनगर जा चुके हो। तुम्हें बहुत से लोग पहिचानते होंगे। जयचन्द्र जी के दुष्प्रचार के कारण लोग तुम्हें पहचान कर व्यर्थ में उंगली उठाने लगेंगे। यह भी असम्भव नहीं कि लाहौर की बम फैक्टरी पकड़ी जाने के बाद जयचन्द्र ने जो प्रचार किया है, उसका प्रभाव देवदत्त पर भी पड़ा हो! उन से मेरा भी परिचय है। मुझे भरोसा है कि मैं तुम्हारा नाम लेकर या स्वतंत्र रूप से ही अपना अनुरोध मनवा सकूंगा। कश्मीर जाना मेरी अपेक्षा तुम्हारे लिए अधिक आशंकाजनक है। यदि आशंका दोनों के लिए बराबर हो तो भी दल के लिये तुम्हारा बचे रहना अधिक उपयोगी होगा।"—मेरा ही कश्मीर जाना तै हुआ। भगवती भाई ने निश्चय किया कि वे जाकर दिल्ली में डेरा जमायेंगे और मैं कश्मीर से वहीं लौटूं। दिल्ली में अपने एक विश्वस्त परिचित का पता उन्हों ने मुझे दे दिया।

दूसरे-तीसरे दिन मैं एक आधुनिक शौकीन सैलानी के वेष में कंधे से कैमरा और बरसाती-कोट लटकाये कश्मीर की ओर चल दिया। हम लोगों की साँझी सम्पत्ति, एक मात्र पिस्तौल भगवती भाई ने आत्मरक्षा के लिए मुझे सौंप देनी चाही। मैंने उसे अनावश्यक समझा, कहा-"इस अपरिचित जगह में सन्देह हो जाने पर मैं भागकर निकल तो सकूँगा नहीं, बहुत होगा तो रियासती पुलिस का एकाध आदमी मार डालूँगा। उस से लाभ क्या? जब तक दूसरी पिस्तौल न मिल जाय, इसे तुम्हीं रक्खो। तुम पंजाब के रास्ते दिल्ली जा रहे हो। तुम मेरी अपेक्षा अधिक आशंका में हो।" इतने दिन में यह भी भरोसा हो गया था कि अपने व्यवहार से ही सन्देह का अवसर न आने दूँगा। हुआ होगा भी तो कुछ न कुछ कर ही लूँगा। कश्मीर जाने के लिए रुपया भगवती भाई ने ही दिया। यह भी समझाया कि इतनी दूर जा रहे हो तो रुपये की कन्जूसी से दर्शनीय स्थानों को देखने जाने में संकोच न करूं। रुपया कम पड़ जाने पर उन्हें देहली में तार दे दूं।

× × ×

बम की खोज में

कई घटनायें और दृश्य मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ जाते हैं। दृष्यों का प्रभाव समय-समय पर मस्तिष्क की ग्राह्य अवस्था पर भी निर्भर करता है। लगभग दो ही साल पूर्व बरफानी चोटियों की छाया में बसे, हरे-भरे काँगड़ा में, गया था तो मन के आतंकित और चिन्तित होने के कारण उस अनुपम सौन्दर्य की ओर ध्यान ही न जाता था। अब मानसिक अवस्था बदल चुकी थी। तब मैं गिरफ्तारी से भाग रहा था। इस समय अपने विश्वास में, दल की ओर से एक उत्तरदायी व्यक्ति के रूप में महत्त्वपूर्ण काम के लिए जा रहा था। अपने साथियों या जनता का विश्वास पाकर ही व्यक्ति में आत्मविश्वास पैदा हो जाता है। सतर्क तो अब भी अवश्य था परन्तु भयभीत नहीं।

जम्मू से कश्मीर का अन्तर लगभग २०५ मील है। यात्रा मोटर-बस में की। सन्ध्या समय 'बटोट' से गुज़रे। बटोट की उपत्यका में धीमे-धीमे उठती ढलवानों पर फैले देवदार के जंगलों के पीछे सूर्यास्त हो रहा था। सड़क किनारे एक बड़ी चट्टान पर खड़े एक योरोपियन दम्पत्ति अत्यन्त तन्मयता से उस दृश्य को देख रहे थे। सूर्यास्त के सिन्दूरी क्षितिज पर देवदारू की फैली हुई पंक्तियाँ और उन्हें देखने वाले ये दम्पत्ति एक ही दृश्य के अंग जान पड़े। आज बाईस वर्ष बाद भी मैं अपनी कल्पना में उस दृश्य को हू-बहू देख पाता हूँ और अब भी याद है कि देखने में भले लगने पर भी मैंने उनसे घृणा करने का यत्न किया था। इस ईर्षा से कि जिनका देश है, जो श्रम कर रहे हैं वे तो धूल में मिल रहे हैं और यह उसका रस ले रहे हैं। उनकी जगह मैं स्वयं ले लेना चाहता था। उन का साफ़-सुथरा और सुखी होना ही मुझे बुरा लग रहा था। उनका सुख मेरे देश का दुख था। अपने सुधार के लिये उन से घृणा आवश्यक थी।

दूसरे दिन प्रायः ठीक दोपहर के समय मोटर बस 'बन्हाल' पहाड़ पर चढ़ती जा रही थी। बन्हाल बहुत ऊँचा पहाड़ है। सड़क अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षर '*Z*' की तरह या मुड़ी हुई कोहनियों की तरह बार-बार दायें और बायें मुड़ती हुई ऊपर ही ऊपर जा रही थी। जून के महीने में पहाड़ बिल्कुल रूखा और खुष्क था। शायद ही कहीं कोई वृक्ष, घास या हरियावल दिखाई देती हो। ढलवान भी बहुत

कड़ी और सीधी। पहाड़ की रीढ़ पर पहुँचने से पहिले एक सुरंग तक पहुँच गाड़ी कुछ देर के लिए थम गई। मानो इस कड़ी चढ़ाई से मोटर के लोहे के फेफड़े भी हार गये हों। कड़ी चढ़ाई के कारण एक बार आधे में भी इंजन गरम हो जाने से पानी बदलने के लिए मोटर को रोकना पड़ा था। यहाँ पहुँचते-पहुंचते इंजन फिर बहुत गरम हो गया। पहाड़ पर बनस्पति की आड़ न होने से घाटी की बस्ती सुरङ्ग से नीचे बिल्कुल आंखों के सामने ही थी। जान पड़ रहा था, बालिश्त-बालिश्त भर की गुड़ियों के खिलौनों की बस्ती बसी हुई है।

मोटर सुरङ्ग में घुसी। सुरङ्ग छोटी ही थी। दूसरी ओर निकलते ही मानो रंगमंच पर परदा बदल गया! सब ओर हरियावल, फूलों से लदे वृक्ष। हवा में ठन्डक। आकाश भी खूब नीला। जान पड़ा, जादू की छड़ी के स्पर्श ने सब कुछ बदल दिया हो। बन्हाल पहाड़ नौ हजार फुट से अधिक ऊँचाई की गगनचुम्बी दीवार है। दीवार से इस ओर जम्मू प्रान्त और सुरङ्ग पार कश्मीर। जैसी कड़ी चढ़ाई चढ़ कर आये थे लगभग वैसी ही ढलवान पर उतरते जा रहे थे।

उतराई समाप्त होने पर 'वेरीनाग' से प्रायः समतल सड़क मिली। सड़क के दोनों ओर 'सफेदों' की सफेद तनों और हरी चोटियों की अटूट पंक्तियां। बस्तियों की झोपड़ियां कुछ दूसरे ढङ्ग की। स्त्री-पुरुष और बच्चे दूसरे रूप रंग के। गोरे रंग, मैले-कुचैले हाथ-पांव, तंग गोल टोपियां और 'फिरन' (लबादों) के चीथड़े ओढ़े हुए। झोपड़ियों के आस पास कच्चे फलों से लदे वृक्ष। श्रीनगर केवल चालीस मील ही रह गया था, शीघ्र ही पहुँच गये।

मोटर के अड्डे पर होटलों और हाउसबोटों के दलालों की भीड़ थी। उतनी ही संख्या में पंजाब खुफिया-पुलिस के सिपाही भी। पंजाबी ही अधिक संख्या में दिखाई दे रहे थे। मैंने ऐसा व्यवहार किया कि पंजाबी नहीं समझता हूँ। सीधा 'नीडोज़' होटल में पहुँचा। इस होटल में अधिकांश योरोपियन या साहब-मिजाज़ हिन्दुस्तानी ही ठहरते थे। श्रीनगर की बाबत ऐसी सब बातें जम्मू के परिचित से जान चुका था। नीडोज़ होटल बहुत महंगा था। उस समय भी उस का खर्च पांच-छः रुपये प्रतिदिन रहा होगा। अब तब से कीमतें और दर चार-पांच गुणा बढ़ चुके हैं। मेरे विचार में यह दाम बहुत ही अधिक थे परन्तु सुरक्षा के विचार से यही उचित समझा।

होटल में भोजन के बाद लाहौर जेल जाने वाला सूट पहिन देवदत्त शर्मा का मकान ढूंढ़ने चला। यह मालूम था कि उनके बड़े भाई भीमसेन मैजिस्ट्रेट थे। शर्मा जी के छोटे भाइयों से लाहौर से परिचित था। उन लोगों से मुझे भय भी न था। भीमसेन जी मुझे पहिचानते न थे फिर भी चाहता था कि मैजिस्ट्रेट से भेंट न हो तभी अच्छा। भाग्य की बात, वही मिले। मेरे नाम-धाम और आने का प्रयोजन पंजाबी में पूछे जाने पर मैंने अंग्रेजी में ही बात-चीत की। मानों पंजाबी समझता नहीं : उत्तर दिया कि देवदत्त जी को लाहौर से जानता हूँ। उन्हों ने कहा था, यदि कभी श्रीनगर आऊं तो उनसे अवश्य मिलूं। मैजिस्ट्रेट साहब ने जानना चाहा मैं श्रीनगर में कहां ठहरा हूँ। उत्तर में नीडोज़ होटल का नाम सुन उनके चेहरे पर पड़ा प्रभाव स्पष्ट दिखाई दिया। उनके स्वर से अफ़सराना ढंग दूर हो आत्मीयता आ गई। मेरे अत्यन्त सम्भ्रान्त होने का विश्वास उन्हें हो गया।

देवदत्त जी सैर के लिये श्रीनगर से बाहर मटन या पहलगांव गये हुये थे। दो तीन दिन में उन के लौटने की बात थी। भीमसेनजी ने आश्वासन दिया कि एक पोस्टकार्ड लिख कर मेरे आने की सूचना भाई को दे देंगे। मैंने उन्हें एक काल्पनिक नाम और देहली के निवासी होने की बात कह दी। सध्या तक मैं श्री नगर के बाजारों और जेहलम के किनारे घूम-फिर कर स्थान का परिचय पाने की चेष्टा करता रहा। श्रीनगर जेहलम नदी पर बसा हुआ है। नदी के दोनों किनारों पर बस्ती जल को छूती है। किनारों पर सूखा स्थान या रेती नहीं है। कुछ-कुछ अंतर पर पुल हैं। सवारी के लिये टांगे और मोटरें भी चलती हैं परन्तु मुख्यतः शिकारों (छोटी नावों) पर ही आना-जाना होता है। जेहलम से छोटे-छोटे नाली-नाले प्रायः सभी स्थानों तक पहुँचते हैं। नदी की लहरों पर डोलती रंग बिरंगी छतरियों से ढंकी छोटी-छोटी नावें तितलियों के झुँडों जैसी जान पड़ती हैं। मुख्य पुल का नाम 'मीराकदल' है। मीराकदल के इस पार प्रायः साहब लोगों की खूब साफ़-सुथरी बस्ती है। दूसरी ओर कश्मीरियों की बस्ती, बहुत गन्दी। प्रायः योरोपियन ही सब ओर दिखाई देते थे। संख्या में चाहे वे आटे में नमक बराबर ही रहे हों परन्तु प्राधान्य उन्हीं का था। जैसे ढेर से आटे में चुटकी भर नमक मिला देने से नमक का ही स्वाद जान पड़ता है। जान पड़ता था, कश्मीरियों के जीवन का उपयोग सैलानी साहब लोगों, मुख्यतः

योरोपियनों को सुविधा पहुँचाना ही है। सैलानी मालिक जान पड़ते थे और स्थानीय लोग उनके दास।

तीन चार दिन तक नीडोज़ होटल का खरचा भरने का कोई उपयोग न था। चौबीस घण्टे का किराया तो देना ही था इसलिये रात वहीं रहा। अगले दिन दोपहर बाद 'गुलमर्ग' चला गया। देश के बड़े लोगों को गर्मी मालूम होती है तो वे कश्मीर में श्रीनगर चले जाते हैं। श्रीनगर जाने वाले बड़े लोगों मे भी कुछ बहुत बड़े लोग होते हैं। यह लोग जून के महीने में श्रीनगर से गुलमर्ग चले जाते हैं। गुलमर्ग में साधारणतः बहुत सर्दी पड़ती है। अधिकांश में बड़े साहब लोग ही वहां जाते थे। समुद्र तल से असाधारण ऊँचाई पर एक खूब बड़ा समतल घनी परन्तु छोटी-छोटी घास से ढका हुआ मैदान है, जैसे हरा गलीचा बिछा हो। इस मैदान के चारों ओर योरोपियन ढंग की छोटी-छोटी, दो-दो, चार-चार कमरे की कुटियां बनी हुई थी। इनका किराया बहुत अधिक था। साहब लोग दिन भर मैदान में 'गोल्फ' खेलते थे। गोल्फ खेलने के लिये गुलमर्ग जाना बहुत बड़ी साहबियत समझी जाती थी। एक बहुत महंगा होटल, शायद नीडोज होटल की ही शाखा भी थी। मध्यम या निम्न-मध्यमवर्ग के हिन्दुस्तानी दो-तीन दिन के लिये ही गुलमर्ग जा पाते थे। उनके लिये दो छोटे-छोटे, मैले से काठ के तख्तों की इमारत के होटल थे। इन्हीं में से एक मे ठहरा।

यहाँ पश्चिमी पंजाब के 'झंग' ज़िले से आये हुये तीन नौजवान भी दो-तीन दिन के लिये ठहरे हुये थे। उन्हे अपना परिचय जालन्धर के स्कूल मास्टर के रूप में दिया और इनके साथ सैर सपाटे में घूमता रहा। उस समय गुलमर्ग में अंग्रेजों के रोबदाब की सीमा न थी। जान पड़ता था, खास उनका ही अपना स्थान हो। बड़े मैदान में से आते-जाते हिन्दुस्तानी सहमते रहते थे। लोगों के आने-जाने से साहब लोगों के खेल में यदि विघ्न पड़ता तो वे माथे पर त्योरियां चढ़ा चाहे जिसे फटकार देते या मार बैठते। छोटे-छोटे कश्मीरी लड़के अपने ही जैसे मैले-कुचैले लबादे पहने साहब लोगों की गोल्फ खेलने की छड़ियां, थैले पीठ पर लादे उनके पीछे पीछे भागते रहते थे। गोल्फ की गेंद को कड़ी या धीमी चोट लगाने के लिये तरह-तरह की छड़ियों की जरूरत पड़ती है। यह छड़ियां उठाकर साहबों के पीछे पीछे घूमना कश्मीरी लड़कों का व्यवसाय था।

झंगी नौजवानों के साथ मैं हरे मैदान में घूम रहा था। वे साहब लोगों की डांट से अपमानित होने की आशंका में पंजाबी में अंग्रेजों को मां-बहिन की गालियाँ देते हुये उन्हें जूते मारने के विचार प्रकट कर रहे थे। जिस किसी भी अंग्रेज बच्ची, नवयुवती या बुढ़िया को देखते उससे व्यभिचार करने के इरादे की घोषणा कर देते। इसे अभद्रता ही कहा जायगा। आज ऐसा देखकर जरूर आपत्ति करूंगा परन्तु तब यह बुरा न लग रहा था। स्वभाव से इस प्रकार की अभद्रता मुझे पसंद नहीं। लाहौर की गलियों में इस प्रकार की अभद्रता के विरोध में मारपीट भी कर चुका था परन्तु उस समय उन नौजवनों के व्यवहार पर क्रोध नहीं आया।···क्यों? इसलिये कि गुलमर्ग पर छाये अंग्रेजों के आतंक की उपेक्षा करने और उसके विरुद्ध अपना अस्तित्त्व अनुवाद करने के लिये ही वे यह बक-झक कर रहे थे। यह एक प्रकार से अंग्रेजों द्वारा भारत के राष्ट्रीय दमन के प्रति असंतोष की अभिव्यक्ति और अपने दैन्य की अस्वीकृति थी। इसे वीरता नहीं कहा जायगा परन्तु आतंक का विरोध मानना ही होगा। तब राष्ट्रीय रूप में वीरता प्रकट करने या अंग्रेजों के सामने सिर ऊंचा कर सकने का अवसर भारतीय नौजवानों को था ही कहां ?

गुलमर्ग में उसी संध्या बादल छा गये और मैदान में भी धुनी हुई रुई जैसा धुन्ध भर गया। सख्त सर्दी हो गई। रात बरसाती और कंबल में लिपट कर काटी। दूसरे दिन भी रिमझिम वर्षा होती रही। आकाश घने बादलों से ढका हुआ था। बादल बहुत नीचे, पेड़ों की शाखाओं में उलझ-उलझ कर टप-टप कर रहे थे। होटल के नौजवान साथियों को ऐसी सर्दी में बाहर जाकर भीगने का शौक नहीं था। उन्हें एक और साथी मिल गया और वे कम्बल ओढ़ ताश खेलने बैठ गये। सुना कि गुलमर्ग से कुछ ही ऊपर 'अलपत्तर' में तब भी बरफ जमी हुई थी। मैं उसी ओर चल दिया। कुछ दूर चढ़ाई चढ़ने के बाद बिल्कुल सुनसान था। रास्ता बताने वाला भी कोई नहीं। जंगल में एक कश्मीरी छोकरा छोटे-छोटे कद की गौएं चराता दिखाई दिया। गोरा-लाल चेहरा, बारिश में भीगा हुआ, बीचों-बीच से कटे नारियल के खोल जैसी टोपी सिर पर कसी हुई, घुटनों तक चीथड़ा सा लबादा भीगा हुआ। पांव में रस्सी की बनी हुई चप्पल। हाथ में छोटी सी लाठी। मुझे देखते ही उसने मुस्करा कर सलाम और सम्बोधन किया—"साइब, सलाम पैसा" उस

समय कश्मीरी छोकरों का साधारण अभ्यास था सलाम कर बख्शीश मांग लेना। साहब लोग अपना अहंकार पूरा करने के लिये इसे उत्साहित करते थे।

"हम अलपत्तर जायगा। रास्ता दिखाओ!" उत्तर दिया।

वह उत्साह से तैयार हो गया। कुछ ही दूर ऊपर पहाड़ के समतल प्रायः भाग पर बरफ का छोटा सा मैदान था। सर्दी बहुत थी परन्तु चढ़ाई चढ़ने और रबड़ की बरसाती में लिपटे रहने के कारण पसीना भी आ रहा था। कौतूहल हुआ कि बरफ पर चल कर देखूं। एक ही क़दम बरफ पर गया था कि पांव फिसल कर गिर पड़ा। उठने के लिए दूसरे पांव पर जोर दिया तो वह भी फिसल गया। जितनी बार कोशिश की, पांव रपटता ही गया। बरफ सीमेन्ट के घुटे हुए फर्श की तरह सख्त और चिकनी हो चुकी थी। मेरे जूते का तला 'क्रेप' का था। आखिर उस लड़के को सहायता के लिए पुकारा। उसने लाठी दी और स्वयम् बरफ से परे कंकरीली जगह खड़े हो मेरा हाथ पकड़ कर खींचा। ऐसी हालत में बाहर निकला। दम फूल गया था। बरफ के किनारे कंकरीली जगह बैठ कर उस छोकरे से बात करने लगा। नीचे कंकरों में काँच की चूड़ियों के कुछ टुकड़े दिखाई दिये। देख कर विस्मय हुआ। चूड़ी का टुकड़ा उस छोकरे को दिखा कर पूछा—"यह क्या है?"

छोकरे ने अपनी उँगलियों में कलाई को लेकर बताया गहना है और हाथों के इशारे और टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में समझाया कि एक सेठ, सेठानी और उनकी लड़की यहाँ आ तम्बू लगा कर एक रात रहे थे। लड़की की चूड़ी टूट गई थी। सेठ का परिवार डांडियों में कुलियों के कन्धों पर चढ़ कर यहाँ आया था। हाथ की चार अंगुलियां दिखा कर छोकरे ने बताया हमको भी चार आना दिया था। इन लोगों के मन में उन्हीं लोगों के लिए आदर और श्रद्धा थी जो इनके कन्धों पर सवार हो कर चलते थे। यही उनकी उदरपूर्ती का साधन था।

कश्मीरी लोगों को हिन्दुस्तानियों की अपेक्षा अंग्रेजों के प्रति अधिक श्रद्धा थी क्योंकि उनसे अधिक पैसे की आशा की जाती थी। अंग्रेजों के प्रति उनका प्रेम वैसा ही था जैसे कुत्ते का प्रेम मालिक के प्रति। उस समय यदि कश्मीर से अंग्रेजों को निकाल देने का आन्दोलन चलाया जाता

तो ग़रीब मज़दूरी पेशा कश्मीरी ही उसका सबसे अधिक विरोध करते। पर ऐसा भी समय आया कि जीवन के अवसर के लिए संघर्ष की राह पर यही कश्मीरी आन्दोलन कर रहे थे—"कश्मीर कश्मीरियों के लिए!" जीवन के अवसर के लिए संघर्ष के यह दो दृष्टिकोण जितने भिन्न हैं, उतने ही सत्य भी। मैंने भी आदर पाने की इच्छा से उस लड़के को चार आने दे दिये। उसने बताया कि जाड़े में यहां सब बरफ ही बरफ हो जाता है। पूछा जाड़ों में क्या कपड़ा पहिनते हो? अपने लबादे पर हाथ रख उसने उत्तर दिया,—"बस यही। हम लोग नीचे चला जाता है। जाड़े में गोरा साहब लोग नीचे चला जाता है। तब यहाँ क्या करेगा? साहब लोग कभी-कभी बरफ में नाचने आता है।"

गुलमर्ग में अगले दिन भी वर्षा और धुन्ध बना रहा। गुलमर्ग के उस पंजाबी होटल में लाहौर से उर्दू का अखबार आता था। हमारे साथियों के मुकदमें आरम्भ हो रहे थे। इन में भगतसिंह के ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध क्रान्ति घोषणा के साहसपूर्ण बयान छप रहे थे। इन पर बहस तो न होती परन्तु लोग दूसरों को सुना-सुना कर पढ़ते। पाठकों के स्वर और ढङ्ग से उनका उत्साह प्रकट होता था। अगले दिन सुबह भी झड़ी न थमी। तीनों झंगी नौजवान वर्षा और सरदी से तंग आकर अपेक्षाकृत गरम जगह, श्रीनगर चलने के लिए तैयार हो गये। मैं भी उनके साथ हो लिया। इस समय तक देवदत्तजी के लौट आने की आशा थी।

गुलमर्ग से चलते समय एक झंगी नौजवान ने गुलमर्ग की हरिया-वल और मैदान में लोटते बादलों की ओर संकेत कर विरक्ति से कहा—"लानत है इस खूबसूरती और स्वर्ग की शोभा की धूम पर! मैं न्योछावर हूं अपने देश की रेत, लूह और आन्धी पर ही।"

इन नौजवानों ने श्रीनगर मे अपने साथ ही रहने के लिये अनुरोध किया था। इन लोगों ने एक कोठरी किराये पर ली हुई थी। खाना कभी खुद बना लेते कभी तन्दूर पर खा लेते। हामी भर ली। श्रीनगर लौट अपना संक्षिप्त सा सामान इन्हीं लोगों के साथ छोड़ देवदत्त जी के मकान पर ऐसे समय पहुँचा कि मैजिस्ट्रेट साहब से भेंट न हो। मुझे देख उन्हें विस्मय तो हुआ परन्तु सम्भल गये। दूसरों पर विस्मय प्रकट न किया। वहां बातचीत न कर हम लोग जेहलम की ओर जा एक शिकारा ले ऐसे सूने स्थान की ओर चले जहाँ हमारी बात सुनी जाने

की आशंका न हो। हम लोग, -चिनारनाला' से होते हुये 'डल' झील मे चले गये। बात-चीत अंग्रेजी में ही की ताकि शिकारा चलाने वाला 'हांजी' (मल्लाह) कुछ समझ न सके।

देवदत्त जी को विश्वास दिलाया कि मेरे उन से मिलने की बात भगवती भाई के अतिरिक्त दल का कोई आदमी नहीं जानता, न किसी को बताई ही जायगी। हम दोनों का विश्वास कर सकते हो तो हम प्राणों का संकट आने पर भी विश्वासघात नहीं करेंगे।

शिकारा लगभग एक घण्टे तक झील में घूमता रहा। देवदत्त ढलमल करती लहरों की ओर दृष्टि किये चुपचाप सोचते रहे। अंत में स्वीकृति दी—"मैंने 'पिकरिड एसिड' पर लेबोरेट्री में रिसर्च की तो थी परन्तु अब जबानी याद नहीं। मैं अपनी पुस्तकों में देखूंगा। स्थानीय कालेज के पुस्तकालय में भी कोशिश करूंगा। यदि भरोसे लायक नुस्खा ढूंढ़ पाया तो जरूर बता दूंगा। इसमें तीन-चार दिन तो लगेंगे ही।"

देवदत्त जी ने मेरा ठिकाना पूछा। उत्तर पा उन्होंने समझाया— "यह ठीक नहीं। मैं तुम से कहीं भी किसी के सामने नहीं मिलूंगा। न तुम्हारे साथ दिखाई देना चाहता हूं। यहां मुझे पुलिस और सब लोग जानते हैं!"

घूम फिर कर मैंने एक छोटा 'हाउसबोट' (नाव में बना मकान) खोज लिया। इस हाउसबोट को किराये पर लेने वाले अंग्रेज साहब पन्द्रह दिन के लिये कश्मीर के किसी दूसरे भाग में शिकार खेलने चले गये थे। हाउसबोट का हांजी इस समय का लाभ उठाना चाहता था। उससे सस्ते मे सौदा हो गया। मैं जान चुका था कि कश्मीरी ७०) दाम मांग कर ७) में भी सौदा कर लेता है। इस हाउसबोट में साहबी ठाठ से आ टिका। देवदत्त जी को चिनारनाले में अपने हाउसबोट का पता और नंबर बता उनके आने की प्रतीक्षा करने लगा। 'हाउसबोट' नाव में 'हाउस' (मकान) होता है। बड़े-बड़े हाउसबोट दो मंजिले होते हैं। छोटे हाउसबोट में प्रायः दो कमरे, एक गुसलखाना, सामने छोटासा बरामदा रहता है। मेज़, कुरसी पलंग इत्यादि से लस। अनेक हाउसबोटों में बिजली का प्रबंध भी रहता है, झील, नदी, या नाले के किनारे एक खंभे पर बिजली का तार लगा रहता है। जब चाहें इस खम्भे से हाउसबोट तक बिजली का तार 'प्लग' में लगा लिया जाता है और जब चाहें हटा दिया जाता है। हाउसबोट

पानी में लंगर डाले खड़े रहते हैं परन्तु जब चाहें पूरा मकान का मकान तैरता हुआ, जहाँ भी पानी काफी गहरा हो, आ जा सकता है। प्रायः हाउसबोट जेहलम नदी, चिनार नाला और डलझील के क्षेत्र में घूमते रहते हैं। मकान ही क्या, कश्मीर में खेत भी तैरते है। लकड़ियों और बाँसों का फर्श सा बांध उस पर सूखे घास-फूस की तह जमा कर मिट्टी फैला दी जाती है। ऐसे खेतों में खीरा, ककड़ी, टमाटर और दूसरी तरकारियाँ मजे में उगती हैं। सिंचाई की कोई जरूरत नहीं। इन खेतों को भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है। कभी-कभी खेतों की चोरी की घटनायें भी हो जाती हैं।

देवदत्त जी की प्रतीक्षा में मैं मजबूरन छुट्टी कर विहार कर रहा था। हाउसबोट के साथ एक शिकारा भी रहता है। इस शिकारे द्वारा हाउसबोट से किनारे तक आना-जाना होता है। जब चाहें हांजी सैर-सपाटे के लिये भी तैयार रहता है। मैं हाउसबोट में लेटा कोई उपन्यास पढ़ता रहता या ऊबकर सैर करने चला जाता। बाजार में लाहौर के आदमियों के मिलने की आशंका थी इसलिये प्रायः मैं शिकारे में 'डल' झील 'हारबंन', 'शंकराचार्य' इत्यादि की ओर ही जाता।

डल झील खूब गहरी है पानी कांच की तरह साफ और पारदर्शी। तीन-तीन, चार-चार आदमी की गहराई तक भी तल पर पड़े रंग-बिरंगे पत्थर साफ दिखाई देते हैं। किनारों पर दस-बीस हाथ की चौड़ाई तक घने कमल छाये थे। कमल इतने घने कि किनारों पर जल दिखाई ही नहीं देता था। किनारों पर खड़े 'मजनू' के घने पेड़ झील पर झुके रहते हैं। ऐसी जगहों में नाव कमल के फूलों के ऊपर से फिसलती चली जाती है। किनारों पर झुके मजनू की कोमल शाखायें नाव में बैठे लोगों को सहलाती रहती हैं। शिकारा आने पर कमल दब जाते हैं। जान पड़ता है, नाव कमलों पर ही टिकी है। नाव के आगे निकल जाने पर कमल फिर सिर उठा लेते हैं। डल का विस्तार छः मील लम्बा और प्रायः दो मील चौड़ा है। हवा चलने पर ऊंची-ऊंची लहरें भी उठने लगती हैं। क्षितिज पर चारों ओर दूर-दूर नीली पहाड़िया घिरी हुई हैं और उन के पीछे से बरफानी चोटियां झांकती दिखाई देती हैं।

झील की शीतल लहरों पर धूप बड़ी सुहावनी लगती थी। योरोपियन स्त्री-पुरुष दिन भर उस स्वच्छ जल में किल्लोल करते दिखाई देते थे। मैं घन्टों शिकारे में बैठा कमल के फूलों और लहराते हुए नीले जल पर

फिसलता रहता। बम के मसाले का नुस्खा मिल जाने का विश्वास हो गया था। यहां से लौट कर मुझे उसी काम में लगना था। बम का मसाला बना लेने के बाद उसका उपयोग भी निश्चित था, वाइसराय की स्पेशन ट्रेन के नीचे विस्फोट करके ट्रेन को उलट देना। अनुमान था यह घटना दिल्ली के आस पास ही करनी होगी। यह मालूम था कि गवर्नरों या वाइसराय की स्पेशल ट्रेन गुजरते समय लाइन के दोनों ओर पहरा रहता है।

मन ही मन निश्चय कर लिया कि वाइसराय की ट्रेन के नीचे बम विस्फोट करने के लिए मैं स्वयं जाऊंगा। भगवती भाई पीछे रहेंगे। वाइसराय की ट्रेन के नीचे बम विस्फोट करने के बाद या तो मुझे पकड़ने का यत्न करने वाले लोगों से लड़ता हुआ ही मारा जाऊँगा या गिरफ्तार हो जाने पर फांसी पर चढ़ाया जाऊँगा। मैं आराम से शिकारे की कुरसी पर पसरा हुआ हाथ में कोई पुस्तक लिए आँखें नीले जल या कमलों की ओर लगाये इन परिस्थितियों की कल्पना करता रहता। हर हालत में मृत्यु निश्चित थी, पुलिस की गोली से या फाँसी के तख्ते पर। बम का मसाला बनाने की विधि आ जाने पर इस काम में देर न लगेगी, बहुत विलम्ब हो जायगा तो तीन मास! मेरी कल्पना में तीन मास से अभिप्राय था कि वाइसराय के शिमला से दिल्ली लौटते समय ही हम यह घटना कर डालेंगे। मेरी वे कल्पनायें अभी तक स्मृति में सजीव हैं। मन ही मन सोचता था—"संसार के स्वर्ग कश्मीर के सुन्दरतम स्थान में, कमल के फूलों पर नाव में विहार करता हुआ मैं अपने ही गले के लिए फाँसी की रस्सी बट रहा हूं।" इस कल्पना से मेरे ओठों पर मुस्कराहट आ जाती।

ऐसा सुख विश्राम और विलास मैंने उस समय तक के अपने छोटे से जीवन में कभी अनुभव नहीं किया था। उस समय भी मैं इन्हें अपना अधिकार या भोग नहीं मान सका। स्वयं अपनी मृत्यु की तैयारी के मार्ग पर मैं सुख और विलास को ऐसे ही अनुभव कर रहा था जैसे कुछ वर्ष पूर्व रंगमंच पर राजा भोज की भूमिका करने के लिये, राजा जैसा वेश और मुद्रा धारण कर और वैसा ही व्यवहार करके भी मैं भूल नहीं गया था कि मैं राजा नहीं हूँ; या कुछ मास पूर्व अपने लिखे नाटक 'नशे-नशे की बात' की भूमिका में शराबी का अभिनय करने पर मुझे नशा अनुभव नहीं हुआ। वैसा ही वह विहार और विलास था।

हमारे आध्यात्मवादी विचारकों ने संसार में इसी प्रकार, 'पद्मपत्रमिवाम्भसी' रह कर संसार-को माया समझने का उपदेश दिया है। मैं उस समय भी संसार को माया नहीं समझ रहा था। अपने देश की माया को जिसे अंग्रेज हम से छीने हुये थे, वापिस लौटाने के लिये ही लड़ रहा था।

देवदत्त जी एक दिन दोपहर बाद आये। वे एक कागज़ पर कुछ नोट अंग्रेजी में लिये हुये थे। उन्होंने पहिले मुझे 'पिक्रिक एसिड' बनाने की रासायनिक प्रक्रिया मौखिक समझाई और फिर अपने हाथ से वह सब लिख लेने के लिये कहा। सावधानी के लिये उन्होंने मुझे आवश्यक पुस्तकों के नाम और पृष्ठ भी लिखा दिये। इस काम में दो ही दिन लगे।

अगले ही दिन दोपहर श्रीनगर से रावलपिन्डी के लिये चल पड़ा। कश्मीर के अनुपम सौन्दर्य को अनुभव तो कर रहा था परन्तु वह मुझे रोक न सका। कह ही चुका हूँ कि श्रीनगर में मोटर के अड्डे पर पंजाब खुफिया-पुलिस की काफी भीड़ रहती थी। इसलिये चाहता था कि अड्डे पर प्रतीक्षा न करनी पड़े। अवसरवश पहुँचते ही एक ड्राइवर ने बात की—"मुझे अभी रावलपिण्डी जाना है। गाड़ी खाली है। चलते हो तो चलो। रुकूंगा नहीं। कोई सवारी रास्ते में मिल गई तो ले लूंगा।" मैं उसकी गाड़ी में बैठ गया। वह तुरन्त ही चल भी पड़ा। नगर के अन्तिम भाग में एक मकान के सामने गाड़ी रोक वह दो सवारियों को समीप के मुहल्ले से बुला लाया। इन में से एक काले बुरके में लिपटी बहुत सुडौल नवयुवती थी और दूसरी बड़ी सी छादर में लिपटी प्रौढ़ा।

इन सवारियों के बैठते ही गाड़ी की चाल बहुत तेज़ हो गई। बुरके में लिपटी नवयुवती की जो कुछ झलक तिरछी आंखों देखने से मिल सकी, मुझे असाधारण रूप से आकर्षक जान पड़ी। ड्राइवर भी जब-तब अवसर पा घूम कर उस की एक झलक ले लेने की कोशिश कर रहा था। ड्राइवर पर एक नशा सा सवार था। सन्देह हुआ कि खाली गाड़ी को इस चाल से रावलपिण्डी की ओर ले जाने का प्रयोजन इस नवयुवती को भगा ले जाना ही है। गाड़ी की चाल इतनी तेज़ थी कि मोड़ों पर पहाड़ से नीचे गिर जाने की आशंका होने लगती। मुझे टोकना पड़ा—"इतना तेज़ क्यों चलाते हो? एक्सीडेण्ट करोगे?"

"देर हो जाने से 'दोमेल' में सड़क का फाटक बन्द हो जायगा।"

—ड्राइवर ने उत्तर। गाड़ियाँ प्राय: 'दोमेल' या 'कोहाला' में रात काटती थीं। रात में पहाड़ी सड़कों पर गाड़ी चलाने की इजाज़त न थी। 'दोमेल' लाँघ ड्राइवर ने रावलपिण्डी की पक्की सड़क छोड़ कच्ची पहाड़ी सड़क पकड़ ली। उसे फिर टोका—"कहां जा रहे हो ?"

"फिक्र न कीजिये। एबटाबाद के रास्ते आप को रावलपिण्डी समय से बहुत पहले ही पहुंचा दूंगा।"—अब गाड़ी पश्चिमोत्तर प्रान्त की सीमा पर चली जा रही थी। सड़क कच्ची और खतरनाक परन्तु गाड़ी की चाल उतनी ही तेज़। आकाश मे बादल थे इसलिये जल्दी ही घना अंधेरा हो गया। ड्राइवर ने आगे तेज़ रोशनी करली परन्तु चाल में कोई कमी नहीं। चलते-चलते प्राय: आधी रात हो गई। सड़क पर प्रतीक्षा मे खड़े एक पठान ने हाथ उठा गाड़ी रोकने का संकेत किया। उसके समीप कुछ गठड़ी-मुठड़ी भी दिखाई दी। गाड़ी एक झटके से और तेज़ हो गई।

"यह क्या कर रहे हो ? सवारी को बैठा क्यों नही लेते ?"—फिर टोका। "यह सरहदी डाकू है"—ड्राइवर ने उत्तर दिया—"सवारी के बहाने गाड़ी रुकवा कर लूट लेते है। गाड़ी की चाल धीमी हो तो पहिये मे गोली मारकर गाड़ी गिरा लेते है।"—चुप रह जाना पड़ा। इस खतरे में आने का कारण वह औरत ही थी।

गाड़ी चली जा रही थी। वर्षा होने लगी और तेज़ भी हो गई। उस वर्षा में भी कच्ची सड़क पर वह उसी चाल से चला जा रहा था। गाड़ी के भीतर के मन्द प्रकाश मे नवयुवती की ओर देखने से चमक उठती उसकी आंखों मे सुर्खी थी। एक नाला सामने आ गया। ड्राइवर पल भर को रुका। "बारिश में देर तक ठहरने से तो नाले का पानी और बढ़ जायगा"—वह आप ही बोला और उसने गाड़ी नाले में धंसा दी। पानी तब भी काफी गहरा और तेज़ था। मोटर के पानी काटने पर पानी पहियों से ऊपर उछल रहा था। उसके दुस्साहस का विरोध किया—"क्या कर रहे हो जी ? इंजन में पानी चल जायगा तो गाड़ी यहां ही रह जायगी ! देखते नहीं हो, खाली गाड़ी है, वज़न कुछ है नहीं, पानी तेज है। अगर गाड़ी उलट गई ?"

उस ने गाड़ी को पीछे लौटा लिया। कुछ पल वह तेज़ पानी की ओर घूरता रहा और फिर व्याकुलता से बोला—"बारिश बढ़ रही है। पानी और गहरा और तेज़ हो जायगा तो जाने कब तक ठहरना पड़े ? मैं अभी पार होउंगा।"

"क्या कह रहे हो ?"—मैंने फिर विरोध किया।

"इतना क्यों डरते हो साहब ?"—उपेक्षा से ड्राइवर ने उत्तर दिया। डरपोक समझे जाने की ग्लानि ने चुप करा दिया। ड्राइवर ने गाड़ी को तेजी से पीछे ले जा कर घुमाया। गाड़ी की पीठ नाले की ओर कर वह खूब तेज चाल से नाले में धँस गया और पार भी हो गया। गाड़ी के उलट जाने में कुछ ही कसर रह गई।

मानना पड़ा, बड़ा साहसी आदमी है, फिर वितृष्णा अनुभव की—सब साहस इसी स्त्री के मोह का नशा है। स्वयं ही तर्क किया–इतनी मामूली सी चीज के प्रति अनुराग से मृत्यु के भय की उपेक्षा की जा सकती है। मेरे सामने तो कितनी बड़ी चीज, पूरे देश की स्वतंत्रता का आकर्षण और कर्तव्य है। इन दिनों मैं प्रत्येक प्रश्न पर इसी तरह तर्क और कल्पना करता रहता था। मन में सोचने लगा कश्मीर से देहली की ओर बढ़ते समय मैं प्रत्येक कदम पर अपनी मृत्यु या फांसी की रस्सी की ओर बढ़ रहा हूं।

दिन निकलने पर मोटर पेशावर जाने वाली रेल लाइन के समानान्तर चली जा रही थी। ड्राइवर ने गाड़ी एक स्टेशन की ओर घुमा दी। पेशावर जाने वाली गाड़ी रावलपिण्डी की ओर से धुआं छोड़ती हुई आ रही थी। नवयुवती और प्रौढ़ा यहां उतर गईं। ड्राइवर एक हसरत भरा सांस ले लौट पड़ा। अब मोटर के स्टियर पर उस के हाथ ऐसे शिथिल हो रहे थे मानो कलाइयों की हड्डियां टूट गई हों।

रावलपिन्डी से दिल्ली जाते समय एक रात के लिये लाहौर में भी ठहरा। अपने मन में वाइसराय की ट्रेन ने नीचे बम विस्फोट कर सकने की जो आयोजना मैंने तैयार की थी उसमें इन्द्रपाल से सहायता लेने का विचार था। उस से मिल बात पक्की कर लेना चाहता था। इन्द्रपाल से पूछा—"तुम्हारी जरूरत दल को होगी। तुम घर बार छोड़ कर आ सकोगे ?"

इन्द्रपाल ने कहा—"मेरे दो छोटे भाई मेरे साथ हैं। जब भी जरूरत हो, मुझे आठ-दस दिन का मौका दे देना ताकि कहीं उनका प्रबन्ध कर सकूं।"—बम बनाने की विधि पाकर तो उत्साह बढ़ा ही था, इन्द्रपाल के आश्वासन ने और भी अधिक उत्साह दिया।

× × ×

चार

दिल्ली और रोहतक में बम बने

भगवती भाई ने मेरे देहली में आने से पूर्व ही ठहरने की जगह का प्रबंध कर लिया था। यह जगह 'नया-बाजार' या 'श्रद्धानंद-बाजार' के बगल की गली में थी। नीचे गोदाम, ऊपर रहने के कमरे। गली से जीना चढ़ कर छोटे से आंगन में खुलता था। आंगन के एक सिरे पर रसोई दूसरे सिरे पर गुसलखाना और पैखाना था। आंगन के दोनों ओर, गली की ओर और पिछवाड़े एक-एक कमरा था। हम लोगों का कमरा गली की ओर होने से हवादार था। कमरे की बगल में एक छोटी सी वर्गाकार कोठड़ी भी थी। कोठड़ी इतनी छोटी थी कि कोने से कोने तक लेटने पर भी पांव नहीं पसारे जा सकते थे। दूसरी ओर के कमरे में एक मास्टर साहब, हिन्दू कालेज में पढ़ने वाला एक विद्यार्थी और देहली सेक्रेटेरियेट में काम करने वाले दो बाबू रहते थे। मास्टर साहब का नाम शायद सुन्दरलाल था। स्वभाव और शरीर दोनों से ही गम्भीर। सेक्रेटेरियट के बाबू गिरधारीलाल, देहली के समीप 'फरीदाबाद' के रहने वाले थे। इन लोगों ने भोजन पकाने के लिये एक ब्राह्मण, 'परसादी' रखा हुआ था। भगवती भाई ने इन्हीं से साझा कर लिया था। भोजन अच्छा मिल जाता और बहुत सस्ता।

मैं बम बनाने की विधि का विश्वस्त ब्यौरा ले आया हूं, यह जान भगवती भाई उत्साह से उछल पड़े। हम लोग उमंग से कल्पना में योजना बनाने लगे कि वाइसराय के आने-जाने की तारीख और समय का पता कैसे लगाया जाये? ऐसे समय रेल-लाइन पर चौकसी का क्या प्रबंध होता है, विस्फोटक पदार्थ लाइन के नीचे दबाने की सुविधा कैसे होगी? हम दोनों में से कौन, किस रूप मे बम चलायेगा? बम कौन चलायेगा; इस प्रश्न पर हम दोनों में उसी समय खींचातानी शुरू हो गई। आखिर तै पाया, पहिले बम तो बन जाय; यह बातें पीछे देखी जायंगी।

देवदत्तजी से पाई शिक्षा का ब्यौरेवार विवरण मैंने भगवती भाई को समझाया। विवरण सुन उन्हों ने आत्मविश्वास से कहा—"मैं रसायन का विद्यार्थी था और इस काम को खूब अच्छी तरह कर लूँगा।" तै पाया, देखा जायगा; पहिले सामान और उपकरण इकट्ठे किये जायें। हम लोग यह भी चिन्ता करने लगे कि मसाला बनाने की रासायनिक क्रिया के लिये ऐसा स्थान चुना जाय जहां धुयें और गंध के कारण पड़ोसियों का ध्यान आकर्षित होने की आशंका न हो।

भगवती भाई ने सुझाया, बड़े शहरों के चतुर आदमियों के पड़ोस में ऐसा काम करने की अपेक्षा किसी छोटे कस्बे में ही उचित होगा। देहली के समीप 'रोहतक' में उनका एक परिचित नवयुवक वैद्य था। वह लाहौर में वैद्यक सीखते समय नौजवान-भारतसभा के कार्य में सहयोग देता था। भगवती भाई ने कहा—"यदि यह वैद्य तैयार हो जाय तो वैद्यक दवाइयों के लिए गन्धक और पारा फूँकने के बहाने वहाँ जो चाहे किया जाये, किसी को सन्देह न होगा।"

भगवती भाई रोहतक जा अपने पुराने परिचित वैद्य लेखराम को इस काम के लिए तैयार कर आये। एक और उलझन दूर हुई। हम लोग देहली में सामान जुटाने लगे। सीधे दुकान पर जा कर एक ही दिन में सब कुछ खरीदा जा सकता था परन्तु यह उचित न जँचा। शनैः शनैः आवश्यक वस्तुयें परिचितों द्वारा और कुछ स्वयं खरीदने में कुछ दिन लग गये। समय मिलने पर हम लोग 'दिल्ली-मथुरा,' 'शाहदरा-गाजियाबाद' 'गाजियाबाद-हापुड़', सहारनपुर-दिल्ली,' 'दिल्ली-अम्बाला,' या 'दिल्ली-भटिण्डा' लाइनों पर घूम कर देखने का यत्न करते कि गाड़ी के नीचे बम विस्फोट के लिए कौन स्थान सुविधाजनक होगा।

इसी बीच हम लोगों ने अपने पुराने परिचय के आधार पर दल से सहानुभूति रखने वाले कुछ व्यक्ति ढूंड़ लिए थे। कुछ पैसा भी मिलने लगा। इस समय अदालत में भगतसिंह के तर्कसंगत और सजीव बयानों के कारण जनता में दल के प्रति फिर सहानुभूति और आदर उत्पन्न होने लगा था। मुख्य दल से हम दोनों का अब भी सम्पर्क नहीं हो पाया था परन्तु स्वतन्त्र सम्बन्ध जमते जा रहे थे। आवश्यकता के समय दस-पांच रुपये मिल जाते और अवसर पड़ने पर रात बिताने की जगह भी। ऐसे स्थानों को हम लोग शेल्टर (शरण-स्थान) या सोर्स (स्रोत) कहते थे। शेल्टर का बहुत महत्त्व था। किसी कारण सन्दिग्ध

हो जाने पर शहर बदले या छोड़े बिना इन जगहों में छिपा जा सकता था या बाहर से किसी कार्यकर्त्ता को बुलाने पर अपना स्थायी स्थान उसे दिखाये बिना साथी को वहां टिकाया जा सकता था।

हम लोग अपने प्रति संदेह न होने देने या अपनी ओर ध्यान न आकर्षित होने देने को लिये बहुत सतर्क थे। इस मकान में भगवती भाई ने अपना परिचय अलीगढ़ के रहने वाले डिप्टी-सुपरिन्टेंडेन्ट पुलिस के भतीजे के रूप में दिया था। अपना व्यवसाय उन्हों ने 'आग के बीमे की एजेन्सी' बताया था। मेरे आने पर मेरा परिचय उनके चचेरे भाई के रूप में दिया गया। उनका नाम हरीश्वरसिंह और मेरा नाम जगदीश्वरसिंह था। बताया गया कि मैं एजेन्सी का व्यवसाय सीखने बम्बई गया था परन्तु कम्पनी से झगड़ा करके लौट आया हूं और अब किसी सरकारी नौकरी की प्रतीक्षा में हूँ। भगवती भाई बाहर आते-जाते समय सूट पहिनते थे, मकान में रहते समय कुर्ता धोती। यहां हम लोगों की जात ठाकुर या राजपूत थी। हमारे पड़ोसी भगवती भाई को गम्भीर आदमी और मुझे सम्पन्न परिवार का उड़ाऊ-खाऊ लड़का समझते थे। पुलिस से सम्बन्ध रखने वाले परिवार के लोग माने जाने के लिये हम कांग्रेस और कांग्रेसी नेताओं की कटु आलोचना करते रहते। इसके दो अभिप्राय थे। एक तो बहस से इन लोगों में राजनैतिक चेतना पैदा कर गांधीवादी राजनीति के प्रति उनका अंधविश्वास तोड़ना दूसरे अपने आप को संदेह से बचाये रखना। वे लोग पुलिस के कामों की आलोचना करते तो हमारा उत्तर होता—"सरकार और शासन ऐसे ही चलता है। ब्रिटिश गवर्नमेन्ट कोई बनिये-बक्काल की कारोबार नहीं है! जनाब, वह साम्राज्य का अनुशासन है।" ब्रिटिश सरकार के दमन और अन्यायों का वर्णन हम गर्व के स्वर में कर कहते—"यही है तरीका सरकार चलाने का।"

इन ही दिनों एक दिन संध्या समय मैं अपनी जगह लौट रहा था। श्रद्धानन्द बाजार में 'अर्जुन' पत्र के कार्यालय के जीने में घुसते हुए जयचन्द्र जी विद्यालंकार पर नज़र पड़ी। मैंने भगवती भाई को सावधान कर दिया—"ख्याल रखना, जयचन्द्रजी तुम्हें देख पायेंगे तो जरूर डौंडी पीट देंगे कि फरार बना हुआ सी० आई० डी० का आदमी घूम रहा है।" बात-चीत में जयचन्द्र जी से मिलने के लिये सुखदेव की सलाह का प्रसंग आया। भगवती भाई ने कहा—"अब मौका है।

सुविधा से मिल सकते हो, मिल लो। शायद कुछ सूत्र मिल ही जायें।"

मैं श्रद्धानन्द बाजार में इस ढंग से घूमता रहा कि अर्जुन कार्यालय के जीने से उतरने वाले आदमी पर दृष्टि पड़ती रहे। जयचन्द्र जी उतर कर 'फतेहपुरी' की ओर चले। मैं उनके पीछे-पीछे हो लिया। अंधेरा हो गया था। सूना स्थान देख उन्हें सम्बोधन किया। जयचन्द्र जी जरा चौंके, पूछा—"तुम कहां से आ रहे हो; कोई तुम्हारे पीछे तो नहीं? या कोई मेरा पीछा तो नहीं कर रहा है?"

उन्हें विश्वास दिलाया आप अर्जुन कार्यालय से आ रहे हैं। मैंने आपको जाते भी देखा था और आते भी देखा है। आपका पीछा कोई नहीं कर रहा। ऐसा होता तो मैं आप से बात न करता। मेरा भी पीछा कोई नहीं कर रहा।"—उन्हें सुखदेव का संदेश दे सहायता के लिये अनुरोध किया।

"भगवतीचरण कहां हैं, तुम्हें कुछ मालूम है?"—जयचन्द्र जी ने प्रश्न किया।

"सुना था कि दस दिन पहिले झांसी गया था। शायद वहीं हो।"—उत्तर दिया।

"तुम तो जानते हो न; जैसा वह आदमी है? बड़ा ही चालाक है। वह फरार बन कर दूसरे फरारों को खोज रहा है। उन से सम्बन्ध स्थापित करके गिरफ्तार करा देगा। उससे बहुत सावधान रहना!" जयचन्द्र जी को विश्वास दिलाना पड़ा कि मैं भगवतीचरण से बहुत सावधान हूं। उपयुक्त अवसर मिलने पर उसे ठिकाने लगा दिया जायगा। मैं दल के पुराने संगठन से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाया हूँ। अलग-अलग कई दल बनाना उचित नहीं जान पड़ता। मेरे स्त्रोत और साधन बहुत ही परिमित हैं।

जयचन्द्रजी ने समझाया कि मुझे पहिले अपना एक स्वतन्त्र संगठन बनाना चाहिए। तभी मुख्य दल से सम्बन्ध जोड़ना उपयोगी होगा। "तुम कहां रहते हो; तुम्हारा अपना क्या संगठन है?" —उन्हों ने पूछा।

जयचन्द्र जी का वह ढङ्ग मुझे उचित न जँचा। सम्बन्ध का कोई सूत्र मुझे न बताकर वे मेरा ही भेद लेना चाहते थे। हम लोगों में इस प्रकार की पूछ-ताछ का कायदा नहीं था। यदि वे बताना नहीं चाहते

थे तो उन्हें पूछना भी नहीं चाहिए था। खैर, उत्तर दिया—"मैं आज कल अम्बाला में हूं। संगठन तो नाममात्र ही है।"

"अम्बाला में तुम्हारे साथ कितने आदमी हैं ?"—उन्हों ने आगे पूछा। मैंने सम्भवतः उत्तर दिया था कि अम्बाला में हम चार आदमी हैं। इस पर पण्डितजी ने चारों के नाम और काम भी पूछे। मैंने चार काल्पनिक नाम और उनके काम भी बता दिए। वे पूछते ही गये और और मैं भी बताता गया कि तीन जलन्धर में हैं, उन के भी नाम और काम बताने पड़े। उन्होंने और पूछा इस पर मैंने चार आदमी रावल-पिंडी में बता दिये और उनके भी काल्पनिक नाम और काम बता दिये।

जयचन्द्रजी ने पूछा—"हथियार भी हैं ?"। "केवल तीन रिवाल्वर हैं"—उत्तर दिया। मैं यह सब सन्तोषजनक वृत्तान्त उन्हें इसलिए सुना रहा था कि वे मुझे दल से सम्पर्क का सूत्र बताने योग्य समझ लें। अगर इसे बेइमानी कहा जाय तो मैं उतना अपराध स्वीकार करता हूँ। जयचन्द्रजी ने अपने प्रश्न दोहराने शुरू किये, उन्हों ने अम्बाला जालंधर और रावलपिंडी के सभी आदमियों के नाम और काम दोबारा पूछे। मैं उनका अभिप्राय समझ गया कि यदि मैंने झूठ बोला हो तो दुबारा बताने में उखड़ जाऊंगा। मैं उनका पैंतरा समझ रहा था। जयचन्द्र जी ने अपनी जिरह और विश्लेषण में मुझे उखड़ता न देख परामर्श दिया कि मैं अपने सदस्यों की संख्या और हथियारों का संग्रह बढ़ाता जाऊं। सदस्यों का परिचय एक दूसरे से न होने दूं। स्वयं भारत के भूगोल और धरातल (टापोग्राफी) का गहरा अध्ययन करूँ। जब वे उचित समझेंगे, मुझसे सम्पर्क करके भविष्य के बारे में परामर्श दे देंगे। उन्हों ने मेरा अम्बाले का पता भी याद कर लिया। उन्हें एक पता बताकर मैंने सुझाया कि पता तो मुझे किसी भी समय बदल देना पड़ सकता है।

जयचन्द्रजी से बात समाप्त कर लौटने को ही था कि अचानक सामने से आते पत्रकार चमनलाल ने हमें बात करते देख लिया। चमन-लाल उस समय 'हिन्दुस्तानटाइम्स' या 'नेशनलकाल' में सम्वाददाता का काम कर रहे थे। आजकल भी वे देश-विदेश घूमकर यही काम कर रहे हैं। मकान पर लौट भगवती भाई को जयचन्द्रजी से बातचीत की कहानी सुनाई और हम लोग उनकी चतुरता पर हँस हँस कर लोटपोट

होते रहे। भगवती भाई से मैंने यह भी चर्चा कर दी कि जयचन्द्रजी से बात करते समय मुझे चमनलाल ने देख लिया था।

जयचन्द्र जी से इस मुलाकात का और उनकी बुद्धिमानी या सज्जनता का फल अगले दिन ही भुगतना पड़ा। चमनलाल का स्वभाव अब बदल गया होगा परन्तु उस समय बहुत चुलबुला और छछूँदर की तरह सूंघते फिरने का था। भगवतीचरण को वह पहले से ही वास्तविक नाम और रूप में जानता था। मेरा परिचय उसे एक फ़रार महाराष्ट्र क्रान्तिकारी 'डान्डेकर' के नाम से दिया गया था। मैं चमनलाल से जब भी मिलता अंग्रेज़ी में बात करता। बीच-बीच में हिन्दुस्तानी भी बोलता तो टूटी-फूटी मराठी ढंग की। वह मुझे महाराष्ट्र ही समझता था। क्रान्ति के प्रति सहानुभूति के कारण वह हम लोगों को अपने सामर्थ्य के अनुसार आर्थिक सहायता भी दे रहा था। बम बनाने का सामान खरीदने और संगठन जमाने के लिये दिल्ली में हम लोगों ने जो रूपया इकट्ठा किया, उसमें सौ-डेढ़सौ चमनलाल से भी लिया था। एक दो दिन में कुछ और देने का भी वायदा था।

अगले दिन ही मैं वायदे का रूपया लेने चमनलाल के यहां पहुंचा। उसके क्रोध का ठिकाना न था। चेहरा और आंखें लालकर उसने मुझे फटकार दिया—"तुम्हारे जैसे धोखेबाज़ों से मैं बात नहीं करूंगा। भगवतीचरण से भी कह देना कि मुझ से कभी न मिले। मैं तुम लोगों का विश्वास करूं और तुम मुझी को धोखा दो!"

बहुत शान्ति से बार बार समझाने और यह पूछने पर कि हमने क्या धोखा दिया? चमनलाल ने बताया—"कल तुम जयचन्द्र से बात कर रहे थे न? मैंने उससे पूछा, तुम इस डांडेकर को कैसे जानते हो?"

"कौन डांडेकर? मैं तो किसी डांडेकर को नहीं जानता!"-जयचन्द्र ने जवाब दिया।

"अरे, मुझसे क्या छिपाते हो? मैं सब जानता हूँ"—चमनलाल ने जयचन्द्र जी से आग्रह किया।

"क्या पागल बनते हो"—जयचन्द्र जी ने उत्तर दिया—"यह तो यशपाल है, लाहौर-षड़यन्त्र का फरार! तुम मुझे बनाना चाहते हो? मैंने तो इसे कालेज मे पढ़ाया है।"—दोनों ही बहकाये न जा सकने का आग्रह करने लगे। अंत में चमनलाल को हार माननी पड़ी।

चमनलाल को क्रोध आना स्वाभाविक था। मेरे डांडेकर होने की धारणा चमनलाल के मस्तिष्क पर बहुत जोर-जबर से बैठाई गई थी। देहली में मुझे भगवती भाई के साथ पहिली बार देखने और मेरा नाम डांडेकर बताया जाने पर उसने माथे पर तेवर चढ़ा, अपनी स्मृति पर बल डाल कर कहा था कि—"डान्डेकर?····मेरा तो ख्याल है कि मैंने पहले तुम्हें कहीं देखा है ?"

चमनलाल का अनुमान ठीक था। उसने मुझे तब से सात वर्ष पूर्व, १६२२ में फिरोजपुर जिला कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में देखा था। वह किसी प्रयोजन से दफ्तर में आकर टिका था और उसे बहुत तेज बुखार हो गया था। उस बुखार में मैंने उसकी सेवा सुश्रुसा की थी। उसके सिर में बहुत जोर का दर्द था। मुझे भी याद था कि बहुत हाय-तोबा उसने मचाई थी। मैं कभी उसका सिर दबा कर और कभी सिर पर बर्फ रख कर उसकी सहायता कर रहा था। दिल्ली में सामना होते ही मैं उसे पहचान गया परन्तु उसे झिझकता देख छिपे रहना ही उचित समझा। बकते फिरने की उसकी आदत से मैं परिचित था।

चमनलाल को क्रोध था कि उसे जबरदस्ती बहकाया गया। हम लोगों को उसकी बहुत खुशामद करनी पड़ी, समझाया—"धोखा इसमें क्या है! तुमसे लिए हुए रुपये का अपव्यय तो हमने किया नहीं। अपना असली नाम इसलिए छिपाया कि बातचीत में कहीं तुम चर्चा कर बैठते तो स्वयं भी फंसते और हमें भी फंसाते।"

जो भी हो, जयचन्द्र जी की बुद्धिमानी को समझना कठिन था। वे जानते थे कि मैं फ़रार हूँ। फ़रार लोग नाम बदल कर ही रहते हैं। चमनलाल जब मुझे 'डांडेकर' मान रहा था तो मेरे असली नाम पर जिद्द करने की क्या आवश्यकता थी? और यह मालूम हो जाने पर कि मैंने उसे अपना नाम डांडेकर बताया है, मेरा भेद खोल देने के लिये जिद्द करने की क्या जरूरत थी? चलनलाल ने हमें यह भी बता दिया कि उसने जयचन्द्र जी को भगवती भाई के विरुद्ध खुफिया पुलिस का आदमी होने का प्रचार करने के लिये बहुत फटकारा और भगवती भाई के सच्चे होने का प्रमाण दिया है कि भगवती और यशपाल साथ साथ रहते हैं। यदि भगवती सी० आई० डी० का आदमी होता तो यशपाल गिरफ्तार हो गया होता। चमनलाल की बात सुन हम लोग और भी हंसे कि जयचन्द्र जी को भी मुझ पर कितना क्रोध आया होगा? मुझे

अपने इस व्यवहार के लिये कोई ग्लानि अनुभव न हुई क्योंकि जयचन्द्र जी की धूर्तता का उपाय करने के लिये ही मुझे ऐसा व्यवहार करना पड़ा।

× × ×

बम का मसाला बनाने के रासायनिक उपकरण और सामग्री जमा हो जाने पर प्रश्न उठा कि मसाला बनाने के लिए रोहतक कौन जाय? भगवती भाई यह काम स्वयं करना चाहते थे। उनकी इस इच्छा का कारण बहुत सीधा था। देवदत्तजी ने यह भी स्पष्ट बता दिया था कि बड़े पैमाने पर कई दिन तक यह काम करना स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। कुछ क्रियात्मक अनुभव हम लोगों को लाहौर में हो ही चुका था। बड़े बड़े कारखानों में जहाँ यह पदार्थ टनों के परिमाण में बनते हैं, काम करने वाले लोग इन पदार्थों के वाश्प से सुरक्षित रहते हैं। स्वास्थ्य की हानि के अतिरिक्त पकड़े जाने पर सीधे जेल पहुँचने में या पुलिस के पकड़ने आने पर लड़ाई में मारे जाने में तो कोई सन्देह था ही नहीं। भगवती इस बीच कलकत्ते जाकर किरण से दूसरी पिस्तौल भी ले आये थे। अब हम दोनों ही सशस्त्र रहते थे। मेरी जिद्द थी कि मसाला बनाने का काम मैं करूँ। सम्भव है, इसमें अपनी चतुरता का अभिमान रहा हो परन्तु मेरा तर्क था:—जो भी आदमी मसाला बनाने जायगा उसे तीन हफ्ते या महीना भर वहीं जमे रहना होगा। भगवती भाई उस समय भी कानपुर में स्वर्गीय गणेशशंकर जी विद्यार्थी की मारफ़त चन्द्रशेखर आज़ाद और दल के पुराने साथियों से सम्बन्ध जोड़ने के प्रयत्न में लगे हुए थे। मैंने कहा—"तुम्हारा यह आवश्यक काम रुक जायगा; दूसरी बात कि बम का मसाला बनाने के लिए रोहतक में मुझे या तुम को वैद्य जी के नौकर के रूप में काम करना होगा। तुम्हारा रूप-रंग नौकर जैसा नहीं जंचेगा। चश्मा उतार कर तुम चल भी नहीं पाओगे।"—और आख़िर में वही तर्क कि "मेरी अपेक्षा तुम्हारे पकड़े जाने से दल की अधिक हानि होगी" आख़िर भगवती मान गये। वे एक दिन रोहतक जा वैद्य लेखराम को दिल्ली बुला लाये ताकि मेरा और उनका परिचय तथा रोहतक में काम करने का ढंग निश्चित हो जाय।

लेखराम को जब बताया गया कि मैं रोहतक में उस के नौकर के रूप में काम करुंगा तो उसे विस्मय हुआ। साथी लेखराम, गोरे रंग,

लंबतड़ंग, इकहरे पुष्ट शरीर का नौजवान था। रोहतक जैसे देहाती नगर के ख्याल से वह काफी भद्र-नागरिक वेश—महीन धोती, रेशमी कमीज, कोट और साफा पहिनता था। दिल्ली मे उसने मुझे देखा सूट, कालर-टाई, चश्मा और हैट पहिने, छोटी-छोटी तितली नुमा मूछें रखे। उस ने आपत्ति की—"तुम नौकर कैसे जंचोगे ?"

भगवती भाई के कहने के अनुसार रोहतक मे लेखराम ने एक कच्चा मकान अपने मकान और दूकान से अलग दवाई बनाने के काम के लिये ले लिया था। और पास-पड़ोस और परिचितों में कह रखा था कि वह शीघ्र ही बहुत बढ़िया-बढ़िया दवाइयां पारे, लोहे, चांदी, सोने और मूंगे की भस्म आदि बनाने का काम शुरू करेगा। लेखराम को आधा सामान लेकर रोहतक लौट जाने और तीन-चार दिन बाद आकर मुझे साथ ले जाने की सलाह दी गई। कुछ दिन मैंने हजामत न बनाई और जब बनाई तो लम्बी लम्बी मूंछें रहने दी। भगवती भाई लाहौर में छंटी हुई आधी-आधी मूंछें रखते थे। दिल्ली में वे मूछों को बढ़ाकर और चढ़ाकर रखने लगे। पड़ोसियों का ध्यान मेरे मूंछ परिवर्तन की ओर कैसे न जाता ? उनके पूछने पर कि "क्या बात है ?" भगवती भाई ने कह दिया—"जनखों की तरह मूछ-मुड़े रहना ठाकुरों को शोभा नही देता।" चार-पांच दिन बाद लेखराम रोहतक से मुझे लिवाने के लिए आया तो एक मोटी मैली धोती, मोटे कपड़े का कुरता और हरे रंग की लम्बी पगड़ी साथ लेता आया था। पड़ोसियों का ध्यान आकर्षित न करने के लिये हम लोगों ने रात के समय चलने का निश्चय किया। रात नौ साढ़ेनौ बजे मैंने कुर्ता धोती पहिन हरियाना के जाटों के ढंग से पगड़ी सिर पर बांध ली और चश्मा उतार दिया। "अब तो तुम बिल्कुल दिहाती जंचते हो यार !"—लेखराम ने हंसकर स्वीकार किया। मेरा नाम 'किसना' तै हो गया।

साथी लेखराम की वैद्यक की दूकान रोहतक के बीच बाजार में थी। मैं इस दूकान पर सुबह-सुबह झाड़ू लगा, टाट-फट्टा झाड़ दुकान के नीचे सड़क पर बोरी बिछाकर बैठ जाता और इमामदस्ते मे दवाई कूटता या खरल मे घोंटता रहता। गर्मी का मौसम, जुलाई-अगस्त के दिन थे। कोई मरीज या मित्र आकर लेखराम से बात करने लगता तो वह मुझे पुकार लेता—"अबे किसनू, बहुत पसीना आ रहा है ज़रा पंखा तो कर !"—मैं दवाई कूटना छोड़ उसे पंखा करने लगता। इस

बीच हम लोग नया मकान ढूंढ़ते रहे। लेखराम ने जो मकान तै किया था, वह हमारे काम के योग्य न था।

मकान ठीक हो जाने पर मैं नई जगह में दवाइयाँ फूंकने अर्थात् बम का मसाला बनाने का काम करने लगा। मैं देवदत्त जी की बताई विधि के अनुसार काम कर रहा था। एक तेजाब में शनैः शनैः दूसरा तेजाब मिलाते समय हिलाते रह कर मिश्रण को स्टोव पर उबालना और उसमें रासायनिक विधि से तीसरा तेजाब बूंद-बूंद डालते जाना। उबलते तेजाब के बर्तन से पीला-पीला धुआँ बहुत अधिक परिमाण में उठता था। बर्तन को छोड़कर दूर नहीं बैठा जा सकता था क्योंकि मिश्रण को हिलाते रहना आवश्यक था। तेजाब के इस पीले धुयें के प्रभाव से मेरे कुरता-धोती दो दिन में ऐसे हो गये कि उन्हें जहाँ से पकड़ता, टुकड़ा हाथ में रह जाता। हर दो दिन बाद नया कुरता-धोती लाते रहना सम्भव न था। इसलिए मैंने काम करते समय कुरता-धोती छोड़ लंगोट बाँधना शुरू कर दिया। बाहर आने-जाने के लिए लेखराम ने दूसरा फटा-पुराना कपड़ा पहिनने के लिये मुझे दे दिया।

कपड़े न पहिनने से इस धुएं का असर मेरी त्वचा पर होने लगा। सारे शरीर का रंग हल्दी जैसा पीला पड़ गया। चार-पाँच दिन बाद नहाते समय त्वचा से महीन झिल्ली सी उतरने लगी, जैसी चौमासे में शरीर पर फूली हुई घाम फटकर झड़ने पर उतरती है। इससे कोई कष्ट अनुभव न होता था। हाँ, धुयें के कारण खाँसी और सिर दर्द की ही परेशानी बहुत होती थी। तेजाबों के रासायनिक मिश्रण से 'पिक्रिक' एसिड के स्फटिक (क्रिस्टल) बन जाने के बाद उसे धोना पड़ता था। इस काम के लिए रबड़ के दस्ताने, जैसे कि डाक्टर लोग आपरेशन करते समय पहिनते हैं, पहिने रहता था। इस पर भी हथेलियों पर रंग पहुँच जाता। दस्ताने भी चौथे पाँचवें दिन गल जाते। मेरे हाथों का रङ्ग पहिले पीला पड़ा और फिर कुछ लाल सा हो गया जैसा कि मेंहदी का रङ्ग पुराना हो जाने पर या सुलफ़े के दाग़ से हो जाता है।

मैं प्रतिदिन सुबह मसाले का एक घान या चढ़ाव पकाने के लिए चढ़ाता था। इस में लगभग चार घण्टे लगते थे। इस के बाद रासायनिक द्रव पदार्थ को ठण्डा होने के लिए रख देना पड़ता था ताकि उसके मिश्री की तरह स्फटिक (क्रिस्टल) बन जांय। इस बीच मैं कुछ देर के लिए दुकान पर काम करने चला जाता। दुकान पर काम था, दवाई

कूटना, वैद्यजी को पंखा करना या उनके मित्रों के आने पर ठण्डे कुँए से ताजा जल भरकर लाना। दुकान पर कुछ लोगों ने मेरे हाथों की लाली देख टोका। मैने दीनता से उत्तर दे दिया—"सरकार, जरा मेंहदी लगाली थी।"—ऐसे अवसर पर लेखराम कब चूकने वाला था, बोल उठता—"देखो साले जनखे को, औरतों की तरह मेंहदी लगाता है। बड़ा शौक़ीन है! शरम नहीं आती?"

वैद्य जी के लिये जिस ठण्डे कुएं से ताजा पानी लेने जाना पड़ता था, वह रोहतक के आर्यसमाज मंदिर में था। उन दिनों एक स्वामी जी ठहरे हुए थे और नित्य संध्या रामायण की कथा करते थे। मुझे देख पुकार लेते—"कहो किसना, कैसे आये?'

"बैद जी के लिए ठण्डा पानी लेने आया हूँ म्हाराज।"—उत्तर पाने पर वे एक डोल अपने लिए भी निकाल देने का अनुरोध कर देते। उनका अनुरोध भी पूरा करता। बाजार में समझा जाता था कि वैद्य जी का नौकर किसना बहुत भला आदमी है पर ज़रा सीधा अधिक है। पानी लेने आर्य समाज मंदिर जाता तो यह सोच कर कि लौटने पर या तो दवा कूटनी पड़ेगी या लेखराम को पंखा झलना पड़ेगा, स्वामी जी के पास ही पांच-सात मिनट बैठकर बात करता रहता—"बड़े बड़े तीरथ करें होंगे म्हाराज तमने?"

एकान्त से उकताए हुए स्वामी जी कोई बात सुनाने लगते। एक दिन स्वामी जी के अनुरोध पर निकाले हुए डोल का पानी उन्हें देने गया तो देखा कि वे मोटे अक्षरों में पत्थर की छपाई की एक पुस्तक पढ़ रहे थे। मैं पुस्तक के उल्टी ओर खड़ा था परन्तु पुस्तक के पृष्ठ पर छपा पुस्तक का नाम तो पढ़ा ही जा सकता था। वह पुस्तक थी 'छिनाल पच्चीसी'। "स्वामी जी क्या रामायण बांच रहे हो?'—डोल से कमंडल में जल उलवाते हुए स्वामी जी से प्रश्न किया।

स्वामी जी ने उत्तर दिया—"हां ऐसे ही एक शास्त्र की किताब है। तू रामायण ही समझ ले"—और पूछा—"कुछ पढ़ा-वढ़ा नहीं किसना तूने?" "नहीं म्हाराज, ऐसे करम कहाँ है"—मेरा उत्तर पा स्वामी जी ने दयापूर्वक मुझे पढ़ा देना स्वीकार कर लिया।

साथी लेखराम दुकान से घर की ओर जाते समय या दुकान पर आते समय कोई बक्सा, बोरी या कनस्टर मेरे सिर पर उठवा देता।

ऐसे ही एक दिन मैं उस के पीछे-पीछे चला जा रहा था। बाज़ार में उस के एक मित्र से उस की भेंट हो गई। वह मित्र पान, सोडा-शरबत की दुकान के सामने लोहे की कुरसी पर बैठा कुछ पी रहा था। उस ने लेखराम को भी साथ की कुरसी पर बैठा लिया और एक लमोनेड या सोडा उसे भी देने के लिये दुकानदार को आदेश दिया। मैं सिर पर कनस्टर उठाये खड़ा रहा। लेखराम ने मेरी ओर घूम कर पूछा—"क्यों बे किसना, तू भी पीयेगा सोडा ?"

"पीलूंगा म्हाराज"—उत्तर दिया।

"ऐ है ; सोडा पियेगा ? बड़ा शौक़ीन है ? सात्ते कभी तेरे बाप ने भी पिया है सोडा ?"—लेखराम बोला और दुकानदार को आदेश दिया—"अच्छा भाई, इसे भी पिलाओ सोडा ! चल, एक अद्धा दे दे।"

दुकानदार ने उन दोनों मित्रों को तो सोडा-लैमोनेड की बोतलें कायदे से गिलास में उड़ेल बरफ छोड़ कर दीं और एक आधी बोतल खोल, मुझे बोतल ही थमा दी। मैं कनस्टर सड़क पर रख खड़ा-खड़ा मुंह उठा बोतल पीने लगा। इस पर लेखराम ने मेरी ओर घूम कर फटकार दिया—"देखो तो, बैल की तरह खड़ा डकार रहा है। बैठ कर क्यों नहीं पीता ?'—मुझे सड़क पर ही बैठ जाना पड़ा।

अपने कारखाने में पहुँच मैंने किवाड़ भीतर से बन्द कर लेखराम को दस-पाँच घूंसे और लातें लगा कर उस की शरारत का बदला दिया। प्रायः ही ऐसा होता, घर आकर वह वायदा करता कि बाज़ार और दुकान पर तंग नहीं करेगा लेकिन बाहर निकलने पर फिर वही हरकत दोहराता। घर के भीतर वह मेरे साथ दूसरा ही व्यवहार करता और मज़ाक से खुशामद में "बड़े भाई" कहने लगता।

लेखराम प्रायः ही दोपहर का खाना खाने घर न जाता। अपने छोटे भाई से कारखाने में ही मँगवा लेता। लेखराम की बहू एक थाली में अपने पती के लिए परौंठे, घी में छौंकी हुई दाल, तरकारी भेज देती और मेरे लिए प्रायः खुश्क रोटियाँ और कटोरी में दाल। मकान की सांकल बन्द कर हम दोनों इस खाने को आधा-आधा बाँटकर खा लेते। लेखराम को इस बात का बहुत ख्याल रहता था कि तेजाबों की विषैली गैस का बुरा प्रभाव मेरे स्वास्थ्य पर न पड़े। वह प्रायः नित्य ही सुबह

कारखाने का चक्कर लगाने आता तो एक बड़े कुल्हड़ में आधा सेर दही या दूध मेरे लिए ले आता और साथ ही ताज़ा 'हिन्दुस्तान टाइम्स' अखबार भी।

उन दिनों लाहौर में हमारे साथियों भगतसिंह आदि के मुक़द्में चल रहे थे। क्रान्तिकारी बन्दियों के अनशन के कारण मुकद्मा स्थगित था। अनशन उचित व्यवहार की माँग के लिए किया गया था। इससे पूर्व ही जेलों में राजनैतिक और साधारण कैदियों की श्रेणियां अलग-अलग स्वीकार की जा चुकी थीं। ब्रिटिश सरकार सम्पन्न लोगों और नेताओं के साथ तो जेल में अच्छा व्यवहार करती, उन्हें मनमाना खाने-पहिनने की सुविधा देती और निम्न वर्ग के कैदियों को अनादर का व्यवहार और बहुत ख़राब-खाना कपड़ा दिया जाता था। वह भेद कितना बड़ा था, इस का अनुमान पण्डित नेहरू की आत्मकथा में उनके पिता मोतीलाल जी के साथ पूना जेल में किये जाने वाले व्यवहार के वर्णन से हो सकता है। नेहरू जी ने बड़े गर्व से लिखा है कि मोतीलाल जी को बड़ा आदमी मान कर अपने भोजन के लिए आवश्यक पदार्थों की सूचि बना देने के लिए कहा गया। बहुत साधारण रूप में मोतीलाल जी ने जो चीजें अपने व्यवहार के लिए बताईं, उनके व्यय के अनुमान से जेल के सुपरिण्टेण्डेन्ट अंग्रेज़ मेजर या कर्नल साहब अवाक मुंह खोले रह गये। ब्रिटिश सरकार केवल कांग्रेसी लोगों को ही राजनैतिक कैदी मानना चाहती थी, सशस्त्र क्रान्ति का प्रयत्न करने वाले लोगों को नहीं। क्रान्तिकारी बन्दियों की माँग थी कि हम लोग अनाचारी अपराधी नहीं हैं, हम लोग एक प्रकार से युद्धबन्दी हैं। हमारे साथ भद्रजनोचित व्यवहार होना चाहिए। हमें वैसा ही खाना-कपड़ा मिलना चाहिए जैसा कि भद्र-समाज के लोग व्यवहार करते हैं। सरकार इस माँग को स्वीकार नहीं कर रही थी इसलिए क्रान्तिकारी बन्दी अनशन कर रहे थे।

अनशन को सब क्रान्तिकारी बंदी समान दृढ़ता से निभा नहीं पा रहे थे। हम लोगों के विचार में अनशन आध्यात्मिक शक्ति पाने या हृदय परिवर्तन का साधन न था। हम उसे सर्वसाधारण की सहानुभूति द्वारा सरकार पर दबाव डालने का ही साधन मानते थे। इसलिये निश्चय किया गया कि पहिले दो बंदी, सब लोगों के प्रतिनिधि के रूप में आमरण अनशन करें। इनकी मृत्यु हो जाने पर दूसरे दो साथी अनशन

आरम्भ कर दें। इस प्रकार अनशन के कारण जनता में होने वाला आन्दोलन भी जारी रहेगा और अभियुक्तों मे से दो के अदालत में उपस्थित न होने के कारण मुकद्दमा भी महीनों स्थगित रहेगा। यह अनशन हमारे दल के प्रचार क्रम का एक महत्व पूर्ण अंग था। सबसे चिन्ताजनक बात थी बीमारी की अवस्था में यतीन्द्रनाथ का लम्बा अनशन। क्रान्तिकारियों के अनशन के समय रबड़ की नलियों से नाक की राह पेट में दूध पहुँचाया जाता था। क्रान्तिकारी बन्दी इसका विरोध करते थे। जेल के चार-चार, पांच-पांच आदमी उनका शरीर दबा लेते और नाक के रास्ते पेट मे दूध पहुंचा दिया जाता। लेकिन इस झटका-झटकी में रबड़ की नली शरीर के भीतर ग़लत जगह भी पहुंच जाती और उससे भयंकर यातना और रोग हो जाता। ऐसे ही यतीन्द्रनाथ के फेफड़े में दूध चला गया और उसे निमोनिया हो गया। उसकी अवस्था चिन्ताजनक थी। जनता में क्रान्तिकारियों की मांग पूरी की जाने के लिये जोर-शोर से आन्दोलन चल रहा था और ब्रिटिश सरकार के अत्याचार के विरुद्ध खूब घृणा फैल रही थी।

एक दिन पत्र में समाचार आया कि यतीन्द्रनाथ की मृत्यु हो गई। अभियुक्तों की 'डिफेन्स कमेटी' की मांग पर यतीन्द्रनाथ दास का शव लाहौर में उपस्थित उसके भाई किरण दास को सौंप दिया गया। इस शव का जुलूस निकाला गया। अखबारों में छपे वर्णन के अनुसार लाहौर में इस जुलूस में लाखों की भीड़ सम्मिलित हुई और यतीन्द्रनाथ की अर्थी पर फेंके गए फूलों के सड़कों पर कुचले जाने से कीचड़ हो गया। यतीन्द्रनाथ का यह जलूस लाहौर से कलकत्ते तक पहुँचा। दुर्गा भाबी, भगतसिंह के पिता और किरण शव के साथ कलकत्ता गये। रास्ते भर प्रत्येक स्टेशन पर अर्थी के दर्शन के लिए बहुत बड़ी भीड़ जमा हो जाती।

रोहतक के बम के कारखाने में जनता द्वारा यतीन्द्रनाथ की अर्थी के अनुपम उत्साहपूर्ण सत्कार का समाचार पढ़ कर मेरे मन में विचित्र, परस्पर-विरोधी अनुभूतियां हुई। यतीन्द्रनाथ के बलिदान पर मैंने दल के एक साथी के रूप में गर्व अनुभव किया। जनता का यह आदर हमारे दल की नैतिक विजय और ब्रिटिश सरकार की निन्दा थी परन्तु इसके साथ ही मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि यतीन्द्रनाथ का सत्कार करके जनता ने उसके बलिदान का मूल्य चुका दिया। हम लोग ध्यान

आकर्षित किये बिना अपने को मिटाकर गुप्त रूप से अपना कर्तव्य समझ कर बलिदान हो रहे थे। मन में भावना थी कि हम अपने बलिदान का कोई मूल्य नहीं चाहते। उस बलिदान का मूल्य जनता द्वारा ज़बरदस्ती दे दिये जाने पर मुझे चोट सी लगी। जान पड़ा, कि बिना मूल्य पाये बलिदान होने की हमारी प्रतिज्ञा को जनता ने बलात् तोड़ दिया। मैं अपने और यतीन्द्रनाथ में कोई अन्तर नहीं समझता था।

रोहतक में मैं अपढ़ समझा जाता था। इसलिए अख़बार छिप कर ही पढ़ता था। एक रोज़ मैं अख़बार पढ़ रहा था, लेखराम का छोटा भाई खाना लेकर आ गया। जीने पर उसके कदमों की आहट मैं न सुन सका। उसके सामने आजाने पर ही देख पाया। उसने मुझे अख़बार थामें देखा तो बड़े कौतूहल से पुकार उठा—"वाह भाई वाह! किसना अख़बार पढ़ रहा है!"

"भैया मूरत देखूं सूं"—मैंने मूर्खतापूर्ण मुस्कराहट से उसकी ओर देखकर उत्तर दिया और अख़बार में छपे एक चित्र की ओर संकेत करके पूछा—" जे महातिमा गाँधी हैं न भैया?"

"धत पागल! महात्मा गांधी ऐसे होते हैं?"—उत्तर मिला।

उस मकान में लेखराम, उसके छोटे भाई, और लेखराम के नौकर के अतिरिक्त एक ही व्यक्ति और आता था। वह थी पनिहारिन। खूब जवान और हृष्ट-पुष्ट। बहुत बड़ा घड़ा सिर पर उठाये धम-धम करती चली आती। बम का मसाला धोने के काम में पानी बहुत व्यय होता था इसलिए एक बड़ा मटका और दो-तीन घड़े पानी के लिए रखे हुए थे। पनिहारिन घड़े लाकर मटके में उड़ेल देती और खाली घड़े भी भर कर रख जाती। पनिहारिन शायद बड़े घड़े का एक पैसा के हिसाब से मजदूरी लेती थी। किसना के भले और बुद्धू होने की प्रसिद्धि पनिहारिन भी सुन चुकी थी। पानी का भारी घड़ा लेकर पहुँचाती तो आते ही आवाज़ देती—"अबे किसने जल्दी उतरवा घड़ा।"

मसाला बनाते समय मैं केवल लंगोट बाँधे रहता था। मध्यम श्रेणी के संस्कारों के कारण कपड़े पहिने बिना स्त्री के सामने और इतने समीप जाने में संकोच होता परन्तु वह झुंझलाकर चिल्लाती "—मर गया तू जल्दी दौड़, मेरी गर्दन टूट रही है।" उसकी सहायता के लिए जाना

ही पड़ता। वह बड़े मटके में दो घड़े उड़ेलकर तीन गिनना चाहती थी। यदि मैं दो पर ज़िद करता तो हाथ मटकाकर आत्मीयता में गाली देती—"मुए, गिन्ना भी जाणै सै ?"

गिनती पनिहारिन खुद नहीं जानती थी। घड़े रखने की जगह के समीप कच्ची दीवार पर एक कोयले से घड़ों की संख्या के हिसाब से चिन्ह बनाती जाती थी। जब मैं देखता कि उसने तीन की जगह चार चिन्ह बना दिये हैं तो गीली मिट्टी ले उसके चिन्ह को मिटा देता। पनिहारिन भारी घड़ा लाने के बाद कुछ देर सुसताने के लिए बैठ जाती और मेरे बाल-बच्चों और घरवाली के बारे में पूछती रहती। मैं जानबूझ कर मूर्खतापूर्ण उत्तर देता और वह हंस-हंस कर लोट पोट हो जाती।

"क्लोरोपिकरेट" और "गनकाटन' काफी मात्रा में बन चुका था। दिल्ली लौटने की तैयारी ही थी। उस दिन आखिरी थान धोकर सूखने के लिए रक्खा था। सन्ध्या समय लेखराम की दुकान पर उसका एक परिचित व्यक्ति आया। जिस मुहल्ले में हमारा कारखाना था उसी मुहल्ले का नाम लेकर बोला—"वहाँ पुलिस वाले आज जाने क्या सूंघते फिर रहे हैं?" यह बात सुन मेरे और लेखराम दोनों के ही रोंगटे खड़े हो गये परन्तु उस व्यक्ति के सम्मुख कोई चिन्ता प्रकट न की। इस व्यक्ति का नाम था लक्ष्मणदास। वे रोहतक की कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी थे। लक्ष्मणदास के जाते ही लेखराम ने परेशानी में पूछा—"अब?" मैंने उत्तर दिया—"तैयार मसाले को गीला-सूखा बाँधकर एक दम भाग चलो! शेष सामान पर ताला लगा दिया जाये। यदि रात में कुछ होगा तो कम से कम मसाला और हम लोग तो बच जायँगे।" मैं मसाला समेटने और बाँधने गया। लेखराम से कहा, तुम लक्ष्मणदास को समझा दो कि बहुत जरूरी काम से अचानक मथुरा जा रहे हो। वह तुम्हारी घरवाली को चिन्ता न करने और रोहतक से बाहर जाने की बात किसी से न कहने के लिए समझा दे। लक्ष्मणदास को यह भी कह दो कि दो दिन द देहली क्लाथ मारकेट में गुप्ता के मकान पर आकर शाम को तीन बजे मिले। वह कारण पूछे तो कह देना कि वहीं बताऊंगा।

लगभग सूर्यास्त का समय था हम लोग गीला सूखा मसाला बाँध और शेष सामान पर ताला लगा देहली जाने वाली सड़क पर चल दिये।

लेखराम ने भी रोहतक के देहाती का सा भेष बना लिया। सामान की गठरियाँ दोनों के सिरों पर थीं। एक लारी दिल्ली की ओर जाती दिखाई दी। उसे खड़ा होने के लिए इशारा किया। गाड़ी खड़ी होने पर देखा उस में तीन कान्सटेबिल बैठे हुए थे। बम का मसाला लेकर उनके साथ बैठते कुछ संकोच हुआ परन्तु लारी को पुकार चुके थे। दामों के बारे में झगड़ा किया ताकी लारी वाला बैठाने से इन्कार कर दे। लारी वाला हमारी मूर्खता पर कुछ गालियाँ दे उतने ही दामों में बैठाने पर तैयार हो गया। बैठना पड़ा। सिपाहियों का ध्यान हमारी ओर गया ही नहीं। लारी में एक खूब जवान स्त्री बैठी थी। सिपाही उसे देख गा रहे थे—"हौले होले चाल डिरेवर मेरा जोबन हाले रे!"

सिपाहियों की बात में सहयोग दे उन्हें प्रसन्न करने के लिये मैंने बड़े भोलेपन से सुझाव दिया—"जोबन हाले तो हल्लण दियो जमादारजी कौन घी है के डुल जायगो! गाड्डी क्यों हौली करो सो?"

"वाहरे चौधरी वाह!"—सिपाही ने बड़े उत्साह से मेरी पीठ ठोंक दी। हंसते-बोलते रात के लगभग साढ़े नौ बजे दिल्ली में अपनी जगह जा पहुँचे।

भगवती भाई ने हमारे रोहतक से निकल आने का ही समर्थन किया। रोहतक में क्या बीता, यह जानने की चिन्ता तो मन में लगी ही थी। दो दिन बाद लक्ष्मणदास को दिये पते पर मिलने के लिए पहुँचे। लक्ष्मणदास ने बताया कि उस संध्या उस मोहल्ले में पुलिस के सूंघते फिरने का कारण किसी भागी हुई जाटनी की तलाश थी। इस बात से तो निश्चिन्त हुये परन्तु चिन्ता का एक और कारण लक्ष्मणदास ने बता दिया। लेखराम के अचानक घर में खबर दिये बिना भाग जाने से उस की स्त्री बेहोश हो गई थी और अब पति के न लौटने तक अनशन व्रत किये बैठी थी।

बम के लिए रासायनिक सामग्री खरीदने के लिए तथा दल के दूसरे कामों में सहायता के लिये लेखराम ने घरवाली से लेकर दो-ढाई सौ रूपया हमें दिया था। रुपये की जरूरत का कोई कारण वह बहू को बतला न सका। इसके अतिरिक्त उसे कई बार अचानक दिल्ली आना-जाना पड़ जाता। पिछले मास रात घर न जाकर कभी कभी मेरे साथ कारखाने में ही रह जाता। अपनी कमाई भी अब वह प्यार से बहू के हाथ न सौंपकर हम लोगों के ही हवाले कर देता था। बहू को संदेह

हो गया कि अब तक उस पर जान देने वाला उसका पति किसी डाइन के फरेब में फंस गया है। खयालीराम जी गुप्त के मकान पर हम लोग लक्ष्मणदास से मिलने गये तो लेखराम को पहचान कर वह मुस्कराया तो अवश्य परन्तु कुछ कह न पाया। लेखराम ने उस के संकोच का कारण समझ कर बोला—"बात तो बताओ, यह किसना ही तो है।" लक्ष्मणदास उस की बात न समझ चुप ही रहा। लेखराम ने फिर अपनी बात दोहराई। लक्ष्मणदास ने मेरी ओर देखा पर देख न सका। साफ सुथरा सूट, चुस्त कालर-टाई, चश्मा, खूब ढंग से संवारे बाल और सफाचट दाढ़ी-मूंछ। लेखराम की बात उसकी कल्पना में ही नहीं समा रही थी।

लेखराम मुझे बता चुका था कि लक्ष्मणदास बहुत भरोसे का आदमी है, और उपयोगी हो सकेगा। हम लोगों ने उसे भरोसे में ले लेने का निश्चय कर लिया था। उसकी हिचकिचाहट देख मैंने किसना के रूप मे व्यवहार करने वाली बोली और स्वर में ही उत्तर दिया—"थारा (तुम्हारा) किसना ही तो हूँ म्हाराज।" अब लक्ष्मणदास ने तीन-चार बार मुझे ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर तक देखा। लेखराम ने उसे समझाया, मेरा नाम जगदीश है। दल का बहुत महत्वपूर्ण आदमी हूं। भविष्य में जब कभी उसे बुलाऊं या जो आदेश दूं, पूरा करना होगा। लक्ष्मणदास भी हमारे भरोसे का साथी बन गया।

बम का मसाला तैयार हो जाने पर बम के बड़े-बड़े खोल बनाने का प्रश्न आया। ऐसे खोलों की आवश्यकता थी जिनमें डेढ़ दो सेर मसाला समा सके। यह निश्चित था कि दूसरों से खोल ढलवा कर संदेह का अवसर न दिया जाय। उपाय भी सीधा ही था। पीतल के तीन बड़े बड़े लोटे खरीद लिये। उनके मुंह के नाप की लोहे की गोल पटियाँ कटवा लीं और उनमें बिजली के तार जाने के लिए सुराख करवा लिए। पटियों को लोटों के मुँह पर लोहे की कड़ियों से कस दिया गया। यह सब काम श्रद्धानन्द बाज़ार के पिछवाड़े की गली में ही किया गया। अपने पड़ोसियों से तो हम ब्रिटिश सरकार के शासन और सुप्रबन्ध की प्रशंसा करते थे और भीतर की छोटी कोठरी में वाइसराय की गाड़ी के नीचे विस्फोट के लिए बम तैयार कर रहे थे।

× × ×

पाँच

तेहखंड में लाइन के नीचे बम

बम बन जाने पर प्रश्न था, वाइसराय की गाड़ी के नीचे बम लगाने के लिए जगह के चुनाव का। पहिले विचार था कि वाइसराय के शिमला से दिल्ली लौटते समय कालका-दिल्ली लाइन के नीचे बम चलाया जाय। इस लाइन का निरीक्षण करने पर उस में कई असुविधायें दिखाई दीं। अपना काम सफलता पूर्वक कर सकने के लिए हम लोग एक या दो जानों का मूल्य देने के लिए तैयार थे परन्तु यदि सफलता पूर्वक काम करके जान भी बचाई जा सकती तो और भी अच्छा था। इस विचार से हमें दिल्ली के आस पास मथुरा लाइन ही सब से उपयुक्त जँची क्योंकि इस रेल लाइन के समानान्तर मोटर की सड़क भी है। बम विस्फोट करने वाला साथी यदि घटना के समय ही मारा न जाता तो इस सड़क से दिल्ली लौटने का यत्न कर सकता था। हमने इसी लाइन को चुना और इस घटना की योजना को ब्यौरेवार सोच डाला।

बम ठीक अवसर से पहिले लाइन पर से गुजरने वाली गाड़ियों की धमक से न फट जाय इसलिए धमाके से स्वयं आग पकड़ने वाली कोई चीज़ उस में नहीं रखी जा सकती थी। वाइसराय की गाड़ी आने से कई घंटे पहले लाइन के दोनों ओर पहरा लग जाता था। इस बीच में दसियों गाड़ियाँ उस लाइन पर से गुज़रतीं रहती थी। बमों में आग देने का ऐसा प्रबन्ध करना आवश्यक था कि बम रेल की लाइन के नीचे कुछ दिन पहले से दबे रहें। और साधारण सवारी गाड़ियाँ बमों पर से बिना खतरे के गुजरती रहें। वायसराय की गाड़ी आने पर, लाइन के दोनों ओर पहरा होते हुए भी बमों को उसी गाड़ी के नीचे चला दिया जाये। इसके लिये उपाय सोचा कि रेल लाइन से कुछ दूरी पर बिजली की बैटरी रहे। बैटरी से बम तक बिजली के तार गाड़ दिये जायं। वाइसराय की गाड़ी गुजरते समय एक आदमी बैटरी के पास झाड़ियों में छिपा रहे।

जिस समय गाड़ी का इन्जन बमों के ऊपर पहुँचे, यह आदमी बैटरी का बटन दबा कर बमों में चिनगारी दे दे। इन्जन के उलटने से गाड़ी अवश्य गिर जानी चाहिए थी। हमारी कल्पना के अनुसार ऐसी अवस्था में बौखलाहट पैदा हो जाने पर बम का विस्फोट करने वाला व्यक्ति दिल्ली की ओर भाग सकता था।

यह बात हमारे ध्यान से नहीं चूकी थी कि लाइन के समानान्तर जाने वाली सड़क दिल्ली के समीप 'आखले' में रेल लाइन को लांघती है। यहां सड़क पर रेल का फाटक है। गाड़ी के गुजरने से पहिले यह फाटक बन्द हो जाता है और गाड़ी निकल जाने के बाद ही खुलता है। यह आवश्यक था कि बम विस्फोट कर लौटते हुये आदमी को यह फाटक बन्द मिलता। इस फाटक को लड़कर खुलवाना पड़ता। उस लड़ाई में हमारा साथी मारा भी जा सकता था और बच भी सकता था। यह निश्चय किया गया कि बम विस्फोट करने के बाद दिल्ली की ओर लौटने वाला हमारा साथी फौजी अफसर की पोशाक मे रहे ताकि घटनास्थल से कुछ ही क़दम सुरक्षित निकल जाने से उस पर सन्देह न किया जा सके और रेल का फाटक खुलवाने में उसका फौजी रोब भी काम आ सके। यह भी आवश्यक था कि घटनास्थल से दिल्ली तक पहुँचने मे कम से कम समय लगे। इसके लिये साइकिल के बजाय मोटर-साइकिल अधिक उपयुक्त थी। फौजी अफसर का साइकिल के बजाय मोटर साइकिल पर सवार होना ही अधिक जंचता था।

रेल लाइन के नीचे बम रात के समय ही दबाये जा सकते थे। रात में सवारी गाड़ियां लगभग किस किस समय उस स्थान से गुजरती है, यह तो रेलवे टाइमटेबुल देख कर ही मालूम हो गया परन्तु माल-गाड़ियों के गुजरने का समय कैसे पता लगता? इसके लिये आवश्यक था कि कोई व्यक्ति कुछ दिन तक चौबीसों घन्टे रेलवे लाइन के समीप रह कर परिस्थिति का निरीक्षण करे। ऐसे आदमी के ठहरने के लिए हमने सड़क के किनारे, रेल लाइन के बिल्कुल पास मुगलों के समय की एक टूटी हुई छोटी सराय या प्याऊ खोज लिया। इस सराय के सामने लगभग बीस कदम पर एक छोटा कुआं भी है। अब ऐसे आदमी की जरूरत हुई जो साधू का वेष धर कर इस सराय में धूनी रमा ले और चौबीसों घण्टे इस स्थान की परिस्थितियों का निरीक्षण करे। मैं और भगवती भाई दोनों ही इस काम के किये तैयार थे परन्तु

हम दोनों को और भी बीसियों काम थे, मोटरसाइकिल खरीदना, उसे खूब तेज चला सकने का अभ्यास करना, तारों और बैटरी का प्रबन्ध करना, नये स्थापित सम्बन्धों को कायम रखना, रुपया इकट्ठा करना आदि आदि।

अभी तक भगवती भाई का खयाल था कि बम विस्फोट वे अपने हाथों करेंगे और मेरा ख्याल था कि मैं करूंगा। जो कोई भी इस काम को करता; साधू बनकर यहां नहीं बैठ सकता था। मूंड़-मुड़ाये साधू का तुरन्त फौजी अफसर के रूप में बदल जाना कैसे होता? मैंने इस काम के लिये लाहौर से इन्द्रपाल को बुलाने का निश्चय किया। इन्द्रपाल पत्र पाते ही आ गया। पत्र में अपने रहने की जगह का पता लिख देना उचित न था। उसे फ्रन्टियर मेल से आने के लिये लिखा था और समझा दिया था कि गाड़ी दिल्ली स्टेशन पर सुबह साढ़े सात बजे पहुंचेगी। वह साढ़ेआठ तक दिल्ली जेल के सामने, किला फिरोजशाह-तुगलक़ में पहुंच जाय। तुग़लक का किला दिल्ली के ऐतिहासिक दर्शनीय स्थानों में से है। वहां अनेक सैलानी दर्शक आते-जाते रहते हैं। स्वयं कुछ मिनट पहले ही पहुँच गया। इन्द्रपाल समय पर आया। हम दोनों घूम फिर कर किला देखते हुये बातचीत करने लगे। किले के एक आकर्षक स्थान पर पहुंच उसने कहा—"यहां मेरी एक फोटो तो ले!"

"जब समय आयेगा फोटो भी ले लेंगे"— उत्तर दिया। उसने आग्रह किया, "नहीं अभी ले!—मैंने कैमरे का केस खोल कर उसे दिखाया। कैमरा नहीं था। किसी परिचित के यहां से खाली केस उठा लिया था कि ऐसी जगहों में शौकीन सैलानी दर्शक समझा जाऊं। इन्द्रपाल से मैंने कहा—"अब तुम्हारा घर छोड़ कर फरार हो जाने का समय आ गया है!"

"तुम मेरी परिस्थिति समझ लो और जैसा कहो—" इन्द्रपाल ने उत्तर दिया—"मेरे दोनों छोटे भाइयों का मेरे सिवा और कोई नहीं है। वे बारह और आठ बरस के हैं। अभी सप्ताह भर पहिले मेरी सगाई भी हो गई है।" "खैर, एक या दो महीने के लिये तो आ सकते हो" मैंने पूछा। अगस्त का महीना था। विचार था कि अक्तूबर के अन्त से पहिले हम काम पूरा कर लेंगे।

"आ जाऊंगा। तुम मेरे दोनों भाइयों के लिये दो महीने के गुजारे

का प्रबंध कर दो। पिछले दिनों मुझ पर बहुत खर्च पड़ते रहे हैं। इस समय मेरे पास पैसा नही है। आने-जाने में भी खर्च होता है।" कितना रूपया तुम्हें चाहिये, मैंने पूछा।

इन्द्रपाल ने हिसाब लगाकर "बीस रूपया"—मांगे।

मैंने दस रूपये इन्द्रपाल को उसी समय दे दिये और एक पुरजा पर लिख दिया, इसे बीस रूपये दे दिए जायं। दस्तखत कर दिये 'प्राणनाथ', उसे समझा दिया। जब मैं तुम्हें दिल्ली आने के लिये लिखूं, दुर्गा भाबी या बहिन प्रेमवती से रूपये ले लेना। तुम्हें लगभग सितम्बर में आना पड़ेगा।

इन्द्रपाल को मैंने यह नहीं बताया कि उसे आकर क्या करना होगा, न उसने पूछा। इस प्रकार की पूछताछ हम लोग उचित नहीं समझते थे। इन्द्रपाल अनुशासन का पक्का था। उसे मैं अपनी दिल्ली की जगह पर भी नहीं ले गया क्योंकि आवश्यक न था। इन्द्रपाल लाहौर से चमड़े का एक छोटा सूटकेस साथ लाया था। यह सूटकेस देखने मे छोटा परंतु बहुत भारी था। इसमें सुखदेव के ढलवाये हुए छोटे बमों के खोल थे। सूटकेस मैंने अपने हाथ में ले लिया और इन्द्रपाल को स्टेशन पर पहुंचा दोपहर की गाड़ी से लाहौर लौटा दिया।

ऊपर 'प्राणनाथ' के नाम से हस्ताक्षर करने की बात आई है। यह भी रोचक कहानी है। लाहौर से पहिली बार फरार होते समय इन्द्रपाल के पते पर पत्र व्यवहार का प्रबन्ध कर कह गया था कि 'प्राणनाथ' के नाम से पत्र लिखूंगा। यह नाम चुन कर या सोच कर नहीं रखा गया था। एक दिन सुशीला जी ने पूछ लिया—"यह क्या ऊटपटांग नाम तुमने चुना है। पुकारने में झेंप मालूम होती है।"

मज़ाक में उत्तर दिया—"क्या करूँ? ऐसी आशा नहीं कि जिन्दगी मे मुझे कोई 'प्राणनाथ' कहेगा। इसलिये मैंने नाम ही रख लिया है कि सभी को कहना पड़े।"

"धत्त असभ्य आदमी।"—कह कर सुशीला जी ने फटकार दिया। उनकी धारणा बन गई कि मैं 'भला आदमी' नहीं हूँ और जब कभी मेरे नाम की आवश्यकता होती वे 'असभ्य आदमी' या 'सभ्यता की पहली पुस्तक' नाम का ही व्यवहार करतीं। देहली मे मेरा नाम प्राणनाथ नहीं 'जगदीश' ही चलता था।

सितम्बर में मैंने इन्द्रपाल को देहली आ जाने के लिये लिखा। इस बार उसे दिल्ली पहुँचने के एक घण्टे बाद चांदनी चौक में एक आधुनिक ढंग के रेस्टरां (खानपान की दुकान) 'मानसरोवर' में मिलने के लिये लिखा था। उससे कुछ मिनिट पहले ही पहुंच गया ताकि उसे परेशानी न हो। चाय पीकर हम लोग 'फतेहपुरी' बाजार की एक धर्मशाला में गये। उसके साथ घूमते-फिरते मैंने उसे बताया कि तुम्हें डढ़ या दो महीने तक साधू के रूप और वेष में रहना होगा। वहाँ रहकर जैसे मैं कहूँ परिस्थिति का निरीक्षण कर खबर देनी होगी। मैं या भगवतीचरण समय समय पर आकर तुमसे मिलते रहेंगे। इन्द्रपाल के स्वीकार कर लेने पर हम दोनों बाइसिकलों पर दिल्ली से मथुरा जाने वाली सड़क पर गये। दिल्ली से नौ मील दूर सड़क के किनारे रेल लाइन के समीप इन्द्रपाल को मुगलों के समय की टूटी-फूटी सराय दिखाकर बताया, यहाँ तुम रह सकते हो। यहां दोनों तरफ समीप गांव भी हैं। गांव वालों का विश्वास पाने के लिए तुम भिक्षा मांग कर निर्वाह करना। यों मैं या भगवतीचरण आकर कुछ न कुछ पहुँचा ही दिया करेंगे।

इन्द्रपाल उस बियाबान में अकेला रहने के लिए भी तैयार हो गया। अब भी उसे वहाँ रहन का प्रयोजन नहीं बताया गया। अगले दिन उस के साधू बन जाने की बात तै हुई। दोपहर बाद मैं और भगवती भाई मथुरा की सड़क पर कौरवों-पाण्डवों के क़िले में पहुँचे। इन्द्रपाल वहाँ पहिले से मौजूद था। वह सिर और दाढ़ी-मूंछ मुड़ा आया था। हम लोग साधू की आवश्यक साज-सज्जा भगवा रङ्ग में रंगी पुरानी धोती, एक काला कम्बल, कमण्डल, चिमटा, चिलम और पाव भर तम्बाकू लेते गये थे। इन्द्रपाल ने किले क खण्डहरों में एक सूने स्थान में वेष बदल लिया और 'तेहखण्ड' की ओर सड़क के किनारे टूटी सराय में धूनी रमाने के लिए चल दिया। हमने उसे दो रोज में आकर खबर लेने का आश्वासन दिया और उसके कपड़ों की पोटली साथ ले लौट गये।

तीन दिन बाद मैं साइकिल पर इन्द्रपाल से मिलने गया। सूर्यास्त में कुछ समय शेष था। वह सराय के सामने कुँए की जगत पर केवल कोपीन मात्र बाँधे बैठा था। उसका चेहरा उतरा हुआ जान पड़ा। कुंए की जगत के नीचे आस-पास के गांवों के दो तीन आदमी बैठे चिलम पी रहे थे। उन लोगों के सामने मैंने इन्द्रपाल को 'बाबा जी' सम्बोधन कर उसके चरण छूकर प्रणाम किया।

"खुश रहो बच्चा"

इन्द्रपाल ने मुझे आशीर्वाद दिया और प्रश्न किया—"कहो सेठ, कैसे आये ?" साधू के दर्शनों के लिये मैं साधारण स्थिति के दुकानदार की सी पोशाक में, बन्द गले का कोट, धोती और काली किश्तीनुमा टोपी पहिन कर गया था। समीप बैठों को दिखाने के लिये मैं श्रद्धा से इन्द्रपाल के सामने भूमि पर बैठ गया और बोला—"कल बड़े मुनीम जी मथुरा से लारी में लौटे तो उन्होंने बताया कि महाराज यहां दिखाई दिये थे, सो दर्शन करने के लिया चला आ रहा हूं। महाराज की कृपा से अब घर में तबीयत बहुत अच्छी है। महाराज कभी फिर हमारी झोंपड़ी पवित्र करें"—समीप बैठे लोगों से मैं बोला—"महाराज शहर के भीड़-भड़ाके में नहीं रहते। योगी तपस्वी हैं। दिल्ली में तो बड़े-बड़े लोग महाराज के चरणों की धूलि के लिये तरसते हैं। चढ़ती जवानी में सन्सार की माया छोड़ बैठे हैं पर भगवान ने ऐसी सामर्थ्य दी है कि जो मुँह से निकल जाय, पूरा हो जाता है। इनकी चुटकी में बड़ी करामात है। हमारी घरवाली चार बरस से माँदी थी, पानी भी नहीं पचता था। महाराज की भभूत की तीन चुटकी में ठीक हो गई।"—फिर हाथ जोड़ इन्द्रपाल से विनय की—"महाराज, एक चुटकी और दे देते तो काया में जरा बल आ जाता।"

इन्द्रपाल ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"दस-पांच दिन और देखो, अपने आप ठीक हो जायगा।" बैठा-बैठा मैं इन्द्रपाल से बात करता रहा—"महाराज बाजार बड़ा मंदा जा रहा है। कारोबार कुछ रह नहीं गया। कभी कुछ बता देते तो भला हो जाता ग़रीब का।"—मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि समीप बैठे लोग उठें तो कुछ काम-काज की बात करूं। वे लोग सूर्यास्त हो जाने पर ही गये। उन लोगों के जाने पर इन्द्रपाल ने बताया कि वह बड़ी मुसीबत में है। जब से यहां आया है, भूखा है। समीप के गांव में भिक्षा के लिये गया तो अवश्य था परन्तु संकोच से मांग नहीं सका। केवल एक ही घर के दरवाजे पर पुकार लगाई। किसी ने ध्यान नहीं दिया। जिस घर पर पुकार लगाई, घर-वाली ने सिर्फ एक मुट्ठी आटा लाकर कमंडल में डाल दिया। वह आटा उसने उसी गांव के लोगों के सामने चींटियों के भिटे पर डाल दिया। दूसरे दिन दूसरे घर पर पुकार लगाई। फिर एक ही मुट्ठी आटा भिक्षा में मिला। वह भी उसने चीटियों को ही चरा दिया। बस

पानी पर ही निर्वाह था। भूख मारने के लिये बराबार चिलम पीने से उसके सिर में दर्द हो गया है। चला-फिरा नहीं जा रहा था।

सुनकर बहुत दुख हुआ। तेजी से साइकिल पर लौटा और भगवती भाई को परिस्थिति बताई। उसी समय 'परोंठेवाली गली' से दस-बारह परोंठे, साग-सब्जी, एक कुल्हड़ में कुछ दही और खुश्क मिठाई, जो जल्दी खराब न हो, लेकर भगवती भाई साइकिल पर इन्द्रपाल की तेहखण्ड कुटिया पर पहुंचे और इन्द्रपाल को भोजन कराया। दो-तीन दिन अपनी भिक्षा का आटा इन्द्रपाल चींटियों को ही चराता रहा। देखने वालों ने विस्मय प्रकट किया—"महाराज क्या आप कुछ नहीं खायेंगे?"

उदारता से इन्द्रपाल ने उत्तर दिया—"यह भी शिवजी की सृष्टि है। इसका भी पेट भरना चाहिए। जब थोड़ा भोजन हो तो छोटे जीव का पेट भरता है, अधिक भोजन हो तो बड़े जीव का।" लोगों पर उसके व्यवहार का बहुत प्रभाव पड़ा। वह एक ही घर से भिक्षा मांगने के व्रत पर दृढ़ रहा परन्तु अब वह जिस द्वार पर पुकार लगाता, यथेष्ट भिक्षा मिल जाती। कभी कभी लोग स्वयं ही उसकी कुटिया पर भोजन पहुँचा देते।

कुंए से पानी निकालने के लिए एक रस्मी, कुछ गोलियाँ एस्प्रीन की, एक शीशी अमृतधारा, हिन्दी रामायण, एक पुस्तक हिन्दी हस्तरेखा और एक व्याघ्र-चर्म हम लोगों ने इन्द्रपाल को पहुँचा दिया। मैं और भगवती भाई प्रायः ही दिल्ली के लाला लोगों के वेष में जाकर देहातियों के सामने 'बाबाजी' के प्रति श्रद्धा प्रकट करते रहते। इन्द्रपाल मदनपुर और तेहखण्ड में रामायण की कथा भी बांचने लगा। लोग उससे दवा-दारू भी लेने लगे। कोई अपने भाग्य की बात भी पूछने आजाता। वह कभी किसी से कुछ न मांगता। उसके कहने से गांव वालों ने कुछ घड़े पेड़ के नीचे कुएं पर लाकर रख दिये थे। वह स्वयं या गांववाले कुएं से पानी खींच इन घड़ों को भर देते और 'बाबाजी' आते जातों को जल पिलाते रहते।

बाबाजी की सराय के समीप ही रेल लाइन के फाटक के चौकीदार चेतराम की गफ़लत से रेल से दो जानवर कट गये थे। वह आकर इन्द्रपाल के सामने रोया झींका। इन्द्रपाल ने एक मिनिट आँख मूंदकर आदेश दिया—"प्याऊ पर बैठकर राम नाम जपते रहो। दस प्यासों

को पानी पिलाये बिना मत उठना। तेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा।" चौकीदार ने आदेश पूरा किया। अवसर की बात कि वह केवल आठ आने जुरमाना दे कर छूट भी गया। कान, दाँत, सिर या कमर की दरद की शिकायत करने वाले आते तो इन्द्रपाल 'एस्प्रीन' की पिसी हुई गोलियाँ अपनी धूनी की भस्म में मिला कर दे देता। यह दवाइयां देते समय थोड़ा बहुत पाखण्ड भी अवश्य करता, उदाहरणतः आँख मूँद बीमार के सिर पर हाथ रख उस के सिर को झटका दे देना या आकाश की ओर देख चुटकी बजा कर "जा" कह देना।

आरम्भ में तेहखंड के प्याऊ पर इन्द्रपाल को काफी असुविधा हुई। भूखा रहा, मच्छरों ने तंग किया। सब से बढ़ कर उस बियाबान और खंडहर में सांपों का भय था। एक बार तो सांप पर उस का पांव ही पड़ गया। अपने परिचित एक डाक्टर से हमने सांप काटने की जो दवाई मिल सकी, वह भी उसे पहुंचा दी थी। सब कष्ट सहकर भी इन्द्रपाल ने कोई शिकायत न की, न यह जिज्ञासा की कि उसे वहां व्यर्थ में कष्ट झेलने के लिये क्यों रखा गया है? पास पड़ोस के गांवों के लोगों को उसके प्रति श्रद्धा हो गई। लोगों ने प्याऊ के आस पास की जगह खूब साफ कर दी। गांव-देहात में जिस प्रकार का भोजन मिल सकता है, उस की भी उसे कमी न रही। हम लोगों ने अपनी योजना अनुसार एक पुरानी फौजी मोटरसाइकिल लगभग सवातीन सौ रुपये में खरीद ली थी। इस मोटर साइकिल पर अभ्यास करने के लिये मैं तेहखंड के प्याऊ के समीप सड़क पर से मथुरा की ओर आता-जाता रहता था। मोटर साइकिल पर इन्द्रपाल के समीप से गुजरता तो साहबी ढंग के कपड़े पहिने रहता था इसलिए उससे बात करने के लिये खड़ा न होता, केवल देख भर लेता कि वह मजे में है। दो अवसरों पर कुछ जरूरी सन्देश देने के लिए ही वहां खड़ा भी हुआ। खड़ा होने का बहाना यह किया कि मोटर साइकिल के इंजन में पानी भरना आवश्यक है। देहाती बेचारे यह नहीं जानते थे कि मोटर के इंजन की तरह, मोटर साइकिल के इंजन में पानी नहीं भरा जाता। उस में पानी के लिए कोई स्थान ही नहीं होता। मैं मोटर साइकिल के आगे लगे 'कारबाइड' लैम्प में पानी भरवा लेता था। साधारणतः मैं इन्द्रपाल के यहां लाला लोगों जैसी पोशाक में ही जाता था। मुझे साहब की पोशाक में देख इन्द्रपाल के भक्तों ने कभी पहिचानने की चेष्टा नहीं की। साधारणतः

लोग कपड़े और व्यवहार ही देखते हैं चेहरे नहीं । हमारा अपना भाव ही हमें सतर्क किए रहता है ।

इन्द्रपाल को लगभग कोई तीन सप्ताह तेहखंड की प्याऊ में सब कष्टों के बीच रख कर भी यह न बताया गया था कि उसे वहां क्या करना था । यह सावधानी इसलिए थी कि इन्द्रपाल स्थानीय संकटों से ऊब कर चल दें तो उसे रहस्य बताना व्यर्थ होगा । इन्द्रपाल ने क्रान्तिकारियों के योग्य दृढ़ता और निष्ठा का परिचय दिया । सब योजना तैयार थी । हमारे सूत्रों से यह भी पता लग चुका था कि वाइसराय अक्टूबर के दूसरे हफ्ते में बम्बई जा रहे हैं । चार-पांच दिन बाद वहाँ से चौबीस अक्टूबर को लौटेंगे । सब संयोग जुट जाने पर काम को कर डालने का निश्चय कर लिया गया ।

वाइसराय की गाड़ी के नीचे बम का विस्फोट कौन करेगा, यह निश्चय करने में अब विलंब नहीं किया जा सकता था । उस आदमी के नाप की फौजी वर्दी तुरन्त बनवा लेनी चाहिए थी । विस्फोट स्वयं करने के लिए जितने तर्क मैंने दिए उन का सार यही था कि मेरी अपेक्षा दल के लिए भगवती भाई का अधिक दिन बचे रहना उपयोगी होगा । उन्हों ने एक नया तर्क पेश किया—"मेरे लिए काम कर सकने में सब से बड़ी अड़चन जयचन्द्र द्वारा मेरे विरुद्ध किया गया प्रचार है । यदि तुम यह काम करते हुए मारे गए, जिस की पूरी आशा है, तो मेरे लिए यह एक और कलंक बन जायगा कि मैंने तुम्हें भेज कर मरवा दिया !"

इस रोज़ बहस में जरा गरमा-गरमी हो गई । कुछ झुंझला कर मैंने उत्तर दिया—"क्या बचकानी दलीलें देते हो ? ऐसा मूर्ख कौन है जो यह विश्वास कर लेगा कि सी० आई० डी० के आदमी ने वाइसराय की ट्रेन के नीचे बम चलवा दिया ? सी० आई० डी० का काम बम चलवाना नही. ऐसी घटना के पूर्व ही घटना की योजना को पकड़वा देना है ।" भगवती भाई मुस्करा दिये और मुझे बाहों में लेकर बोले—"यार, तुझ से पार पाना मुश्किल है !" उसी समय हम लोग नई दिल्ली 'कनाट-सरकस' में गये । मेरे लिये खाकी जीन की फौजी अफ़सर की वर्दी का नाप दे दिया गया । सब तैयारी हो चुकी थी, हम लोगों ने निश्चय किया था कि भगवती भाई एक बार फिर कानपुर जाकर गणेशशंकरजी विद्यार्थी द्वारा आज़ाद से सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा करें ।

अभिप्राय था कि हमारी योजना या प्रयत्न को एक व्यक्तिगत चीज़ न समझ ली जाय। इस घटना को हिसप्रस की ओर से सरकारी दमन का विरोध माना जाय। हिसप्रस के कमाण्डर-इन-चीफ़ (आज़ाद) के नाम से इस अवसर पर घोषणा प्रकाशित हो। कानपुर में भगवती भाई को झांसी में आज़ाद के सूत्र साथी सदाशिवराव के भाई शंकर-राव का पता मिल गया। वे झांसी पहुँचे। वहाँ पता लगा कि आज़ाद गवालियर मे थे और दल के साथी और आज़ाद आर्थिक कठिनाई के कारण बहुत परेशान थे। भगवती भाई ने आज़ाद को संदेश भिजवाया कि पंजाब और दिल्ली मे स्थिति उतनी ख़राब नहीं। वहां साथियों के लिये शरण का और कुछ रुपये का भी प्रबन्ध हो सकता है। हम लोग आज़ाद से आवश्यक परामर्श के लिये मिलना चाहते हैं और फिलहाल सहायता के लिये पांच सौ रूपया तुरन्त ही दे सकेंगे। उत्तर आने में कुछ समय लगना आवश्यक था। चार दिन बाद फिर कानपुर आ कर पता लेने की बात कह वे दिल्ली लौट आये। दल और आज़ाद से सम्बन्ध हो जाने की हमें पूरी आशा हो गई।

कुछ दिन पहले मैं इन्द्रपाल से कह आया था कि विशेष रूप से सतर्क रहकर, रात में दस बजे से पाँच बजे तक जाग कर यह पता ले कि दिल्ली या मथुरा से किस किस समय सवारी या माल की गाड़ियां आती-जाती हैं। वह उस स्थान पर कई दिन रह चुका था। रेल लाइन की देख भाल और मरम्मत के सम्बन्ध में सभी बातें जान गया था। उन दिनों रात में ग्यारह बजे के बाद से सुबह पाँच बजे तक उस लाइन पर सवारी गाड़ियाँ न गुजरतीं थीं। वह समय माल गाड़ियों के आने-जाने का था। एक दिन इन्द्रपाल को सावधान कर दिया कि वह आने वाली रात किसी मुसाफिर को अपने पास टिक जाने के लिए उत्साहित न करे। एक दो बार कुछ मुसाफिर उस के यहाँ टिक चुके थे। उस से कहा कि आज रात मैं देहली से बम लाऊंगा। हम दोनों मिल कर उन्हें रेलवे लाइन के नीचे दबा देंगे। यह जान कर कि हम लोग वाइसराय की गाड़ी के नीचे बम-विस्फोट कर रहे है, इन्द्रपाल को बहुत उत्साह हुआ। प्रसन्नता से चमकती आँखों और गद्‌गद् स्वर से बोला—"यार, यह काम हो जाय तो मैंने जो कष्ट सहा है उसे कुछ भी न समझूँगा।"

उसी रात साढ़ेनौ बजे के लगभग पीतल के बड़े-बड़े लोटों में बने दो बम और रेल-लाइन के नीचे कंकड़-पत्थर कूटकर कड़ी बना दी गई

जमीन को खोद सकने के लिए खुरपी, एक बड़ा ड्रिल (लोहे में छेद करने का बरमा), एक छोटा सम्बल आदि बाइसिकिल के पीछे बाँध मैं दिल्ली से तेहखण्ड पहुंचा। क्वार की रातें थीं। पूर्णिमा ही रही हो या उस से एक दो दिन आगे पीछे। इन्द्रपाल टूटी हुई सराय के सामने कुएँ की जगत पर चाँदनी में बैठा मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। उसे बम दिखलाकर कहा—"इन्हें लाइन के नीचे गाड़ना है।"

बम देख कर इन्द्रपाल के नेत्र उत्साह से चमक उठे। तुरन्त लाइन पर जाकर काम आरम्भ कर देना उचित न था। ग्यारह बजे तक दो गाड़ियां लाइन पर से गुजरने वाली थीं। उसके बाद चार घन्टे तक हम निर्विघ्न लाइन के नीचे गढ़े खोद कर बमों को जमा कर गढ़े पाट देने और लाइन के नीचे बिछी रोड़ी को फिर जैसा का तैसा बना देने का काम कर सकते थे। रात में तीन बजे के बाद पहिले दो मालगाड़ियाँ ही गुजरती थीं। यह भी ख्याल था कि यदि मसाले को शान्त बनाने में कोई भूल-चूक रह गई हो तो सवारियों की जान का नुकसान न होकर मालगाड़ी पर ही चोट पड़ें, व्यर्थ की नर-हत्या न हो।

लगभग सवा या डेढ़ घन्टे प्रतीक्षा का समय काटने के लिये हम दोनों ने टूटी हुई सराय की छत पर जाकर बैठने का निश्चय किया। साइकिल को सराय के भीतर के घने अंधेरे में छिपा दिया। छत पर बैठने के लिये इन्द्रपाल का कम्बल और बाघचर्म ले लिया। बमों की गठरी को भी साथ ऊपर लेते गये। सराय के कोने पर दीवार गिरी हुई थी इसलिये ऊपर चढ़ जाने में कोई कठिनाई न हुई।

खरीफ की फसल कट चुकी थी। सराय के चारों ओर दूर-दूर तक सब ओर सूखे खेत खाली पड़े थे। आस पास की रेतीली जमीन चांदनी में खूब चमक रही थी। सूखी घास या छोटी-मोटी झाड़ियां जमीन के रंग में ही मिल गई थीं। सड़क के किनारे के बड़े-बड़े वृक्ष भी सराय की छत पर से चांदनी में चमचमाते पौधे से ही जान पड़ रहे थे। वृक्षों की छाया उनके नीचे ही सिमटी हुई थी। सराय के एक ओर समीप तारकोल बिछी काली सड़क और दूसरी ओर लगभग तीन सौ क़दम पर रेल लाइन की फौलादी लकीर भी चांदनी में चमचमा रही थीं। शीतल उज्वल चांदनी भर पूर बरस रही थी। केवल टिटिहरी की आवाज़ ही कभी-कभी सुनसान रात की चुप्पी को भंग कर जाती थी। मैं और इन्द्रपाल छत पर बेतकल्लुफी में बैठ समय बिताने

के लिए गप्प लड़ाने लगे। ख़याल था कि यहां कोई हमारी बात नहीं सुन सकता है। बातें भी क्या थीं, लाहौर की घटनाओं को याद कर कर बड़े ज़ोर-ज़ोर से दोनों कह-कहे लगा रहे थे। हंसी में लोट-पोट हो होकर दोनों की आंखों में पानी भर भर आता था।

"कौन है ? ख़बरदार ! हाथ न हिलाना !"—कड़े और ऊंचे स्वर में डपट सुनाई दी। आवाज़ टूटी हुई दीवार से सराय की छत पर चढ़ने के रास्ते से सुनाई दी थी। उस ओर दृष्टि गई तो देखा, मुंडेर से ऊपर सिर उठाये पर वर्दी पहिने पुलिस के दो सिपाही हम लोगों को अपनी बन्दूकों का निशाना बनाए हैं। इस हालत से घबराहट कैसे न होती ? मेरी कमर में पिस्तौल तो ज़रूर था लेकिन हाथ हिलाने का अवसर तो चाहिये था।

इन्द्रपाल मुझे कोहनी से धीमे से संकेत कर बोला—"पिस्तौल !" अपने हाथ से उस के हाथ पर चुप रहने का इशारा कर मैंने बहुत भोले ढंग से सिपाहियों को सम्बोधन किया—"आप कौन लोग हो हजूर ?"

"तुम कौन हो ?"—सिपाहियों ने और कड़े स्वर में डांटा। उन का उत्तर इन्द्रपाल ने बहुत धैर्य से दिया—"हम साधू महात्मा है। महीना दिन से यहां धूनी लगा रहे हैं। तुम लोग किसे ढूढ़ रहे हो ?"

सिपाहियों ने मेरी ओर संकेत किया—"यह कौन है ?"

"एक भगत है।"—इन्द्रपाल ने उत्तर दिया।

मैं हाथ जोड़ गिड़गिड़ाकर कोहनियां और कन्धे जनख़ों की तरह हिलाते हुए बोला—"हुजूर माई-बाप हो। हम तो मथुराजी के बनिये हैं।" बात करते-करते मैं खड़ा भी हो गया और कूद सकने का अवसर देखने के लिए सराय के नीचे आस-पास ज़मीन पर नज़र डाली। देखा. नीचे दस बारह आदमी लाठियाँ लिये प्याऊ को घेरे खड़े थे। अब पिस्तौल की अपेक्षा पहले बात बना सकने पर ही भरोसा उचित था।

इन्द्रपाल ने सिपाहियों को फिर सम्बोधन किया—"हम साधू महात्मा हैं। आप लोग सरकार हैं। आपको साधू महात्मा को सताना नहीं चाहिए। आप लोगों का काम हमारी रच्छा करना है।

सिपाहियों ने उसे उत्तर दिया—"बाबा, हम तुम्हें कुछ नहीं कहते।

तुम राम का नाम जपो, धूनी रमाओ लेकिन चोर-डाकू तुम्हारे यहां आयेंगे, उन्हें तो पकड़ना ही पड़ेगा।"

"यह चोर, डाकू हैं ?"—इन्द्रपाल ने बहुत विस्मय प्रकट किया और फिर मुझे सम्बोधन किया—"क्यों बे तू चोर-डाकू है ?"

मैं फिर हाथ जोड़ गिड़गिड़ाया—"नहीं बाबा जी, हम तो मथुरा जी के बनिये हैं। सच्ची जानों बाबाजी, जमुना मैया की सौगन्द ! चल के मथुरा जी में हमारे मुहल्ले में पूछ लो। सब लोग जानते हैं कि हम बड़े ग़रीब बनिये हैं।"

इन्द्रपाल ने करुणा प्रकट कर मेरी सिफारिश की—"यह साला क्या चोर-डाकू होगा ?"

आगे बढ़ आये सिपाहियों में से एक ने उसे उत्तर दिया—"बाबाजी तुम क्या जानों ? यह बम का गोला फेंकने वाला बदमास है। बन रहा है। आजकल ऐसे बहुत से बदमास फ़रार हैं।"

"अपने हाथ तो दिखा बे !"—सिपाही ने हुक्म दिया।

रोहतक में बम का मसाला बनाते समय पिक्रिक एसिड के स्पर्श से हाथों पर जो लाली चढ़ गई थी वह अभी तक शेष थी। सिपाही छत की मुंडेर लांघ कर हम लोगों के बिलकुल समीप आ गये थे। बार बार हाथ जोड़ते समय मेरे हाथों की लाली आगे बढ़े सिपाही को दिखाई दे गई होगी। उन में से एक अब भी बन्दूक को हमारी ओर ही किये बगल में थामे था परन्तु दूसरे ने बन्दूक का कुन्दा छत पर टेक दिया था।

सिपाही ने प्रश्न किया—"तू बम का गोला नहीं फेंकता तो हाथ लाल कैसे हैं ?" सिपाही के उस ज्ञान का आधार या स्रोत क्या था, मैं नहीं समझ सका। उन दिनों कुछ समय पूर्व बहुत जगह क्रान्तिकारी लोग गिरफ्तार हुए थे। सम्भव है उनमें से किसी के हाथ पिक्रिक एसिड के प्रभाव से लाल रहे हों या किसी मुख़बिर ने यह भेद दे दिया हो। फरारों को पकड़ने के लिए ऐसी पहिचानें पुलिस के अधिकारी साधारण सिपाहियों को बताते रहे होंगे। हाथों की लाली के कारण ही किसी व्यक्ति का सम्बन्ध बम बनाने के काम से समझ लेना चाहे न्याय संगत न रहा हो परन्तु मेरे बारे में तो यह अनुमान ठीक ही था। सिपाही के ऐसा ठीक अनुमान कर लेने पर मुझे कुछ

घबराहट भी अवश्य हुई परन्तु अवसर पिस्तौल पर भरोसा करने का न था इसलिए और भी अधिक गिड़गिड़ाहट से हाथ जोड़ विनती की—"हजूर, भौजाई ने मेंहदी पिसवाई थी, मैंने भी तनिकसी लगा ली। विस से हाथ लाल हो रहे हैं।"

इन्द्रपाल ने क्रोध में फटकारा—"अबे हीजड़े सरम नहीं आती? मर्द होके (बयरबानी औरत) के लिए मेंहदी पीसता है। मैंने रुआसे हो उत्तर दिया—'महाराज क्या करें गरीब आदमी हूँ। भौजाई का कहना नहीं करूं तो भैया मार कर घर से निकाल देते हैं। एक बार तो उठाकर मूसल मार दिया था। मैंने सिर आगे बढ़ाकर दिखाया—"यह देखो!"

सिपाहियों को मेरे व्यवहार से मेरे निकम्मे और कमजोर आदमी होने का विश्वास हो गया। उन्हों ने फिर डाँटा--"········साले मेहंदी लगाई है कि सुलफा भी पीता है?"–उसने मेरा हाथ सूंघ कर देखा। और भी गिड़गिड़ाकर मैंने स्वीकार किया—"महाराज कभी-कभी ऐसे ही साधू-सन्त मन्दिर में आकर बैठते हैं तो साध-संगत में पी लेता हूँ।"

सिपाहियों ने वास्तविकता भांपने के लिए मेरे घर-बार, कारोबार और मां-बाप का ब्यौरा पूछना शुरू किया। मैंने गिड़गिड़ाते और आखें पोंछते-पोंछते बहुत ब्यौरे से अपनी करुणा कथा सुना दी कि रंग जी के मंदिर से आगे नीचे वाली गली में सिद्धे साहू की लाल हवेली के पास मकान है। मां-बाप दोनों ही बचपन मे मर गये थे। दो बड़े भाई हैं। मुझे कुछ हिस्सा नहीं देते। बड़ी भौजाई बहुत तंग करती है। सो मैं कारोबार ढूंढ़ने दिल्ली जा रहा था। इन बाबा जी का बड़ा जस सुना था कि बड़ा अच्छा सट्टा बता देते हैं सो दर्सन के तंई ठहर गया।"

सिपाही 'भारतीय-दंडविधान' की सभी धारायें रटे हुये था। बोला—"तुझे तो थाने ले जाना ही पड़ेगा। कैसे छोड़ सकते हैं? सुलफा तू पीता है, सट्टा तू करता है और फिर तू बिना कारोबार के घूम रहा है। दफा १०६ में भी तेरा चालान करना पड़ेगा। तू हमारे साथ बदरपुर के थाने में चल। कोई तेरी जमानत देने वाला होगा तो छुड़ा ले जायगा।" एक सिपाही ने अपनी कमर में लिपटी हथकड़ी और जंजीर खोल मेरी ओर बढ़ाई—"चल, हाथ बढ़ा!"

मैं छिटक कर, भय दिखाते हुए उससे दूर हट गया। सिपाही की इस दृढ़ता से मेरा धैर्य हिलने लगा था। आंसू पोंछने के लिए धोती का छोर उठाने के बहाने एकबार पिस्तौल को छू भी चुका था परन्तु एक बार फिर यत्न किया और गिड़गिड़ाकर बोला—"हजूर, थाने में जाने से मेरी जात बिगड़ जायगी। फिर भौजाई घर में नहीं आने देगी। बिरादरी बाहर कर देगी। मेरी सगाई टूट जायगी।"

सिपाही मुझसे भद्दे मजाक करने लगे। मेरे बयान की सचाई जाँचने के लिए उन्होंने मेरे घरबार और कारोबार के सम्बन्ध में दुबारा प्रश्न किये कि मैं कहीं उखड़ता तो नहीं ? भला इस कसौटी पर क्या उखड़ता ? अक्षरशः पहिले ही बयानों को दोहराता गया और अपनी जात बिगड़ जाने और सगाई टूट जाने के प्रति कातरता प्रकट करता रहा।

सिपाहियों को मज़ाक करते देख इन्द्रपाल ने एक सिपाही को सम्बोधन किया—"जमादार जी ज़रा सुनो तो" और सिपाही के कन्धे पर हाथ रख उसे टूटी मुंडेर की तरफ ले गया। मैंने समझा कि इन्द्रपाल ने दोनों सिपाहियों को अलग-अलग कर दिया है और वह उस सिपाही को मुंडेर के पास ले जा कर नीचे धकेल बन्दूक छीन लेगा। उसी समय मैं अपने समीप खड़े सिपाही की बन्दूक एक हाथ से थाम पिस्तौल दिखा बन्दूक उससे छीन लूंगा। मैं सांस रोके इन्द्रपाल के पहल करने की प्रतीक्षा में था परन्तु उस की ओर से ऐसा संकेत न दिखाई दिया बल्कि मेरे समीप लौट वह बोला—"निकाल बे क्या है तेरे पास ? जमादार साहब के हवाले कर ; नहीं तो साले थाने में जाकर कोड़े लगेंगे, ज़ेल में मर जायगा।"—मैंने अपनी जेब से दस रुपये का एक नोट, एक रुपया और चवन्नी निकाल कर इन्द्रपाल को दे दिया।

इसी समय सिपाही की दृष्टि मेरे जेब में लगे फाउन्टेनपेन पर पड़ी। उस ओर संकेत कर उस ने पूछा—"तू तो बड़ा गंवार बनता है, यह कलम कहाँ से लिया ?" सिपाही के इस प्रश्न से मैं ज़रूर सतर्क हुआ क्योंकि मेरे अब तक के बयान में और फाउन्टेनपेन में कुछ सामन्जस्य नहीं हो सकता था। यह कलम किसी परिचित से झटका हुआ 'वाटरमैन फाउनटेनपेन' था परन्तु मैं 'बना' ही रहा और उत्तर दिया—"यह तो हजूर हिंडोलों के मेले में साढ़े नौ आने में लिया था।" कलम वास्तव में उस समय भी दस-बारह रुपये का रहा होगा। यही अच्छा हुआ कि सिपाही का ख्याल बदल गया था। विद्रूप से मुस्करा कर उसने

कहा—"साला पढ़ना लिखना जानता नहीं, कलम लगाकर बड़ा मुन्शी बना हुआ है ।"

इन्द्रपाल ने सिपाहियों से सौदा कर लिया। ग्यारह रुपये उन्हें दे चवन्नी यह कह कर स्वयं रख ली कि इससे बाबा जी दम लगायेंगे। सहसा मुझे ख्याल आया कि कुछ भी पास न रह जाने पर भी मुझे घबराते न देख कहीं सिपाहियों को फिर संदेह न हो ! इसलिये हाथ जोड़ विनय की—"महाराज दिल्ली तो अभी बीस कोस है। मोटर के किराये की ताईं एक रुपया लौटा दो। सुबह दो पैसे का चबेना भी ले लूंगा, पानी पीने के लिये ।" सिपाहियों ने विश्वास में एक रुपया तो लौटा ही दिया और साथ ही नसीहत भी कर दी कि अगर फिर कोई सिपाही रास्ते में टोके तो न रात की घटना उस से कहूँ और न यह बताऊं कि मथुरा से आ रहा हूँ बल्कि यह कहूँ कि देवी के मेले से लौट-रहा हूँ। समीप ही कहीं देवी के स्थान पर मेला था, उस का पता भी उन्हों ने बता दिया। सिपाही सन्तुष्ट हो प्याऊ को घेरे हुए लट्ठ बंद देहातियों को ले चले गये।

इन लोगों के चले जाने पर हमने आश्वासन का सांस लिया और फिर हंसने लगे—"अच्छे फंस गए थे और बचे भी खूब !" समझा कि सिपाहियों का ध्यान हमारी ओर आकर्षित होने का कारण रात के सन्नाटे में छत पर बैठ कर जोर से हो-हो कर के हंसना था। उन दिनों दिल्ली से मथुरा की सड़क पर कई डकैतियां हो चुकी थीं इसलिए बदरपुर के थाने से दो सशस्त्र सिपाही दिल्ली के समीप निजामुद्दीन की चौकी की ओर चक्कर लगाने जाते थे और दो निजामुद्दीन से बदरपुर की ओर आते थे। सड़क पर जहां इन लोगों का मेल हो जाता वहां से अपने-अपने थानों की ओर लौट जाते। इन्द्रपाल ने और बातें, रेल लाइन के समीप कुत्तों के भौंकने की सब जगहें है या खेतों में रखवाली के लिये जगह-जगह किसानों के सोने की जगहें तो मुझे बता दी थीं परन्तु सिपाहियों की रौंद की चर्चा करना भूल गया था। सड़क पर डाकुओं की सम्भावना मालूम हो जाने पर भी साइकिल पर अकेले आने-जाने में मुझे कभी हिचक नहीं हुई।

सिपाहियों के इस झगड़े में लाइन पर से गुजरने वाली दोनों गाड़ियाँ निकल गई थीं। हम लोग जमीन खोदने का सामान और बम कन्धों पर लाद लाइन पर पहुँचे। यहाँ लाइन के नीचे एक छोटे

से नाले पर पुल है। बम लगाने के लिए हम ने पुल का सिरा ही चुना। अभिप्राय था कि लाइन टूटने पर इंजन नाले की गहराई में गिरे और अधिक से अधिक नुकसान हो। लाइन के नीचे रोड़ी कुटी ज़मीन में गढ़े खोदने में काफी परिश्रम पड़ा लेकिन हम लोगों ने बम दबा दिये और सराय में लौट बमों पर से पहली गाड़ी के गुजरने की प्रतीक्षा करने लगे। कह ही चुका हूं कि तीन बजे एक मालगाड़ी गुजरती थी। जब मालगाड़ी बमों पर से धड़धड़ाती हुई गुजर गई तो हम लोगों को अच्छा मसाला बना लेने की अपनी सफलता पर पूरा विश्वास हो गया। वह रात मैंने इन्द्रपाल के साथ ही कम्बल में काटी क्यों कि उस समय दिल्ली की ओर जाने से रौंद के सिपाहियों या डाकुओं से सामना कर कोई लाभ न था। पहली रात मे तो उजली चाँदनी बड़ी प्यारी लग रही थी परन्तु फिर खूब जाडा लगने लगा। प्रातःकाल मुँह अन्धेरे ही साइकिल पर दिल्ली की ओर लौटा। इस समय बदरपुर, मदनपुरा और तेहखण्ड के बहुत से दूध बेचने वाले साइकिलों पर दूध लेकर दिल्ली की ओर जाते हुए सड़क पर मिलतें थे।

मकान पर लौट रात की घटना भगवती भाई को सुनाई। उन्हों ने मेरी चतुराई की प्रसंशा करने के बजाय बेपरवाही से जोर-जोर से हंसकर ध्यान आकर्षित करनें के लिए फटकार दिया और बोले, अब मुझे रात में अकेले तेहखंड नहीं जाने देंगे। वहाँ अभी काफी काम शेष था। एक बड़ा बम और गाड़ना था और लाइन से सड़क के समीप किसी झाड़ी तक बिजली का तार लगाना भी शेष था। अगले दिन हमने तीसरा बम भी तैयार कर लिया और बिजली के तार भी, लगभग ढाई सौ ग़ज़ ख़रीद लिए। भगवती भाई को मैंने समझाने की बहुत कोशिश की कि हम लोग अब असावधानी न करेंगे। तुम साथ न चलो। कोई भी आकस्मिक बात हो सकती है। कम से कम एक आदमी का सुरक्षित बचे रहना आवश्यक है। साथ चलने के लिए उन्हें अनुत्साहित करने का एक कारण यह भी था कि उन के नाक या गले में कुछ कष्ट था। शायद "एडीनायडस" में कुछ ख़राबी थी। इस कारण वे खूँ-खूं करते रहते थे और उनके साँस लेने का शब्द भी दूर तक सुनाई पड़ता था। दस और बारह के बीच में सराय के पास से रौंद के गुजरने का पता लग चुका था। रौंद वालों के कुछ देर तक इन्द्रपाल के समीप आ बैठने की सम्भावना भी थी। ऐसे समय प्याऊ में चुपचाप दुबक कर छिपना

पड़ता और भगवती की खूं-खूं और साँस की आवाज़ संकट का कारण बन जाती।

हम लोग रात दस बजे इन्द्रपाल के पास पहुँच गये। कुछ सर्दी होने के कारण इन्द्रपाल धूनी के समीप ही बैठा था। उसने बताया कि रौंद करने वाले सिपाही साढ़े दस के करीब सराय के पास से निज़ामुद्दीन की तरफ़ जाते हैं और साढ़े ग्यारह बदरपुर की ओर लौटते हैं। प्रायः लौटते समय ही वे इन्द्रपाल के पास चिलम पीने के लिये कुछ एक-मिनट के लिये बैठते हैं। सराय की एक कोठरी बिल्कुल साबित थी। इसी में इन्द्रपाल की धूनी थी। साथ की कोठरी का कुछ भाग गिरा हुआ था और कोठरी मलबे से भरी हुई थी। सिपाहियों के आने से पहिले ही हम लोगों ने टार्च लेकर उस कोठरी में बैठने की जगह देख ली। सड़क पर बदरपुर की ओर से आने वाली रौंद के जूतों की आहट की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ देर में आहट सुनाई दी। मैं और भगवती टूटी हुई कोठरी के कोने में जाकर दुबक गये। साइकिलें भी यहीं छिपा कर रख ली थीं। दोनों के बायें हाथों में टार्च और दायें हाथों में पिस्तौल तैयार थीं। रौंद की आहट समीप आती जा रही थी। सिपाहियों के बिल्कुल समीप आ जाने पर उनकी पुकार सुनाई दी—"जय हो बाबा जी, बम भोलेनाथ! मजे में हो?"

"आओ आओ, जमादार बैठो, एक चिलम हो जाय।"—इन्द्रपाल ने पुकार का उत्तर स्वागत भरे स्वर में दिया।

"लौटते हुए बैठेंगे बाबा जी"—उत्तर दे सिपाही चले गये।

जान में जान आई। सोचा, अभी तो बला टली परन्तु लौटते समय तो सिपाहियों को वहीं बैठना था। सोच रहा था कि कहीं भगवती भाई की 'सूं-सूं' और खूं-खूं' कोई रंग न लाये। सिपाहियों के कुछ दूर चले जाने पर इन्द्रपाल धीमे से बोला—"दम साधे रहो बेटा!" क्रोध दिखा मैंने उसे फटकारा—"कमबख्त, अपने ताऊ को चिलम पिलाने के लिए क्यों बुला लिया?"

"तुम चन्डालों ने मुझे बहुत दुख दिया है।"—इन्द्रपाल ने उत्तर दिया—"दस-पंद्रह मिनट तुम भी तो मज़ा देखो!" हम लोग बाहर आ धूनी के पास बैठ गये और सिपाहियों के लौटने की आहट की प्रतीक्षा करने लगे। आहट पा फिर दुबक गये।

लौटते समय सिपाही इन्द्रपाल के पास आ बैठे। आवाज़ से मैं पहचान गया कि इन में से एक वही सिपाही था जिसने मुझसे दस रुपये झटक लिये थे। इस सिपाही का नाम भी इन्द्रपाल ने मालूम कर लिया था और अपने बयान में इसका नाम नम्बर अदालत में बता दिया था। जमादार साहब अदालत में पेश भी किये गये थे और बाद में रिश्वतख़ोरी के अपराध में बरख़ास्त भी हो गये थे। यह सिपाही बदरपुर के थाने का था और इसका नम्बर ग्यारह था।

इन्द्रपाल की गिरफ्तारी के बाद उसके सरकारी गवाह बन कर बयान देने पर तेहखंड के इलाके के बहुत से आदमी, जिन का कि इन्द्रपाल ने अपने बयान में ज़िक्र किया था, उस के बयानों की सचाई के प्रमाण-स्वरूप अदालत में पेश किये गये थे। इन में तेहखंड के रेल फाटक का चौकीदार चेतराम भी था जो इन्द्रपाल के आशीर्वाद से गाड़ी के नीचे जानवर कट जाने के अपराध में केवल आठ आने जुर्माना देकर छूट गया था। अदालत में भी इन्द्रपाल को देख कर इन लोगों ने उसे 'बाबाजी' कह कर ही सम्बोधन किया और उस के चरण-स्पर्श कर यह शिकायत भी कर दी कि—बाबाजी बहुत पिटवाया तुम ने पुलिस से! इन्द्रपाल के बयानों के अतिरिक्त और भेद जानने के लिये पुलिस ने इन सभी लोगों की खूब ठुकाई की थी। यह जान लेने पर भी कि इन्द्रपाल केवल बना हुआ 'बाबाजी' था, इन लोगों का विश्वास उस पर से कम न हुआ। वे उसे करामाती बाबाजी ही समझते रहे। विश्वास के प्रभाव का इस से अधिक विकट उदाहरण और क्या हो सकता है?

हाँ, सिपाही लौटकर इन्द्रपाल की धूनी पर आ बैठे। चिलम भरते हुए बातें होने लगीं। ग्यारह नम्बर का सिपाही बोला—"उस रोज़ तो बाबाजी तुम्हारी किरपा हो गई, दस रुपल्ली जेब में पड़ गये। देखते हो जाड़ा सिर पर आ रहा है। बाल-बच्चों के लिए रजाई-दुलाई का इन्तज़ाम करना ही होगा। ख्याल रखियेगा, आप के असीरबाद से कोई और शिकार वैसा ही मिल जाय तो भगवान की दया हो! नहीं तो अब की जाड़ा कटना मुस्किल है। ख्याल रखियो, बस किसी आते-जाते को टिका लीजियो। आपके दम लगाने का भी इंतजाम हो जायगा।" इन्द्रपाल ने उसे सान्त्वना दी—"बहुत अच्छा, ख्याल रखूंगा। भगवान ऐसे ही सब को पालते हैं!" "तुम्हारे चरनों की किरपा है"—सिपाही ने इन्द्रपाल को धन्यवाद दिया। सिपाही उठ कर चले गये।

भगवती भाई पन्द्रह-बीस मिनट ऐसे दम साधे बैठे रहे मानो सांस ही न ले रहे हों, सूं-सूँ, खूं-खूं सब बन्द । साढ़े ग्यारह बजे के बाद हम लोगों ने तीसरा बम भी रेल की लाइन के नीचे गाड़ दिया और ढ़ाई सौ गज़ तार लाइन से ले कर सड़क के समीप झाड़ियों तक दबा दिया। रात सराय में बैठकर बितायी। अब तीन-चार दिन की ही बात थी परन्तु यह तीन-चार दिन इन्द्रपाल के लिये बहुत सतर्कता के थे। उसे यह देखते रहना था कि लाइन पर से गाड़ियों के गुजरते समय धमाके के कारण पत्थरों के टुकड़े खिसक कर पीतल के बम दिखाई न देने लगें। चौबीस तारीख सुबह छः बजे ही वाइसराय की गाड़ी दिल्ली लौटने वाली थी। उसी समय विस्फोट करने का निश्चय था। इन्द्रपाल को संकट में न डालने के लिये तेइस तारीख़ की संध्या ही उसे दिल्ली लिवा ले जाने का निश्चय कर लिया गया था।

सब तैयारी होने पर भगवती भाई दूसरी बार कानपुर २१ अक्टूबर को गये थे। हृदय में बहुत उत्साह था। रेल लाइन के नीचे बम दब चुके थे। भैया आजाद से सम्पर्क हो जाने की पूरी आशा थी। विचार था कि अब बड़े उत्साह से व्यापक रूप में काम शुरू होगा। वाइसराय की गाड़ी के नीचे बम विस्फोट होने के बाद दिल्ली में पुलिस की चौकसी बहुत बढ़ जाने की आशंका थी। इसलिए हम लोगों ने दिल्ली में एक मकान 'बंगस के पुल' के पास भी ले लिया था। सोचा था, आवश्यकता होने पर नया बाज़ार की अपनी विश्वास जमाई हुई जगह आज़ाद को अपना गांव का सम्बन्धी बताकर दे देंगे और हम दोनों में से एक इस मकान में आ टिकेगा। कानपुर जाते समम भगवती भाई वाइसराय की घटना के लिए पहिले से जमा कर रखे हुए रुपये में से पाँच सौ भैया आजाद के लिए लेते गये।

कानपुर में गणेशशंकर जी विद्यार्थी से स्पष्ट उत्तर मिला कि—"आज़ाद का मन तुम्हारी ओर से साफ़ नहीं है। वह न सम्पर्क चाहता है न सहायता।" भगवती भाई का ही दिल था जो इस पर भी मुस्करा दिये और बोले—"संदेह किसी दिन स्वयं ही दूर हो जायगा। भैया (आज़ाद) तक यह सन्देश पहुंचा दीजिए कि वे अभी से निरापद स्थान का प्रबन्ध कर लें। चौबीस तारीख़ की सुबह हम लोग वाइसराय की गाड़ी के नीचे बम विस्फोट करेंगे। इसके बाद पुलिस मामूली सन्देह पर भी तलाशियाँ और गिरफ्तारियां शुरू कर देगी। वे असावधानी

में न रहें।" स्वर्गीय विद्यार्थीजी वाइसराय पर आक्रमण की बात सुन चौंक उठे। उन्हों ने यह काम स्थगित रखने का अनुरोध किया। भगवती भाई ने स्थिति बताई कि हमारी सब तैयारी हो चुकी है। घटना स्थगित कर देने से हमारी बहुत हानि होगी।

विद्यार्थीजी ने आग्रह किया—"तुम्हारी जो भी त्तति हो! हमारा विचार है कि इस समय तुम्हारा यह काम देशहित के विरुद्ध होगा। वाइसराय २४ अक्टूबर को देहली पहुंच कर उपनिवेशों के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की नीति में सुधार की घोषणा करने वाले हैं। इस घोषणा में भारत के लिए भी महत्त्वपूर्ण बात होगी। वाइसराय पर आक्रमण हो जाने से भारत में यह घोषणा न हो सकेगी। तुम्हारे इस काम से कांग्रेस के प्रयत्नों पर पानी फिर जायगा और तुम जनता की सहानुभूति खो बैठोगे।"—भगवती भाई के अनेक तर्क करने पर भी विद्यार्थी जी अपनी बात पर अटल रहे। विद्यार्थी जी की सम्मति की अवहेलना नहीं की जा सकती थी। अपने व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा-वादी होकर भी वे राजनैतिक दृष्टिकोण से क्रान्तिकारी थे। क्रांति कारियों को उनसे सदा ही सहायता और सहानुभूति मिलती रहती थी।

२२ अक्टूबर संध्या समय कानपुर से लौट भगवती भाई ने बताया कि वाइसराय पर आक्रमण स्थगित कर देना होगा। उनकी बात से मैं बहुत झुंझलाया। यह भी कहा कि विद्यार्थीजी की बात मानने के लिए हम बाध्य नहीं। वे कांग्रेस के दृष्टिकोण से बात सोचते हैं और हमारे मार्ग में रोड़ा अटका रहे हैं। परन्तु लाचारी थी, भगवती भाई घटना स्थगित कर देने का वचन विद्यार्थीजी को दे आये थे।

२२ अक्टूबर की सन्ध्या में अंधेरा हो जाने के काफी देर बाद साइकिल पर इन्द्रपाल के यहां पहुँचा और घटना के स्थगित कर देने का समाचार सुनाया। इन्द्रपाल को भी यह अच्छा न लगा। उस ने पूछा, घटना कब तक के लिए स्थगित की गई है? उसे बताया कि अब नवम्बर के चौथे सप्ताह में ही अवसर हो सकता है।

उस सर्दी में वहाँ निष्प्रयोजन पड़े रहना इन्द्रपाल को व्यर्थ जंचा। उस की बात ठीक ही थी। इन्द्रपाल की अनुपस्थिति में लाइन के नीचे बमों के उपेक्षित पड़े रहने से, गाड़ी गुजरते समय पत्थर के टुकड़ों के हिल-हिल कर बमों के उघड़ जाने की आशंका थी। यही उचित जान पड़ा कि बम और बिजली के तार निकाल लिए जायं, समय आने पर

उन्हें फिर जमा दिया जायगा। आधी रात में हम दोनों ने मिल कर बम और तार उखाड़ लिये और ज़मीन बराबर कर दी। मैं सुबह कुछ सामान ले दिल्ली लौट गया। उसी संध्या भगवती भाई एक तांगे पर तेहखंड गये। वे खाकी जीन का एक-कोट पायजामा और तुर्की टोपी साथ लेते गये थे। इन्द्रपाल को सामान सहित उन्हों ने बङ्गल के पुल पर पहुँचा दिया। मैं वहाँ उस की प्रतीक्षा कर रहा था।

भगवती भाई ने मकान मालिक को अपना परिचय पारसी के रूप में देकर यह मकान 'जमशेद जी रुस्तम' के नाम से किराये लिया था। इस मकान में इन्द्रपाल ने हमारे मुसलमान खानसामा के रूप में प्रवेश किया। मुसलमानों का ही मुहल्ला था। इन्द्रपाल ने अपना नाम अब्दुल्ला बताया। लोग हमारी बाबत उस से पूछ-ताछ करते तो वह उत्तर दे देता—पारसी लोग हैं, इनका दीन-मजहब क्या? होटल में खाते हैं। मेमसाहब अभी मंसूरी में ही हैं। जब तक वे न आ जाएं, घर कैसे बस सकता है?

यहां रात बिताने पर इन्द्रपाल को कई दिन बाद हम लोगों से खुलकर बातचीत करने का मौका मिला और वह हम लोगों को अपना तेहखंड का अनुभव सुनाने लगा। भिक्षाटन के सिलसिले में तेहखंड और मदनपुर आदि गाँवों में घूमते समय इन्द्रपाल को पता लगा कि उस इलाके में दो फसलें लगातार खराब हो जाने के कारण किसानों की दशा बहुत दयनीय थी। वे लोग लगान तो क्या दे पाते, उन्हें कई-कई दिन के फाके लग रहे थे। इलाके के लोगों ने ज़िला-अधिकारियों के पास सहायता के लिए प्रार्थना पत्र भेजे। कई अफसर बड़े बड़े खेमे और अर्दली लेकर जांच पड़ताल के लिये आये। परिणाम स्वरूप ग़रीब किसानों की सहायता के लिये सरकार ने एक योजना स्वीकार कर ली। यह योजना थी, उस इलाके के एक पुराने टूट चुके बांध की मरम्मत कराने की। किसान लोग लगभग सूर्योदय से सूर्यास्त तक वहां मिट्टी खोदने और ढोने का काम करते और उन्हें दो आना मजदूरी मिल जाती।

यह बात सुनाते समय इन्द्रपाल की आंखें लाल हो गईं। गाली देकर वह बोला—"·······दुअन्नी-दुअन्नी मजदूरी में किसानों को जितनी रक़म बांटी जायगी, उससे कहीं ज्यादा तो उन गांवों में जांच-पड़ताल करने के लिए जाने वाले अफसरों के दौरों पर खर्च हो

गई होगी ! यह अफसर स्वयं दो हजार रुपये माहवार पाकर भी रिश्वत लेकर पेट भरते हैं और अपनी तनख्वाह के लिये लगान देने वाले किसानों के लिये दो आना मज़दूरी ही काफी समझते हैं। सरकार की नज़र में उसकी हुकूमत चलाकर सरकार की रक्षा करने वाले ऐसे अफ़सरों की ही कीमत है। ऐसी व्यवस्था में ग़रीबों का क्या भला हो सकता है ? उस का आवेश बढ़ता ही गया, वह बोला—"मेरा ख्याल है कि पार्टी को बाबू भाई (भगवतीचरण) और तुम्हारी बहुत ज़रूरत है। इसीलिये पार्टी ने वाइसराय पर आक्रमण करना स्थगित कर दिया है। यह काम तुम मुझे करने दो। यही ज्यादा अच्छा भी होगा। मुझे बचाने के लिये इन्तज़ाम करने की भी ज़रूरत नहीं। मैं बम चला कर वहीं गिरफ्तार हो जाऊंगा। अदालत में भगतसिंह की तरह बयान दूंगा कि मैंने यह काम तेहखन्ड के और देश भर के किसानों पर किये जाने वाले अन्याय के विरोध में किया है।" इन्द्रपाल अब बेकार था। उस ने आवश्यकता दिया होने पर लौट आयेगा और अपने भाइयों की सुध लेने की आवश्यकता लाहौर चला गया।

कुछ ईसाइयों और ग़रीब एंगलों इण्डियन लोगों का पड़ोस होने के कारण उस मकान में हम लोग कुछ रईसी ढंग से रहते थे। बाहर तो सूट पहिनकर आते-जाते थे ही, घर के भीतर भी स्लीपिंग सूट (साहब लोगों के रात को पहिनने के धारीदार कपड़े) पहने रहते थे। दो चार चाइयां, दो मूढ़े, बाँस की बुनी हुई मेज़ और उन दिनों एक रुपए दस आने में मिलने वाला चाय पीने का जापानी सेट भी आंगन में दिखाई देता रहता था। इस ढंग को रईसी इसलिए कह रहा हूं कि हमारे नया बाजार के मकान में भी हम प्रकट में सूट और साफ कपड़े दिखाते रहते थे परन्तु भीतर एक ही चटाई थी। गरमियों में मैं और भगवती भाई अपनी-अपनी चादर या धोती ओढ़ एक ही चटाई पर सो जाते थे। जाड़ा आने पर एक कम्बल में निर्वाह कठिन हो गया। आरम्भ में तो दोनों बिलकुल सीधे लेट न्यायपूर्वक आधा-आधा कम्बल ले लेते परन्तु किसी के करवट लेते ही दूसरा उघड़ जाता। दूसरा कम्बल लाना फिज़ूल-खर्ची जान पड़ रही थी क्यों कि हमारे विचार में घटना में अधिक विलम्ब न था। उस के बाद तो एक ही आदमी के शेष रह जाने की आशा थी। एक दिन उपाय सूझ गया। एक आदमी ने कम्बल ले लिया और दूसरे ने दो चादरों के बीच में अखबार के कागज की तह जमा कर

ओढ़ ली। कागज की इस रजाई में सर्दी बिलकुल मालूम न होती थी। भगवती भाई छः रुपए में एक वायलिन भी खरीद लाये थे। उन के मितव्ययी स्वभाव के विचार से यह अच्छी-खासी विलासिता समझी जा सकती थी। वे प्रायः ही मोढ़े पर बैठ, बांस की मेज़ पर पांव टिका, वाइलिन पर 'चीं-चीं, चूं चूं' करते रहते। मैं कोई बात कहता तो सुन न पाते। मैं खीझ उठता तो उनका ध्यान टूटता और बताने लगते कि फलानी रांगिनी की लय निकालने की चेष्टा कर रहे थे।

मैं संगीत की सूक्ष्मता न तब समझता था न अब तक ही समझ पाया हूँ। भगवती भाई अधमुँदी आंखों से मुझे समझाने की चेष्टा करने लगते कि स्वरों के प्रभाव से मस्तिष्क में सुख का संवेदन उत्पन्न कर सकने की अपरिमित सम्भावना है......। वे स्वभाव से ही कला के इन तत्त्वों, कविता-संगीत की ओर बहुत अनुरक्त थे। यों बहुत व्यवहारिक प्रकृति होते हुए भी कुछ पहलुओं पर उन की भावुकता बेहिसाब लुढ़क पड़ती थी। सभी व्यक्तियों के मानसिक तराजू में कहीं न कहीं कुछ पासंग रहता ही है।

तेहखण्ड में रेल लाइन के नीचे से बम उखाड़ कर इन्द्रपाल को लाहौर लौटा दिया गया था। वाइसराय पर आक्रमण का अवसर फिर आने में लगभग एक मास प्रतीक्षा करना आवश्यक था। हम लोगों की पूरी शक्ति संगठन के सूत्र बढ़ाने में लगी हुई थी परन्तु वाइसराय की गाड़ी पर आक्रमण में पूर्ण सफलता पा सकने की बात हमारे ध्यान से हट नहीं गई। इस सम्बन्ध में दो बातें सदा ही मेरे ध्यान में घूमती रहतीं। एक तो थी वही, घटनास्थल से लौटते समय रेल-फाटक के बंद पाने की कठिनाई; दूसरी बात थी कि गाड़ी के नीचे बमों में बिजली के तार से आँच देने के लिए हमने जो बैटरी ख़रीदी थी, उसके पड़े-पड़े कमज़ोर हो जाने की आशंका।

घटनास्थल से लौटते समय बन्द रेल-फाटक से बचने के लिए यह ख्याल आया कि दिल्ली की ओर न लौट बदरपुर या मथुरा की तरफ भी तो जाया जा सकता है। यह देखने के लिए कि उस ओर कितनी दूर तक सड़क पर जाने के बाद किसी छोटे-मोटे शहर में छिप जाने का अवसर हो सकेगा, मैं एक सन्ध्या घटना के लिए निश्चित स्थान से चौदह-पन्द्रह मील मथुरा की ओर आगे चला गया। सड़क तो मथुरा तक चली जा रही थी परन्तु गाँव या कस्बे सभी बहुत छोटे थे। कोई

ऐसी जगह न थी जहाँ छिपा जा सकता। सोचा, यदि घटना के बाद दिल्ली न लौटना हो तो मोटरसाइकिल पर सीधे मथुरा तक जाने की हिम्मत होनी चाहिए। उस समय साइकिल में इतना पेट्रोल नहीं था कि मथुरा पहुँच जाता। भगवती भाई से कह कर भी नहीं आया था, इसलिए लौट पड़ा।

लौटते समय सूर्यास्त के पश्चात् थोड़ी देर अन्धेरा रह कर चन्द्रमा निकल आया और फीकी-फीकी चाँदनी फैल गयी। सड़क बिल्कुल सुनसान थी। प्रकाश इतना काफी था कि मोटर साइकिल पर लैम्प जलाये बिना सड़क दूर तक साफ दिखाई दे रही थी। बीच-बीच में केवल सड़क किनारे के वृक्षों की छाया के काले धब्बे सड़क पर बिछे थे जिन्हें मैं चाल की तेज उड़ान में पार करता जा रहा था।

सहसा मैंने अपने आपको सड़क किनारे धूल में पड़ा पाया। मोटर-साइकिल कुछ दूर पड़ी अब भी तेजी से फट-फट कर रही थी। समझ में आया कि मैं गिर पड़ा हूं। मेरे समीप ही वृक्ष की अंधेरी छाया में ईंटों से भरी एक बैल-गाड़ी उलटी हुई खड़ी थी। छाया के अंधेरे में यह बैल-गाड़ी मुझे दिखाई न दी। खूब तेज चाल में मोटर साइकिल इससे टकरा गई थी। मैं उछल कर एक ओर जा पड़ा और मोटर-साइकिल दूसरी तरफ। जोर के झटके से मेरा मस्तिष्क कुछ पल के लिये बेकाम हो गया होगा इसलिये घटना को समझ न सका। सुध आने पर उठा। मोटर साइकिल का पेट्रोल रोक इंजन बन्द किया। यत्न किया कि फिर साइकिल को सीधा कर उस पर चढ़ दिल्ली की तरफ चल दूं। मोटर साइकिल का अगला पहिया चोट से बहुत टेढ़ा हो गया था और टायर-ट्यूब फट गये थे। उसे ढकेला भी नहीं जा सकता था। अवसर की बात, इसी समय मथुरा की ओर से एक मोटर-लारी आ गई। इस मोटर-लारी को मैं कुछ ही देर पहिले अपनी तेजी में पीछे छोड़ आया था। अब उसे इशारे से खड़ा किया। मोटर-साइकिल गाड़ी पर लादा गया और मैं भी सवार हो गया।

चोट काफी आई थी। रगड़ से पतलून फटकर बांया घुटना छिल गया। कोट की बाईं आस्तीन भी रगड़ से उड़ कर हथेली की पीठ, कलाई और कोहनी तक जगह-जगह चमड़ी उतर कर खून बह रहा था। मैंने रुमाल और कमीज का कपड़ा फाड़-फाड़ कर इन घावों को बांध खून रोकने की चेष्टा की। रात अधिक न हुई थी। देल्ली में मोटर साइकिल को मरम्मत

की एक दुकान पर छोड़ बंगस के पुल के मकान पर पहुँचा। भगवती भाई घर पर ही थे। किसी डाक्टर के यहा जा, कोई भी काल्पनिक नाम बताकर मरहम-पट्टी कराई जा सकती थी परन्तु उस दिन हम लोगों की जेबों मे बहुत ही कम पैसे थे। भय यह था कि घाव पक न जाय। स्टोव जलाने के लिये स्पिरिट मौजूद थी। सोचा कि फिलहाल घावों को स्पिरिट लगाकर साफ कर दिया जाय; वैसा ही किया भी। चमड़ी उतरे हुये बड़े-बड़े कई घावों में एक साथ स्पिरिट लगा देने से कैसा लगेगा, यह अनुभव की ही बात है। भगवती रूई से स्पिरिट लगाते जा रहे थे और मैं आंखें बन्द किये, दांत भींचे पड़ा था कि मुंह से आवाज़ न निकले। मुंह से आवाज़ तो न निकली परन्तु इस पीड़ा से या घावों से काफी तेज बुखार हो गया। सोचा कि कुछ न कुछ इलाज होना ही चाहिए। बुखार के कारण सन्देह हुआ कि ज़ख्मों की राह खून मे कोई विष न चला गया हो। सड़क पर लगे घावों से 'टिटेनस' हो जाने की बात कहीं पढ़ी हुई थी।

दिल्ली के हमारे सूत्रों में से एक थे 'अजमेरी दरवाजे' पर महाशय कृष्ण जी, पत्थर के कोयले के व्यापारी। उन से पुराना परिचय था। सन १९२१—२२ में बहिन प्रेमवती के पिता लायलपुर मे रूई धुनने के एक कारखाने में मैनेजर थे। उस समय कृष्ण जी ने वहाँ कुछ दिन क्लर्क की नौकरी की थी। वहीं उनसे परिचय हुआ था। इस परिचय का आधार कृष्ण जी की आर्यसमाज के सुधारवादी कार्य के प्रति सहानुभूति थी। दिल्ली में वे स्वतंत्र व्यापारी थे। यहाँ पहुँचने पर मैंने कृष्णजी से परिचय प्राप्त कर लिया और भगवती भाई का परिचय भी करा दिया। कृष्ण जी और उन की पत्नी दोनों को ही हम लोगों से सहानुभूति थी। उन के यहां जब चाहे भोजन या रात बिता लेने की सुविधा हो सकती थी। आवश्यकता पड़ने पर दस-पन्द्रह रूपये भी मिल जाते। कृष्ण जी राजनैतिक विचार से परम गांधीवादी कांग्रेसी, खद्दरधारी और हिंसात्मक क्रान्ति को देश के लिये हानिकारक समझने वाले। मित्रता के कारण वे हम लोगों को व्यक्तिगत सहायता देने के लिये तो तैयार रहते परन्तु अपने विश्वास के कारण हमारे उद्देश्य में सहायता न देना चाहते थे। रूपया देने पर जिरह करके जान लेना चाहते कि उन का पैसा हमारी आवश्यकता पूर्ति में ही लगेगा, हिंसा में नहीं। कृष्ण जी से एक आशंका सदा बनी रहती थी। उन से झूठ

बहुत बोलना पड़ता था। वे हर एक बात के बारे में प्रश्न और जिरह करके अपना कौतूहल पूर्ण करना चाहते थे। उन पर पूरा विश्वास होते हुये भी अपने कार्य-क्रम के भेद बताते फिरना हम लोगों को पसंद न था। "नहीं बतायेंगे"—कह देना भी सम्भव न था। इसलिये झूठ बोलने की लाचारी हो जाती। कई बार झूठ पकड़ा भी जाता; तब हंस कर टाल देते। एक दिन कृष्णाजी पूछ बैठे—"तुम कभी सच भी बोलते हो?" "हां"—मैं ने उत्तर दिया—"जब झूठ बोलने से कम न चले!"

जख्मी हालत में उनके यहाँ पहुँचने पर यही कठिनाई थी कि वे घटना का पूरा ब्यौरा पूछेंगे; पूछेंगे कि मोटरसाइकिल कहाँ से ली, उस जगह जाने की आवश्यकता और कारण क्या था? लेकिन किसी दूसरी जगह इलाज की वैसी व्यवस्था हो नहीं सकती थी। भगवती भाई ने मुझे उन्हीं के यहाँ पहुँचा दिया। कृष्णा जी अपने अत्यन्त विश्वस्त मित्र होमियोपैथ डाक्टर युद्धवीरसिंह जी को बुला लाये। डाक्टर साहब उन दिनों एक धर्मार्थ औषधालय में काफी समय देते थे। उनकी अपनी प्रेक्टिस बहुत अधिक न थी। आजकल डाक्टर युद्धवीरसिंह दिल्ली कांग्रेस कमेटी के प्रधान हैं। डाक्टर साहब ने ज्वर के उपचार के लिए खाने की दवाई दी। जख्मों का इलाज भी दवाई के पानी से धो कर और मल्हम लगा कर कायदे से होने लगा। यह काम श्रीमती कृष्णाजी के भाई ध्रुवदेव करते थे। ध्रुवजी उन दिनों नई-दिल्ली में फोटोग्राफी की दुकान करते थे। ध्रुवजी से हम लोगों की जो मित्रता हुई, उसका परिणाम उन्हें बाद में पुलिस के हाथों पड़ी मारपीट के रूप में काफी भुगतना पड़ा।

इन चोटों के कारण आठ-दस दिन खाट पर पड़े-पड़े बार-बार ख्याल आता था कि लाइन के नीचे दबे बमों को बिजली के तार द्वारा आँच पहुँचाने का हमारा इन्तजाम बहुत सन्तोषजनक नहीं है। हो सकता है कि हमारी बैटरी पुरानी होकर कमजोर पड़ जाय। हमें यह मालूम भी न हो और घटना के अवसर पर उस में से उचित रूप से चिन्गारी न निकल सके! बार बार यही चिन्ता करने से जो उपाय सूझा उसके लिए बाद में मुझे और दल को खूब परेशानी भुगतनी पड़ी।

× × ×

छः

सूत्रों का विस्तार

बैटरी और बिजली के संबन्ध में मैं अपने छोटे भाई धर्मपाल से सलाह लेना चाहता था। इस के लिये एक पत्र इन्द्रपाल की मारफत लिखा गया। धर्मपाल ने सन १६२८ में मेट्रिक की परीक्षा पास की थी। उस समय क्रान्ति और दल के काम में उलझ जाने के कारण मैं स्थायी रूप से परिवारिक खर्च और भाई की कालेज की शिक्षा का खर्च चलाने की स्थिति में नहीं था। इसलिये भाई को बिजली का काम सीख कर उसी समय स्वावलम्बी बन जाने के लिये कह दिया। उसने लाहौर में बिजली का काम सिखाने वाले एक स्कूल से बिजली के काम का सर्टी-फिकेट भी ले लिया था और लाहौर के बिजली घर में अप्रैन्टिसी शुरू कर दी थी। मुझे यह आशा थी कि मेरे घर छोड़ देने पर वह अपना और मां का निर्वाह कर लेगा परन्तु उसने मेरा ही उदाहरण अपनाया। बिजली का काम कर पेट पालने के बजाय वह लाहौर षड़यत्र केस के बन्दियों की 'डिफेन्स-कमेटी' का काम करने लगा। लाहौर में हम लोगों के संदेशों और सुझाव से चलने वाले गुप्त क्रान्तिकारी काम में वह धन्वन्तरी, एहसानइलाही और सुखदेवराज आदि का साथी बन गया और बहिन प्रेमवती और दुर्गा भाभी के सेक्रेटरी का काम भी करने लगा।

हंसराज 'वायरलेस'

धर्मपाल ने इन्द्रपाल की मारफत सलाह दी कि उसे तो लाहौर की खुफिया पुलिस हरदम घेरे रहती है। लाहौर के कामों में उलझे रहने के कारण उसका बाहर निकलना भी कठिन है। यह आशंका भी थी कि लम्बी यात्रा में पुलिस उसे पहचान कर पीछा कर ले तो हम लोग भी खतरे में पड़ जायंगे। उसने सलाह दी कि बिजली के बारे में हंसराज 'वायरलेस' से सहायता लेना ज्यादा उपयोगी होगा। हंसराज पर

पुलिस को संदेह नहीं। वह शायद कोई ऐसा प्रबन्ध कर दे कि बिना बिजली के तार लगाये ही काम हो जाये।

वायरलेस हंसराज को मैं सन १९२४, २५ या उस से भी पहिले से जानता था। वह धर्मपाल का समवयस्क और सहपाठी था। उस की माता और हमारी माता में भी सहेलपना था। लायलपुर के 'डिगलिस-पुरा' मुहल्ले की एक ही गली में आमने-सामने हम लोग रहते थे। धर्मपाल ने इन्द्रपाल को हंसराज का पता दे दिया। इन्द्रपाल उसे दिल्ली में हमारे मकान पर ले आया। हंसराज के सामने समस्या रखी गई। उस ने समझाया कि हम तारों और बेटरियों के चक्कर में व्यर्थ उलझे हैं। वह छोटे-छोटे यन्त्र बना देगा जिन्हें बमों में जोड़ दिया जायगा। बैटरी के साथ भी वैसा ही यन्त्र लगा रहेगा। बैटरी और बमों का सम्बन्ध बिजली के तारों से जोड़ने की जरूरत न रहेगी। इस प्रकार बम दबे हुए स्थान और बैटरी की दूरी कम-ज्यादा होने से भी कोई अन्तर न पड़ेगा। बैटरी के कमजोर हो जाने की भी कोई चिन्ता नहीं। वह चार-पांच आने लागत से जितनी बैटरियां चाहे बना सकता है।

हंसराज की बात से इन्द्रपाल, भगवती भाई और मैं फूले न समाये। इस यन्त्र की आशा में हम ने अपनी पूरी योजना ही बदल डाली। अब किसी भी साथी की जान खतरे में डालने की जरूरत न जान पड़ी। तेहखन्ड में रेल लाइन के बाईं ओर मथुरा जाने वाली सड़क है और दाहिनी ओर कुछ खेतों और छोटे से गांव के परे ऊँचा पठार दूर तक चला गया है। पठार पर से रेल की लाइन स्पष्ट दिखाई देती है। हम लोगों ने कल्पना कर ली कि कोई आदमी बढ़िया दूरबीन ले कर उस पठार पर बैठ जायगा और वाइसराय की गाड़ी बम लगे स्थान पर पहुंचती देख दो मील दूर ही से बटन दबा कर बम विस्फोट कर गाड़ी को उड़ा देगा। सिर पर आशंका लिये बिना इतना बड़ा काम कर सकने की सम्भावना से तो उत्साह बढ़ा ही लेकिन उससे अधिक उत्साह इस बात से हुआ कि ब्रिटिश सरकार बम विस्फोट का रहस्य किसी तरह न जान कर चकरा जायेगी। हम घटना के बाद ब्रिटिश सरकार को यह धमकी दे सकेंगे कि हमारे पास इतनी शक्ति और सामर्थ्य है कि तुम्हारी सम्पूर्ण सैन्य शक्ति को मिट्टी में मिला सकते हैं। देश की जनता जो केवल निशस्त्र होने के कारण ही अनुत्साहित है, विदेश सरकार का विरोध करने का उत्साह अनुभव करेगी।

यह प्रयत्न सार्वजनिक सशस्त्र क्रान्ति की पहली पुकार होगी। हम आतंकवादी अवस्था से सार्वजनिक क्रान्ति की ओर बढ़ जायंगे।

हंसराज ने हमारा उत्साह और भी बढ़ाया। उसने समझाया कि पठार पर भी किसी आदमी के जाने की ज़रूरत नहीं। वह ऐसा यन्त्र बना देगा कि घटना के लिए निश्चित स्थान के आस-पास यन्त्र को रख देना ही पर्याप्त होगा। इस यन्त्र में एक शीशा रहेगा जिसमें रेलवे लाइन का प्रतिबिम्ब पड़ता रहेगा। इस यन्त्र से बेतार की बिजली (वायरलेस) द्वारा सम्बन्ध रखने वाला दूसरा यन्त्र हमारे दिल्ली के मकान में रहेगा। हम दिल्ली में बैठे-बैठे घटना के लिए निश्चित स्थान पर पहुँचती वाइसराय की गाड़ी का प्रतिबिंब अपने यन्त्र में देख सकेंगे और वहीं से बटन दबाकर गाड़ी को उड़ा दिया जा सकेगा।

उन दिनों एक स्थान से दूसरे स्थान पर (टेलीवियन) द्वारा चित्र भेजने के यन्त्रों केआविष्कार की खबरें हम पत्रों में पढ़ा करते थे। हंसराज ने हमें विश्वास दिलाया कि उसने वायरलेस द्वारा टेलीवियन का आविष्कार भी अपने स्वतन्त्र तरीक़े से कर लिया है। उसने इस प्रकार के परीक्षणों के कई प्रदर्शन भी जगह-जगह किए थे। इन्द्रपाल उसका ऐसा एक प्रदर्शन लाहौर 'एस० पी० एस० के०' हाल में देख चुका था। मैंने स्वयं अपने भाई धर्मपाल से उस के ऐसे चमत्कारपूर्ण आविष्कारों की अनेक कहानियाँ सुनी थीं इसलिए अविश्वास का कोई कारण न था। हंसराज के आविष्कारों के कुछ परीक्षण हमे बेहूदा भी जॅचते थे, उदाहरणतः मृतात्माओं को बुलाकर बात करना, बिजली की सुई से व्यक्तियों की प्रेम भावना भाप लेना, बिजली और 'मैसमरेजिम' को एक साथ मिला देना आदि। परन्तु बिजली से सम्बन्ध रखने वाले कुछ ऐसे परीक्षण थे जिन्हें देख हम अपनी सफलता की आशा से मुग्ध हो गये, यह न सोचा कि यह जादूगिरी है या विज्ञान का आविष्कार?

हंसराज ने कुछ परीक्षण हमारे सामने भी किये। उसने एक छोटी शीशी में ऐसा श्वेत द्रव पदार्थ बनाया जिसे जेबी बैटरी पर लगे छोटे बल्ब से एक गज़ की दूरी पर रखने से ही बल्ब स्वयं जल जाता था या बल्ब को सावधानी से तोड़ उसके एलेमेन्ट पर 'गनकॉटन' रख देने से उसमें आग लगजाती थी। अर्थात, बिजली के दोनो तारों का सम्बन्ध हाथ छुये बिना, वातावरण में हो जाने वाले द्रव पदार्थ के प्रभाव से ही, हो जाता था। हम लोगों ने इन वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार

सिद्धान्तों के सम्बन्ध में बातचीत कर समझना चाहा। हंसराज इस के लिए तैयार न था। उसने साफ कह दिया कि वह अपने आविष्कार का रहस्य अभी हमें बताने के लिये तैयार नहीं। हम लोगों ने उस की शर्त स्वीकार कर ली कि सिद्धान्त और रहस्य की हमें आवश्यकता नहीं वह आवश्यकतानुसार समय-समय पर इस प्रकार के यन्त्र बना कर देता रहे हम उसके आविष्कार का रहस्य जानने की चेष्टा नहीं करेंगे और न उसे किसी प्रकार के खतरे में डालने की बात सोचेंगे। इन चमत्कारों की वास्तविकता समझने में हमें काफी समय लगा। मजा यह है कि हंसराज वही परीक्षण दिखाकर आ भी 'वायर लेस' बना हुआ है। वह अब तक चर्खे, रेडियो आदि के जाने कितने आविष्कार कर चुका है। एक बार उसने हाथ का ऐसा चर्खा बना लेने की घोषणा की थी कि दस तकले एक साथ सूत कात सकते थे। उसने हमें बताया कि चर्खा गांधी जी को दिखाने के लिये ले जा रहा था रेल में सामान के साथ चोरी हो गया।

हंसराज के दिये हुए आश्वासनों के आधार पर हमारी कल्पना शेख़चिल्ली की सी उड़ानें भरने लगी। हमने देहली सेक्रेटेरियेट और पुलिस के दफ्तरों में आग लगा कर सरकार का काम चलाना असम्भव कर देने की बात सोचली। हंसराज ने कहा—"वाइसराय की गाड़ी उड़ाने की घटना के लिये आवश्यक यन्त्र वह दिल्ली में नहीं बना सकेगा। उसके सब औजार और सामान लायलपुर में हैं। हम लोग उसके लिये अलग मकान किराये पर ले देने और सब सुविधायें दिल्ली में ही पहुँचाने के लिये तैयार थे परन्तु उसने लायलपुर जाकर ही यन्त्र बना सकना सम्भव बताया। उसने हमें पूरा आश्वासन और बचन दिया कि दस दिन के भीतर पूरा सामान तैयार हो जायेगा, या तो वह स्वयं दिल्ली पहुंचा देगा या इन्द्रपाल जाकर ले आयेगा।

भैया (आज़ाद) और दल से सम्पर्क

भगवती भाई के विरुद्ध जयचन्द्र जी के दुष्प्रचार के कारण भैया आजाद का स्पष्ट उत्तर हमें मिल गया था कि वे हम से सम्बन्ध नहीं चाहते। भैया के इन्कार का अर्थ था, दल का इन्कार ! हमें भरोसा था कि वाइसराय की घटना हो जाने पर अविश्वास स्वयं दूर हो जायगा। इस बीच हम लोग अपने सूत्र फैला कर पांव जमाते रहे कि अपना पूरा संगठन और शक्ति लेकर दल में जा मिलेंगे। हम अपने आपको

दल का ही अंग मानते थे। हमें इस बात का पूरा विश्वास था कि दिल्ली में मुख्य दल के सूत्र भी वर्तमान हैं। कुछ ऐसे सांझे सूत्र थे जिनके द्वारा दिल्ली में दल के लोगों का पता लगाने का यत्न किया जा सकता था परन्तु हमने सोच-समझ कर ऐसा न किया ताकि दल के लोगों को हम दोनों की नीयत के प्रति संदेह न हो जाये। उस अवस्था में ऐसे यत्न का ऐसा अभिप्राय भी समझा जा सकता था।

सहारनपुर में गिरफ्तार जयदेव कपूर का दिल्ली शाखा से सम्बन्ध था। दिल्ली शाखा के दूसरे साथी काशीराम और जयदेव कपूर का पुराना पारिवारिक और भाई चारे का सम्बन्ध था। दोनों ही हरदोई के निवासी थे और कालेज में पढ़ते समय दिल्ली मे यमुना किनारे रामस्वरूप की धर्मशाला के एक ही कमरे में रहते थे। काशीराम के प्रति पुलिस को अभी कोई सन्देह न था। वह कपूर की सफ़ाई की व्यवस्था जानने और जेल में उस से मुलाकात करने के लिए लाहौर गया। वहाँ उसे जयदेव से भगवतीचरण के सम्बन्ध में भगतसिंह के विचार मालूम हुए। लाहौर में उसने दुर्गा भाबी का व्यवहार देखा और परिचय भी पाया। एक आवश्यक संदेश हम लोगों तक पहुँचाने के लिए उसे दिल्ली में हम लोगों से मिल सकने का सूत्र भी मालूम हो गया। उस समय दिल्ली प्रान्त के संगठन का उत्तरदायित्व कैलाशपति पर था। कैलाशपति लाहौर में मेरे मकान पर ठहर चुका था। काशीराम से उसे यह भी विश्वास हो गया कि भगवतीचरण के विरुद्ध सी० आई० डी० होने का झूठा प्रचार वैमनस्य के ही कारण है। काशीराम और हमारे दिल्ली के सूत्र द्वारा हमारा सम्बन्ध उससे हो गया। भैया आज़ाद ने लाहौर जेल की बातें ठीक-ठीक जानने के लिए अपने भरोसे के साथी विश्वनाथ वैशम्पायन 'बच्चन' को ग्वालियर से लाहौर भेजा था। लौटते समय वह भी दिल्ली में कैलाशपति से मिला। बच्चन ने भी कैलाशपति का सन्देह दूर कर किया। हम लोगों ने "भैया" (आज़ाद) से मिलने की इच्छा प्रकट की और उसने मिला देने का आश्वासन दिया।

कैलाशपति का नाम क्रान्तिकारी मुक़द्दमों के खास बदनाम मुखबिरों में से है। मुझे कैलाशपति को बहुत निकट से देखने-जानने का अवसर मिला है। मैंने उस के दोनों ही रूप देखे हैं इसलिए उसके चरित्र की चर्चा में कुछ विस्तार हो ही जायगा। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि काकोरी-षड्यन्त्र के बाद दल के पुनः संगठन में

कैलाशपति ने भी सहायता दी थी। यों तो उसमें राजनैतिक भावना और दल के प्रति सहानुभूति स्कूल में पढ़ते समय से ही थी। १६२७-२८ में भगतसिंह, सुखदेव, विजयकुमार सिनहा और आजाद द्वारा आरम्भ किए गए संगठन में भी वह सम्मिलित था। १६२८ में वह दल का सदस्य होते हुए गोरखपुर जिले में 'बरहेलगंज' के डाकखाने में रिज़र्व क्लर्क की नौकरी कर रहा था। दल उस समय विकट आर्थिक कठिनाई में था। डकैती कर सकने योग्य शक्ति न थी। उस से डाकखाने का रुपया लेकर भाग आने को कहा गया। कैलाशपति के परिवार की आर्थिक अवस्था को देखते हुए डाकखाने की सुनिश्चित नौकरी काफ़ी बड़ी चीज थी परन्तु उस ने दल की आज्ञा से नौकरी छूटने और अपने आप को जोखिम में डालने की चिन्ता न की। वह डाकखाने का तीन हज़ार दो सौ रुपया ले कानपुर भाग आया। यह रुपया दल को सौंपने से पूर्व उस में से पांचसौ रुपये साथी हलधर वाजपेयी की मारफ़त अपने घर पिता के पास भिजवा देने में भी उसे संकोच न हुआ। कर्तव्य पूरा करने की जोखिम झेलते-झेलते बीच में चोरी भी कर जाने की घटना कैलाशपति का चरित्र समझने में काफी सहायक होगी।

गोरखपुर की इस डकैती के कुछ दिन बाद ही कैलाशपति लाहौर में मेरे साथ मच्छीहट्टे में रहा था। उसका कद काफ़ी छोटा था, लगभग पांच फुट ही रहा होगा। रंग काला, हालांकि वह अपने आप को सांवला ही कहता था। शरीर बहुत सूखा सा। कुछ लम्बा सा चेहरा। गाल धँसे हुए लेकिन गालों की हड्डियाँ उभरी हुईं। उसका नाम ही 'कालीचरण' पड़ गया था। लाहौर में और,उस समय तक दिल्ली में भी, उस के रहने-सहने का ढङ्ग अपने प्रति बहुत बेपरवाही का था। भगतसिंह और सुखदेव उस की ओर कुछ उपेक्षा का सा व्यवहार करते थे। उन की रुखाई और उपेक्षा की शिकायत भी उस ने दल में की थी। भगतसिंह का सौन्दर्य के प्रति आकर्षण और असुन्दर के प्रति विरक्ति इतनी प्रबल थी कि उसकी इस प्रवृत्ति से दल के साथियों में असन्तोष का कारण बन जाता था। कैलाशपति के प्रायः चुप रहने और अपने प्रति निरपेक्ष रहने से मेरे मन में उस के लिए सहानुभूति और आदर था। खास कर इसलिए कि जब मैं लाहौर में मजे से घर पर रह कर दल का केवल थोड़ा-बहुत काम ही कर रहा था वह दल के लिए घर बार छोड़ फरार हो चुका था।

दिल्ली में कैलाशपति से हमारा परिचय नवम्बर में हुआ। पहली मुलाकात के समय उसने मेरी बांह गले से पट्टी में लटकी देखकर चोट का कारण पूछा था। उन दिनों सुबह खूब सर्दी हो जाती थी। खास कर सुबह की ठण्डक में बाइसिकिल चलाने पर काफी जाड़ा लगता था। वह दिल्ली में यमुना किनारे 'न्यू हिन्दू होस्टल' से बाइसिकिल पर ठिठुरता हुआ सुबह ही हमारे यहाँ पहुंचता था। हम लोगों ने लाहौर से अपने गर्म कपड़े मंगवा लिए थे और देहली में भी हमारा सम्पर्क अच्छे खाते-पीते परिवारों से था इसलिए पहिनने के लिए आवश्यक कपड़े की तंगी न रहती थी। एक दिन उसे गर्म कपड़े के बिना ठिठुरते देख मैंने अपना स्वेटर दे दिया। दूसरे दिन उसे फिर बिना स्वेटर के देखा। मालूम हुआ कि स्वेटर उस ने दूसरे साथी को दे दिया था। अब की बार भगवती भाई ने अपना स्वेटर उतार दिया। वह कैलाशपति को काफी ढीला होने के कारण बेसुरा दीखता था। हम लोगों ने पूछा—"यदि यह पसन्द न हो तो कहीं से दूसरा ला दें?" कैलाशपति ने उपेक्षा प्रकट की—"जाड़ा ढकने से मतलब!" दो चार दिन बाद वह स्वेटर भी कैलाशपति के पास से गायब था और वह जाड़े में सिकुड़ रहा था। मालूम हुआ कि वह किसी दूसरे जरूरतमन्द साथी को दे दिया। यह था कैलाशपति का एक रूप। यथाप्रसंग दूसरे रूप का भी वर्णन करूँगा।

नवम्बर का शायद दूसरा सप्ताह था, कैलाशपति हम लोगों से तीस रुपये लेकर 'भैया' (आज़ाद) से हम लोगों का सन्बन्ध जोड़ने की व्यवस्था करने के लिए कानपुर गया। भैया को अपने विश्वस्त सूत्र बच्चन से भी हम लोगों की बाबत सब कुछ मालूम हो चुका था। कैलाशपति लौटकर हमें सन्ध्या समय 'कुदसिया-बाग़' में लिवा ले गया। यह मेरा और भगवती भाई का भैया से पहला साक्षात्कार था। हम दोनों का परिचय पा भैया ने हमें बहुत साफ़ शब्दों में सम्बोधन किया—"देखो भाई, तुम से मिलने से मैंने इनकार किया, यह सच है लेकिन बुरा मानने की बात नहीं। सब बातों का ठीक-ठीक पता तो मैं अपने आप लगा नहीं सकता। जैसा मुझे समझा दिया गया, मैंने मान लिया। अब अविश्वास दूर हो गया है तो जी-जान से हाज़िर हूँ। पिछली बातें जाने दो!" भइया के साथ एक आदमी और था। खुला गेहुँआ रंग, नाटा कद, चन्चल आँखें। वे इसे 'बच्चन' कह कर पुकारते थे। यही

था विश्वनाथ वैशम्पायन। भैया को शायद ही कभी बच्चन के बिना देखा हो। बच्चन भी बड़ी तन्मयता और तत्परता से उनकी प्रत्येक बात पूरी करता था। इसी मुलाकात में हम लोगों ने वाइसराय की गाड़ी के नीचे बम विस्फोट की योजना उन्हें बताई और कहा कि हम यह कर चुके होते केवल गणेशशंकरजी विद्यार्थी के अनुरोध से स्थगित कर देना पड़ा।

भैया ने बताया कि वे लाहौर षड़यंत्र का मुकद्दमा चलाने वाले खानबहादुर अब्दुलअजीज, मिस्टर हार्टन और खैरातनबी को गोली मारने की योजना बना रहे हैं। हम लोगों ने अपना मत दिया कि एक एक पुलिस वाले या बड़े अफसरों के पीछे अपनी शक्ति व्यय करना उचित नहीं। यह लोग रोटी के लिये सरकार की नमकहलाली कर रहे हैं। सरकार को कमजोर होता देखेंगे तो स्वयं उसका साथ छोड़ देंगे। हम वाइसराय या पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट पर एक ही मूल्य में चोट कर सकते हैं तो फिर अंग्रेजी सरकार के सब से बड़े प्रतिनिधि पर ही क्यों न हमला करें? जनता की दृष्टि में उसका मूल्य कहीं अधिक होगा। भैया हम लोगों से सहमत हो गये। उन्होंने दल की आर्थिक कठिनाई दूर करने के लिए 'मनी ऐक्शन' (डकैती) की तजवीज की और खेद प्रकट करते हुये कहा—"इस समय कहीं से भी कुछ मिल नहीं रहा है। मैंने जिन लोगों से उधार लेकर दल का काम चलाया है उन का रुपया लौटा न सकने के कारण शर्मिन्दा हूं।"

हम मनी ऐक्शन के बारे में उनसे सहमत थे। वे भी हम से सहमत हो गये कि वाइसराय का काम पहिले हो जाय तब एक अच्छी बड़ी डकैती की बात सोची जाय। भैया से पहली मुलाकात 'कुदसिया बाग' में होने के बाद हमें दिल्ली में उनके ठहरने की जगह दिखा दी गई। हम लोगों ने भी 'नया बाजार' के बगल की गली में अपना स्थान उन्हें दिखा दिया ताकि किसी भी समय आवश्यकता होने पर मिलने जुलने के लिये सूत्रों द्वारा समाचार पहुंचाने में प्रतीक्षा न करनी पड़े। भैया दिल्ली में यमुना किनारे 'न्यू हिन्दू होस्टल' के सुपरिन्टेन्डेन्ट साथी नन्दकिशोर निगम के यहां ठहरे थे। कैलाशपति स्थायी तौर पर उनके यहां ही टिका हुआ था। निगम हिन्दू कालेज में लेक्चरार और बोर्डिंग के सुपरिन्टेन्डेन्ट भी थे। उस समय दिल्ली में कैलाशपति के साथियों का मुख्य आर्थिक आधार भी वही थे।

दल की ओर से भैया ने वाइसराय की गाड़ी के नीचे विस्फोट

करने की अनुमति हमें दे दी थी। नवम्बर के अन्त में वाइसराय दिल्ली से गये और लौट भी आये परन्तु हम कुछ न कर सके। हंसराज के दिलाये आश्वासन के अनुसार जब इन्द्रपाल वायरलेस से यन्त्र लेने लायलपुर पहुंचा तो उसे कुछ न मिला। हंसराज ने असमर्थता प्रकट की—"सभी लोग और सरकार भी जानती है कि वायरलेस के यन्त्र केवल मैं ही बना सकता हूं। यदि इस काम में इन यन्त्रों का उपयोग किया जायगा तो मुझ पर सन्देह हो जायगा।"—हंसराज ने यह यन्त्र बना देने से इनकार कर एक और चीज हमारे लिए बना देने का वायदा किया। उसने कहा कि वह हमारे लिए ऐसी 'गैस' का बल्ब बना देगा जिसके प्रभाव से पांचसौ गज़ के क्षेत्र में सभी लोग बेहोश हो जायंगे। गैस द्रव पदार्थ के रूप में बल्बों में बन्द रहेगी। बल्ब टूटते ही वह पल-मात्र में वाष्प बनकर पांच सौ गज़ तक फैल जायगी। वह इस 'गैस' की 'अवरोधक' (एन्टीडोट) दवाई भी बना देगा। गैस चलाने वाला व्यक्ति अपनी जेब में 'अवरोधक' रक्खे रहेगा तो उस पर गैस का कोई प्रभाव न होगा।

हंसराज के इस 'मूर्छा-गैस' के नुसखे पर हम लोग शंका किये बिना न रह सके। भगवती बोले, कोई गैस पल भर में पाँच सौ गज़ दूर कैसे जा सकती है? मैंने हंसराज को 'वायु' (गैस) और 'लहर' (वेव) में अन्तर समझाना शुरू किया, अर्थात सुगन्ध, शब्द और बिजली की चाल में क्या अन्तर होता है। "नहीं नहीं, तुम नहीं समझते"–उसने सुनने से इनकार कर कहा—"मेरा मतलब गैस या हवा से नहीं, वेव से ही है।" उसने इन्द्रपाल की ओर संकेत किया–"इस से बात करते समय गैस कह दिया यह वेव क्या समझता? बस, वैसे ही जैसे डेढ़ गज से बिजली की लहर बैटरी तक पहुँच जाती है।"

गैस की यह बात कितनी शेखचिल्लीपने की थी, रसायन का थोड़ा बहुत ज्ञान रखने वाला कोई भी व्यक्ति समझ सकता है परन्तु विश्वास करना पड़ा क्यों कि हमने अपनी आंखों एक गज तक बिना तार के बिजली पहुँचा देने की करामात देखी ही थी। सम्भव है इस मूढ़ता का कारण अपनी जान खतरे में न डाल आसानी से वाइसराय की जान ले बहादुर बन जाने की इच्छा ही रही हो। यह सोच कर कि सर्दियों के दो-तीन महीने में वाइसराय का आना जाना कई बार होगा, हमने हंसराज की गैस के लिए प्रतीक्षा कर लेना ही उचित समझा।

"बाबा" सावरकर और जिन्ना साहब

उन दिनों प्रसिद्ध क्रान्तिकारी बैरिस्टर सावरकर के बड़े भाई 'बाबा' दिल्ली आकर "वीर अर्जुन" पत्र के कार्यालय में ठहरे थे। एक समय सावरकर बन्धु देश की स्वतंत्रता के लिये क्रान्ति के आन्दोलन के नेता ही नहीं बल्कि प्रवर्तक थे परन्तु उन दिनों उनका कार्य क्षेत्र हिन्दू महासभा बन चुका था। वे हिन्दू महासभा के काम के प्रसंग में ही दिल्ली आये थे। लड़कपन में सावरकर बन्धुओं के कार्य और साहित्य का प्रभाव मुझ पर कितना गहरा था, इस अनुमान के लिए एक ही बात काफी है कि पचीस वर्ष पूर्व पढ़ी उनकी लिखी पुस्तक 'अन्दमान की गूंज' के अनेक भावपूर्ण वाक्य मुझे आज भी याद आते रहते हैं। हम लोगों को सावरकर बन्धुओं के प्रति इतनी श्रद्धा थी कि उनका दर्शन कर लेने का अवसर चूकना न चाहते थे। सावरकर हिन्दू महासभा का कार्य अपना चुके थे परन्तु हमें विश्वास था कि हमारे उद्देश्य में उन से सहायता अवश्य मिलेगी। मैं और भगवती भाई एक साथ उनसे मिलने गये। साधारणतः मुझे किसी भी महापुरुष के चरण छूने की इच्छा नहीं होती। गांधी जी से भेंट होने पर भी मुझे ऐसी इच्छा नहीं हुई परन्तु याद है कि हम दोनों ने ही बाबा के चरण छूकर अभिवादन किया और निशंक अपना वास्तविक परिचय दे अपने उद्देश्य में सहायता मांगी। बाबा ने हमें निराश भी नहीं किया। उन्हों ने हम लोगों को कुछ दिन बाद, उन के दक्षिण में रहने पर, मिलने की बात कही।

बाबा के परामर्श के अनुसार मैं बम्बई गया। उनके बताये पते पर 'धोबीतालाब' में सावरकर बन्धुओं में सबसे छोटे डाक्टर बाल, डेन्टिस्ट को खोज बाबा का सन्देश दे उनका पता पूछा। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता बैरिस्टर सावरकर तब 'रत्नगिरि' में नजरबन्द थे। जांच-पड़ताल हुए बिना उनसे मिलने की आज्ञा न मिल सकती थी। सबसे बड़े भाई बाबा अकोला में थे। सावरकर बन्धुओं के राजनैतिक कार्यक्रम का वे नेतृत्व ही कर रहे थे। अकोला में बाबा एक छोटे मकान की दूसरी मंजिल में, किनारे की छोटी सी कोठरी में थे। कोठरी में मेज, कुर्सी या खाट नहीं थी। फ़र्श पर एक होल्डाल में उनका काले कम्बल का बिस्तरा लगा हुआ था, जैसे –रेल के प्लेटफार्म पर कुछ समय आराम कर रहे हों। बिस्तर के समीप बिना ढक्कन का एक पैकिंग का ख़ाली बक्सा आलमारी की तरह आड़ा रखा हुआ था। कुछ पुस्तकों और संक्षिप्त से सामान के

लिये यह बक्सा आलमारी का काम दे रहा था। इसी कोठरी में दूसरी ओर खूब उजले मंजे हुए पीतल के बरतन में जल रक्खा था।

दिसम्बर का आरम्भ था, आकाश में कुछ बदली भी। मैं रात गाड़ी में बिता लगभग सात बजे सुबह बाबा के यहां पहुँचा था। कुछ सर्दी मालूम हो रही थी। बाबा एक रूईदार मिर्जई पहने थे। मिर्जई का रंग कत्थई था और बटनों की जगह तनियां लगी हुई थीं। बाबा बिस्तर पर धोती पहिने बैठे थे। उनके बिस्तर के ऊपर दीवार पर कील से उन की पूरी और विचित्र पोशाक लटकी हुई थी। यह थी, एक जोधपुरी बिरचिस और काली टोपी। बिस्तर के पैताने कुछ अन्तर से झड़ा पुछा, खूब मोटा और भारी, देसी चमरौंधे जूते का जोड़ा पड़ा था। तनीदार मिर्जई, खाकी जीन की चुस्त बिरचिस, चमरौंधे जूते, और काली टोपी के पचमेल की ओर मेरा ध्यान जाये बिना न रहा।

बाबा ने बहुत वत्सल भाव से मेरा स्वागत किया। अपने बिस्तर के समीप ही मेरे बैठने के लिए बिस्तर लगा दिया। पहुँचते ही गरम पानी से हाथ-मुँह धुलवा गरम चाय पिलाई और बैठने पर कम्बल ओढ़ा दिया। वे स्वयं केवल रुईदार मिर्जई पहने, बिना कुछ ओढ़े, मेरुदण्ड को सीधा किए बैठे थे। उस समय भी उन की आयु, मेरा अनुमान है, पचास से कम क्या रही होगी। सर्दी कुछ जरूर थी परन्तु बाबा के कम्बल न लिए रहने पर मुझे कम्बल ओढ़ने में संकोच हुआ। बाबा ने आग्रह किया—"नहीं नहीं ! तुम सफर से आये हो, सर्दी ज्यादा है, ढक ओढ़कर बैठना चाहिए। मैं तो ऐसे ही रहता हूँ।" भोजन के समय भी उन्हों ने वैसे ही आग्रह और ध्यान से भोजन कराया जैसे परदेश से लौटे छोटे भाई या लड़के को कराया जाता है।

उस दिन बदली और सर्दी तो थी ही बाबा को जुकाम भी था। घर की महिला प्रति दो-ढाई घन्टे के बाद काँसे या पीतल की कटोरी में रक्खे वैसे ही गिलास में उन के लिए चाय ले आती थीं। बाबा कटोरी-गिलास मेरी ओर बढ़ा देते। मेरे "ना, ना" करने पर भी यह पेय मुझे पीना ही पड़ता। बाबा अपने लिए और मँगवा लेते। इस चाय का स्वाद चाय का न था। पूछने पर बाबा ने स्वीकार किया—"यह चाय तुलसी की पत्ती और अदरक की है। चाय पत्ती की नहीं।"

मेरा अनुमान था कि बाबा जुकाम के उपचार के लिए ऐसी चाय

पी रहे हैं परन्तु उन्हों ने बताया कि वे वैसी ही चाय पीते थे और वही गुणकारी भी होती है। कुछ संकोच से पूछा—"गुण और उपयोगिता के विचार से ही आप ऐसी चाय पीते हैं या चाय को विदेशी रिवाज़ मानकर उसके प्रति विरक्ति है ?" मेरे इस प्रश्न का कारण बाबा की विचित्र पोशाक भी थी। मुझे ऐसा जान पड़ रहा था कि सैनिक चुस्ती, मुस्तैदी के साथ साथ इस देश का पुराना रंग-रूप बनाये रखने के लिए भी बाबा का विशेष आग्रह था। इस बात का एक और भी प्रमाण देखा–

दोपहर के समय उनके उत्साही नवयुवक शिष्यों की एक मंडली अपनी व्यायामशाला की बात उन्हें सुना रही थी। बात मराठी में होने पर भी समझ में आ रहा था कि किसी फुटबाल के मैच का ज़िक्र है। फुटबाल, क्रिकेट, हाकी आदि खेलों को हम लोगों ने अंग्रेजों से सीखा है। इसलिये इन खेलों से सम्बन्ध रखने वाले पारिभाषिक अंग्रेज़ी शब्दों—सेन्टर, फारवर्ड, बैक, हाफबैक, गोल, आउट पेनल्टी आदि-आदि का ही उपयोग भी होता रहता है। यह लोग इन शब्दों से परहेज़ कर इनके संस्कृत पर्यायवाची ही उपयोग कर रहे थे। विदेशी भाषा पर निर्भर न रह अपनी भाषा को पूर्ण बनाने का प्रयत्न मुझे भला तो लगा परन्तु कुछ विचित्र भी।

चाय को विदेशी पेय या विदेशी संस्कृति का अंग समझने के मेरे प्रश्न के उत्तर में बाबा ने निस्संकोच स्वीकार किया—"चाय से विरक्ति का एक कारण उसका विदेशी रिवाज़ होना भी है। बाबा की निष्ठा और उनके त्याग के प्रति अत्यन्त श्रद्धा होने पर भी उन के सांस्कृतिक दृष्टिकोण में मुझे व्यवहारिकता और संतुलन का अभाव जान पड़ा।

बाबा की सहृदयता और स्पष्टवादिता के सन्मुख किसी पैंतरे-बाज़ी का अवसर न था। उन्हें कांग्रेसी-असहयोग और अहिंसात्मक नीति की व्यर्थता और क्रान्ति के सिद्धान्तों का पाठ पढ़ाने की भी ज़रूरत न थी। विदेशी दासता-विरोधी क्रान्ति की चेतना में वे हमारे अगुवा थे। इसलिये एकान्त पाते ही शस्त्रों, धन और सम्बन्धों के लिये सहायता का अनुरोध उनसे किया। दिल्ली में हुई बातचीत के आधार पर बाबा मेरे आने का कारण जानते ही थे।

मेरे अनुरोध से असम्मति प्रकट न कर उन्हों ने अपने कार्यक्रम या दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुये समझाया—"विदेशी दासता से राष्ट्र को मुक्त करना हमारा उद्देश्य है। राष्ट्र की मुक्ति का उद्देश्य अपनी

राष्ट्रीयता की उन्नति और रक्षा करना ही है। अंग्रेज़ी शासन के अतिरिक्त देश में दूसरा भी एक हमारा राष्ट्रीय शत्रु है जो हमारी राष्ट्रीय एकता का विरोधी है और अंग्रेज़ के पक्ष में होकर हमारे स्वतंत्रता के प्रयत्नों को विफल कर देता है। यह है मुसलमानों की अपने आपको देश के हिन्दू जन समुदाय और देश की परम्परागत् संस्कृति से पृथक समझने की भावना। प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति ही उसका प्राण और शक्ति होती है। सांस्कृतिक एकता ही राष्ट्रीय एकता का आधार होती है। विदेशी दासता के विरुद्ध हम अपनी सांस्कृतिक एकता और शक्ति के बल से ही लड़ कर स्वतंत्र हो सकते हैं। हमें पहले सांस्कृतिक शक्ति और एकता स्थापित करने के लिये इसके विरोधी शत्रुओं से स्वतंत्र होना है। इसके बिना अंग्रेज़ से लड़ना ऐसे ही है जैसे दासता के वृक्ष की जड़ को छोड़-कर पत्तों को छांटते रहना। हमें तुम्हारे उद्देश्य से पूरी सहानुभूति है परन्तु सहयोग तो तभी हो सकता हैं जब कार्य-क्रम में एकता हो।"

मेरे मौन को बाबा ने सम्भवतः सम्मति का ही संकेत समझा और बोले—"इस समय राष्ट्र के लिये सब से घातक वस्तु है जिन्ना (स्वर्गीय मुहम्मदअली जिन्ना) के नेतृत्व में मुसलमानों की भारतीय राष्ट्रीयता का विरोध कर, राष्ट्र में दूसरा राष्ट्र बनाने की नीति। जिन्ना इस नीति के प्रतीक और प्रतिनिधि हैं। यदि आप लोग इस व्यक्ति को समाप्त कर देने की जिम्मेवारी लें तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा दूर हो सकेगी। इसके लिए हम पचास हजार रुपये तक का प्रबन्ध करने की जिम्मेवारी ले सकते हैं।"

मैंने विनीत मुस्कराहट से बाबा के प्रस्ताव के प्रति असमर्थता प्रकट कर दी। हमारी उस समय की कठिन आर्थिक परिस्थिति मे पचास हज़ार रुपये की आशा मामूली बात न थी। मि० जिन्ना पर आक्रमण को केवल आर्थिक समस्या हल करने का उपाय भी समझा जा सकता था। अपने राजनैतिक उद्देश्य के लिए राजनैतिक डकैती से अथवा जाली सिक्का बना लेने में भी हमें संकोच न था। डकैती में एकाध हत्या हो जाने की सम्भावना रहती ही थी। मि० जिन्ना की राजनीति से हमें सहानुभूति नहीं विरोध ही था परन्तु साम्प्रदायिक मतभेद से हत्या करना हम लोग देशहित या सर्वसाधारण जनता के हित और एकता के विरुद्ध समझते थे। मुझे यह स्वयं अन्धसाम्प्रदायिकता ही जंची।

मैं उसी दिन सन्ध्या दिल्ली लौटने के लिए तैयार हो गया।

मेरे चलने से कुछ ही समय पूर्व एक व्यक्ति कपड़े में बंधा लम्बा सा बण्डल बाबा के पास छोड़ गया। उस के चले जाने पर बाबा बोले—"तुम इतनी दूर से आये हो। जल्दी में एक ही चीज तुम्हें दे सकता हूँ।"—वह बण्डल खोल उन्हों ने हाथ भर लम्बा एक पिस्तौल निकाला। हथियार की गढ़न और रूप देखकर मैं समझ गया कि देहाती लोहार की बनाई चीज़ है। उसमें कारतूस के बजाय नाली के छेद में गज की सहायता से बारूद और गोली-गट्टा भरना पड़ता होगा। फिर भी बाबा की ओर देखकर पूछा—"इसके कारतूस ?"

"यही तो इसकी विशेषता है।"—मुस्कराते हुए बाबा ने समझाया—"कारतूसों के लिए भटकना नहीं पड़ेगा। इसे जब चाहे भरा जा सकता है।"—बाबा को धन्यवाद दे वह बोझ उठाने से इनकार कर दिया और अपनी कमर से 'कोल्ट' पिस्तौल निकाल कर दिखाया कि हमें तो ऐसी चीजों की आवश्यकता है जिन्हें सुविधा से शरीर पर छिपाया जा सके। "जैसी तुम्हारी इच्छा।"—कुछ निराशा से बाबा बोले—"पर ऐसी विदेशी चीजें कितनी मात्रा में जुटाई जा सकेंगी ?"—चलते समय बाबा दस रुपये का एक नोट मेरे हाथ में थमाते हुए बोले—"तुम्हारा आना व्यर्थ ही हुआ। इस समय मेरे पास यही है। तुम्हारे रेल के किराए या रास्ते के भोजन-छादन में कुछ काम आयगा।"—राजनैतिक कार्यक्रम में मतभेद होते हुए भी यह बाबा की व्यक्तिगत वत्सलता का चिन्ह था और मैंने उसे आशीर्वाद के रूप में ग्रहण कर लिया।

मि० जिन्ना के सम्बन्ध में बाबा का प्रस्ताव ऐसी मामूली चीज नहीं थी कि एक बार मुस्कराकर या उस पर त्योरियाँ चढ़ाकर टाल दिया जाता। वह सम्पूर्ण राष्ट्र की राजनीति पर बहुत गहरा प्रभाव डालने वाली बात थी। उसका मतलब शायद सैकड़ों हजारों हिन्दू मुसलमानों का पारस्परिक कत्ल होता! मैं गाड़ी में रात भर इसी बात पर विचार करता रहा। देश की राष्ट्रीय एकता की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। विशेष चिन्ता की बात यह थी कि हिन्दू-मुसलमान का वैमनस्य बढ़ता ही जा रहा था। मैं और मेरे जैसे लोग जो साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को छोड़ चुके थे इस समस्या को केवल मूर्खता ही समझ रहे थे परन्तु यह समस्या हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या थी ही। मुझे यह आवश्यक नहीं जान पड़ रहा था कि धार्मिक विश्वास भेद के कारण वैमनस्य भी अवश्य हो। नौजवान-भारतसभा के प्रसंग में मैं कह ही चुका हूँ कि

हम लोग साम्प्रदायिक वैमनस्य को मिटाने के लिए लाहौर में मुसलमानों और हिन्दुओं की सभी जातियों के संयुक्त भोजों का आयोजन किया करते थे।

इसी बात पर विचार करते हुए मुझे याद आया कि हम लोगों के बचपन मे पंजाब के बड़े-बड़े शहरों में भी खाने पीने की वस्तुओं की या हलवाई की कहीं भी कोई मुसलमानों की दुकान नजर न आती थी। सभी मुसलमान निस्संकोच हिन्दुओं की दुकानों से ही अपनी आवश्यकता पूरी करते थे। मुझे यह भी याद आया कि १६२६ में उसी वर्ष, लाहौर छोड़ने से पहिले मैंने लाहौर, ग्वालमण्डी की एक गली के बाहर लगे म्युनिसिपैलिटी के नलके पर हिन्दू-मुसलमान पड़ोसियों में झगड़ा होते देखा था। झगड़े का कारण यह था कि एक हिंदू अपना घड़ा भरने से पहिले नल पर धो रहा था। उस के घड़े से कुछ छींटें समीप खड़े एक मुसलमान के घड़े पर पड़ गये। मुसलमान ने अपना घड़ा नापाक हो गया समझकर क्रोध में पटक दिया और हिन्दू का भी घड़ा तोड़ दिया। इसके बाद हिन्दू-मुसलमान पड़ोसी एक दूसरे का सिर तोड़ने लगे। यह हिन्दुओं और मुसलमानों के व्यापक वैमनस्य का प्रतीक था, या दोनों सम्प्रदायों के मनों में एक दूसरे के प्रति बैठी घृणा और ईर्षा को सन्तुष्ट करने का बहाना ही था।

एक समय था जब मुसलमान हिन्दू से छूत नहीं मानता था या घृणा नहीं करता था। हिन्दू की घृणा से अपने आत्माभिमान की रक्षा करने के लिए मुसलमान ने भी बदले में हिन्दू से घृणा करना आवश्यक समझा। हिन्दू-मुसलमानों की इस आपसी घृणा में पहल हिन्दू ने की। हिन्दू-मुसलमान के आपसी द्वेष की जिम्मेवारी जिन्ना या मुस्लिमलीग पर है या हिन्दू समाज के ऊँचे वर्ण के समझे जानेवाले लोगों पर? हिन्दू केवल विधर्मी मुसलमान से ही घृणा नहीं करते, वह अपने सहधर्मी अधिकांश हिन्दुओं को भी अछूत मानकर उससे घृणा करते हैं। हिन्दू समाज में ऊंचे वर्ण के लोगों की अपेक्षा अछूत समझे जाने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है हिन्दुओं की इस छूआ-छूत (अस्पृश्यता) में हिन्दू धार्मिक दर्शन या आध्यात्मिक सिद्धान्त काम नहीं करता। यह हिन्दू समाज की सामन्तवादी आर्थिक पद्धति या वर्णव्यवस्था का अंग है। हिन्दू समाज या भारतीय समाज के जीवन के साधनों के बदल जाने या आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन आ जाने

से छुआ-छूत की व्यवस्था स्वयं ही शिथिल होती जा रही है परन्तु लोप होने से पूर्व देश की बहुत हानि भी कर रही है।

हिन्दुत्व का धार्मिक दर्शन या आध्यात्मवाद जीव मात्र में, मनुष्य और कुत्ते तक में, एक ही आत्मा और समान जीव होने की बात कहता है परन्तु ऊंचे वर्णों के शासन में बंधे समाज को वर्ण व्यवस्था या अस्पृश्यता के चौखटों में जकड़ कर अपने शासन को मजबूत बनाये रखने में कसर नहीं छोड़ता था। इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि हिन्दू समाज में अस्पृश्यता और साधनहीनता या गरीबी सामानार्थक रही हैं। अस्पृश्यता अथवा वर्ण की हीनता साधनहीनों को शिक्षा और आर्थिक उन्नति का अवसर न देने की व्यवस्था (कानून) का ही नाम था। अपने आर्थिक अधिकारों को अपनी श्रेणी तक सीमित रखने के लिये ऊंचे वर्ण के लोग अपने मुख से प्राणीमात्र की समानता के ज्ञान की बात कहते थे परन्तु यह ज्ञान शूद्र के कानों तक जाने देना अनुचित और पाप समझते थे। शूद्र या अछूत के कान में 'ज्ञान' पहुँच जाने पर वे ज्ञान की बात कहने वाले ब्राह्मण की जीभ काटने का नियम नहीं, शूद्र के कान में गला हुआ सीसा डाल कर उसे समाप्त कर देने का विधान करते थे। अस्पृश्यता का आधार साम्प्रदायिक या धार्मिक विश्वास नहीं, बल्कि आर्थिक श्रेणी विभाजन ही था। इस देश में अस्पृश्यता मुसलमानों के आने से पूर्व ही मौजूद थी और सम्पूर्ण शोषित वर्ग अपनी आर्थिक विवशता के अनुपात में अस्पृश्य था। जिस वर्ग को जितना अप्रिय और कठिन कार्य करना पड़ता था, वह वर्ग उतना ही अधिक हीन और अस्पृश्य समझा जाता था। हिन्दू समाज की अस्पृश्यता सामन्ती युग की क्रूरशोषक व्यवस्था ही है, जिसमें आर्थिक अवसर और अधिकारों को वंश क्रम में बांध दिया गया था।

हिन्दुओं से मुसलमानों के विरोध, वैमनस्य और प्रतिद्वन्द्विता का व्यवहारिक रूप भी मुख्यतः आर्थिक संघर्ष रहा है। अंग्रेजी सरकार के शासनकाल में इस संघर्ष का क्षेत्र नौकरियों और व्यवसाय के लिये अवसर की मांग थी। मुझे याद है कि बचपन में हमने दफ्तरों, सरकारी नौकरियों और व्यवसाय के क्षेत्र में ऊंचे वर्ण के हिन्दुओं का ही एकाधिपत्य देखा था। इसका कारण था, इन वर्णों की बेहतर आर्थिक अवस्था और उनके लिये शिक्षा का परम्परागत अवसर। भारत के दस करोड़ मुसलमान विदेश से नहीं आये हैं। वे इसी देश के वासी

और हिन्दूसमाज का अंग है जिसे हिन्दू समाज की आर्थिक व्यवस्था (वर्णव्यवस्था) ने अवसरहीन और विवश बनाये रखने के लिए अछूत और दलित बना दिया था। इस व्यवस्था का प्रयोजन अधिकांश श्रमिक वर्ग को मानवी अधिकारों से वंचित रख कर, अवसर और साधनों की मालिक श्रेणी के उपयोग के लिए पशु बनाये रखना ही था। इसलाम ने इन्हें अछूत अवस्था से उठाकर मानवी समता की भावना दी जिसे हिन्दू वर्णव्यवस्था ने स्वीकार न किया, बल्कि मुसलमान मात्र को ही अछूत मान बैठी। हिन्दू वर्णव्यवस्था से पीड़ित और शोषित भारत का साधनहीन समाज आज इस्लाम के दायरे में है। हिन्दुओं के प्रति उनकी प्रतिद्वन्द्विता की जड़ जीवन के लिए अधिकार और अवसर की माँग में ही है। जिस आर्थिक व्यवस्था ने धर्म के नाम पर इस शोषित वर्ग के प्रति हिंसा, अन्याय और अत्याचार किया है उसके प्रति इनकी घृणा 'हिंसा' नहीं बल्कि 'प्रतिहिंसा' ही है।

यह ठीक है कि जिन्ना साहब और उनके आन्दोलन को चलाने वाले मुस्लिम पूंजीपति और सामन्ती लोगों को साधनहीन नहीं समझा जा सकता। वह लोग साधन-सम्पन्न हिन्दुओं से होड़ में अपने सम्प्रदाय की जनशक्ति का लाभ उठा रहे हैं। साधन-सम्पन्न और साधनहीन लोगों का संघर्ष श्रेणी संघर्ष के रूप में ही होना चाहिये था। इस संघर्ष को सम्प्रदायिक रूप दे देने की जिम्मेवारी ऊंचे वर्ण के हिन्दू की स्वार्थ-परता में ही रही है। ऊंचे वर्ण के हिन्दुओं के आर्थिक एकाधिकारों के प्रति शिकायत केवल उन के साम्प्रदायिक प्रतिद्वन्द्वी मुसलमानों को ही नहीं शनैः शनैः यह प्रतिद्वन्द्विता सभी बहुसंख्यक हिन्दू शोषित वर्गों में भी फैलती जा रही है। बीस वर्ष पूर्व अधिकारों और शिक्षा के अवसरों के लिये जैसे आन्दोलन मुसलमान उठाते थे, आज हिन्दू कहे जाने वाले शोषित लोग भी उठा रहे हैं। देश में एकता स्थापित करने का मार्ग क्या इन सबका दमन कर देना है? और क्या भारतीय संस्कृति का अर्थ वर्णाश्रम की पुनर्स्थापना ही है? क्या वह आज नैतिक माना जा सकता है? क्या बटन का आविष्कार हो जाने पर भी मिर्जई में तनियां लगाये रहने के आग्रह से ही हम भारतीय संस्कृति की रक्षा कर सकते हैं।

साम्प्रदायिक विश्वास का प्रभाव समाज की संस्कृति पर कुछ तो अवश्य पड़ता है परन्तु उससे अधिक सम्प्रदाय के आचार पर समाज

विशेष की संस्कृति और परिस्थितियों का पड़ता है। यू० पी०, बंगाल और अफगानिस्तान के मुसलमानों का और भारत, बर्मा और जापान के बौद्धों का आचार और संस्कृति एक सी नहीं है। इसके विपरीत किसी भी देश के एक ही गाँव के परम्परागत निवासियों की संस्कृति और भाषा एक सी ही होती है। बाबा या प्राचीन आर्य संस्कृति की पुनः स्थापना के पक्षपाती लोगों को भारतीय संस्कृति पर केवल मुस्लिम प्रभाव से ही आपत्ति नहीं वे पश्चिम की औद्योगिक सभ्यता के प्रभाव से भी खिन्न हैं। खिन्न होकर भी वे उसे अजाने में स्वीकार भी करते जा रहे हैं। संस्कृति को भौगोलिक-सीमाओं से बाँधकर रखना कहां तक सम्भव है? भौगोलिक परिस्थितियां और जलवायु का प्रभाव हमारे जीवन निर्वाह के ढङ्ग पर पड़ता है। समाज के जीवन निर्वाह का ढङ्ग ही उसकी संस्कृति है। जैसे भौगोलिक स्थितियों का प्रभाव हमारे जीवन निर्वाह के ढङ्ग पर पड़ता है वैसे ही मनुष्य द्वारा आविष्कृत पैदावार और निर्वाह के साधनों का प्रभाव भी समाज के जीवन निर्वाह के ढंग और और संस्कृति पर पड़ता है। औद्योगिक संस्कृति द्वारा उत्पन्न भौतिक साधनों को अपनाना जरूरी है तो उस संस्कृति के दूसरे प्रभाव भी हमारे जीवन निर्वाह के ढङ्ग पर पड़े बिना न रह सकेंगे। हम यदि बिरचिस के साथ चमरौधा जूता पहनने की जिद करेंगे तो वह केवल विरूपता और उलझन ही पैदा करेगी। पुरातन भारतीय संस्कृति में औद्योगीकरण और उसके प्रभावों का सन्तुलन और सामन्जस्य करने से ही हमारी आधुनिक भारतीय संस्कृति का रूप निश्चित होगा।

दिल्ली लौटकर मैंने भगवती भाई और भैया को यात्रा का परिणाम सुनाया। जिन्ना साहब के सम्बन्ध में बाबा का प्रस्ताव जान भैय्या झुंझला उठे—"यह लोग क्या हमें पेशेवर हत्यारा समझते हैं?" बाद में हम लोग हाथ भर लम्बे देशी पिस्तौल की बात याद कर खूब हंसते रहे। यह बात केवल हंसी की ही नहीं थी। उस देशी पिस्तौल के प्रति बाबा का अनुराग उनके विचार में भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग का प्रतीक था। अपने विश्वास के प्रति बाबा की निष्ठा और त्याग के संबन्ध में सन्देह का अवसर नहीं था परन्तु सावरकर बन्धुओं और हम लोगों के राष्ट्रीय दृष्टिकोण में उतना ही अन्तर आ चुका था जितना कि देहाती लोहार के बनाये, गज से भरे जाने वाले पिस्तौल में और मैगज़ीन में एक साथ आठ गोली भरकर चलाये जाने वाले पिस्तौल में होता है।

हम विलायत में बने पिस्तौल को छोड़ भारतीय देहाती पिस्तौल पर भरोसा करने के लिए तैयार न थे, केवल इसलिए कि वह स्वदेशी है। हम उस पिस्तौल जैसा कारकर, हो सके तो उससे अच्छा, पिस्तौल बना लेना चाहते थे।

सावरकर बन्धुओं ने विदेशी-दासता विरोधी राष्ट्रीयता की भावना को हिन्दू संस्कृति की रक्षा की जिस नीव पर खड़ा किया था वे अब भी उसी पर बैठे हुए थे। केवल सावरकर बन्धु ही नहीं, सशस्त्र क्राति की चेष्टा के प्रारम्भिक युग में दूसरे नवयुवक भी विदेशी दासता विरोधी राष्ट्रीयता को अपने साम्प्रदायिक और धार्मिक विश्वासों से अनुप्राणित कर रहे थे। खुदीराम बोस और कन्हाईलाल दत्त फाँसी के तख्ते पर चढ़ते समय भारत माता और माता राधा के चरणों को एक साथ मिला दोनों पर ही बलिदान होने का बिश्वास लिये थे। यही बात अंग्रेजों के विरुद्ध 'कूका विद्रोह' या 'वहाबी-बग़ावत' करने वाले सिख और मुसलिम क्रान्तिकारियों में भी थी। हि० स० प्र० स० के लोग अपने अग्रगामी विदेशी सरकार विरोधी क्रान्ति की चेष्टा करने वालों के गौरव और उनके प्रति कृतज्ञता स्वीकार करके भी साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता को अलग अलग समझकर, साम्प्रदायिक दृष्टिकोण छोड़ चुके थे। इसका कारण था, इस बीच भारतीय विचारधारा का पश्चिम की औद्योगिक और अधिक विकसित विचारधारा के निकट सम्पर्क में आ जाना और हमारा आयरलैंड, इटली, टर्की के विकास और १९१७ की रूसी समाजवादी क्रान्ति से प्रभावित हो जाना। हम लोग साम्प्रदायिक आदर्शवाद की जगह मार्क्सवादी वैज्ञानिक भौतिक दर्शन की ओर आकर्षित हो चुके थे। इसलिए हम लोगों में से किसी को जेल की कोठरी या फाँसी के तख्ते पर 'रामनाम' की सहायता की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। भगतसिंह ने फांसी के तख्ते से भी इन्कलाब जिन्दाबाद और साम्राज्यवाद के नाश के ही नारे लगाये, जो नितान्त भौतिक लक्ष्य हैं। वैज्ञानिक भौतिकवादी दर्शन से आत्मविश्वास का बल पा लेने का सबसे अच्छा उदाहरण मैंने यतीन्द्रनाथ बैनर्जी की मृत्यु के समय फतेहगढ़ जेल में देखा।

लगभग १९३४ के जून की, फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल की बात है। 'सी' क्लास (तीसरे दर्जे) के एक क्रान्तिकारी बन्दी रमेश गुप्त के साथ जेल अफसरों के दुर्व्यवहार का समाचार पा हम लोगों ने विरोध में

भूख हड़ताल कर दी थी कुछ अपनी भी शिकायतें थीं। प्रायः दो सप्ताह यह हड़ताल रही। 'बी' क्लास में काकोरी-षडयंत्र के श्री मन्मथनाथ गुप्त, बनारस-गोलीकाण्ड के मणीन्द्रनाथ बैनर्जी और मैं ही थे। मणी बैनर्जी का स्वास्थ्य यों भी अच्छा न था। पन्द्रह दिन के निरंतर अनशन से बहुत बिगड़ गया। हृदय रोग ने भीषण रूप ले लिया। हाथ पांव सूज गये, आंखों से दिखाई न दे रहा था। उसे जेल के हस्पताल में रख दिया गया। जेल के सुपरिन्टेण्डेण्ट मेजर रा० ना० भण्डारी थे। मेजर भण्डारी ने जब मणी के बच सकने की सम्भावना न देखी तो इस विचार से कि हम लोग उनके उपेक्षा और दुर्व्यवहार की शिकायत का चिट्ठा गवर्नर तक न लिख भेजें, मणी की मृत्यु से कुछ घन्टे पूर्व हमें उसके समीप रहने की इजाजत दे दी। जिस समय हम लोग मणी की कोठरी में पहुँचे उसे दिखाई बिलकुल न दे रहा था। सांस लेने में बहुत कष्ट हो रहा था। 'आक्सीजन' गैस उसे दी जा रही थी परन्तु उसके लिये श्वास ही न ले पा रहा था। श्वास ले पाने के लिये उसका सम्पूर्ण शरीर बल खा-खा कर छटपटा रहा था। इस छटपटाहट में ही दो-तीन श्वास सुविधा से आ जाते तो वह ढंग से बात का उत्तर दे देता। इस भयंकर शारीरिक कष्ट में भी उस का मस्तिष्क बहुत साफ़ था।

मणी की यह अवस्था देख मन्मथनाथ का हृदय दहल गया। उसने प्रार्थना के ढंग से हाथ जोड़ द्रवित स्वर में मणी को सुनाकर कहा—"मैं अपनी तार्किक प्रवृत्ति के कारण नास्तिक हूं। मुझे ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नही परन्तु जो लोग ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं, वे उसे सर्वशक्तिमान और चामत्कारिक शक्ति-सम्पन्न मानते हैं। सम्भव है कि मेरा तर्क गलत रहा हो! इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि यदि सचमुच भगवान का कोई अस्तित्व है तो वह इस समय तुम्हारा दुख दूर करें। मैं उन में विश्वास कर लेने के लिये तैयार हूँ!'

मन्मथ के यह प्रार्थना करते समय मणी श्वास के लिए अत्यन्त कष्टपूर्ण संघर्ष कर रहा था। इसके बाद उस की श्वास की नली एक मिनिट के लिये काम करने लगी। खिन्नता से मणी बोला—"डैम योर गौड एण्ड डैम हिज़ मर्सी, 'भाड़ में जाय तुम्हारा भगवान और भाड़ में जाय उसकी दया।' लोग बकते हैं कि अन्तिम समय भगवान दिखाई देता है। मुझे तो कुछ दिखाई नहीं दे रहा। मेरे अन्तिम श्वासों के

समय मेरा मस्तिष्क धुन्दला मत करो ! मुझे कायर और कातर बनाने की चेष्टा मत करो !" फिर उसका श्वास कष्ट बढ़ गया। एक जबरदस्त हिचकी उसे आई और उसका शरीर निष्प्राण हो ढ़ीला पड़ गया। हि० स० प्र० स० के लोगों के साम्प्रदायिक या धार्मिक दृष्टिकोण के उदाहरण स्वरूप मणी की मृत्यु दृष्टान्त है। ऐसा ही व्यवहार मृत्यु के समय भगवती भाई का भी था। वह बात प्रसंग आने पर ही कहूंगा।

साम्प्रदायिकता के सम्बन्ध में अपने साथियों के विचारों या व्यवहार के सम्बन्ध में यहां इतना ही कह दूं कि हम लोग हिन्दू-मुसलमान का भेद स्वीकार ही नहीं करते थे। भैया ब्राह्मण थे। दल में उनका एक उपनाम 'पंडित जी' भी था। आवश्यकता पड़ने पर पूजा-आचमन का अनुष्ठान वे बहुत शुद्धता और पूर्णता से निभा सकते थे परन्तु उन्हें जनेऊ, पूजा और संध्या से चिढ़ हो गई थी। इसे वे आत्म-विश्वास की कमी और बुद्धि की परवशता समझते थे। पूजा-संध्या करने वाले व्यक्ति की इमानदारी में उन्हें सन्देह ही रहता था। भगवती भाई ऐसी बात से चिढ़ते तो नहीं थे लेकिन इस चर्चा को ही व्यर्थ समझते थे। मांस न आजाद खाते थे न भगवती परन्तु मांस और सब्जी एक साथ मिला कर पकाने से मांस को छोड़ सब्जी मजे में खा लेते थे।

× × ×

सात

वाइसराय की गाड़ी के नीचे विस्फोट

दल की ओर से अनुमति मिल जाने पर भी हम नवम्बर के अन्त मे वायसराय की गाड़ी के नीचे विस्फोट न कर सके थे, इस बात के लिए मन में बहुत ग्लानि थी। अब फिर अवसर आ रहा था। वाइसराय दिसम्बर के तीसरे सप्ताह में कोल्हापुर जा रहे थे और दिसम्बर २३ को दिल्ली लौटने वाले थे। उसी दिन दिल्ली में गांधीजी वाइसराय से भेंट करने वाले थे। राजनैतिक दृष्टि से वाइसराय पर इसी समय आक्रमण करने का विशेष महत्व था और हम चूकना नहीं चाहते थे।

इन्द्रपाल को सन्देश भेजा कि हंसराज को उसकी मूर्छित करने वाली गैस सहित १८-१६ दिसम्बर तक दिल्ली अवश्य पहुँचा दे। इन्द्रपाल और हंसराज २० तारीख को दिल्ली पहुंचे। उन्हें देख हमे बहुत सांत्वना हुई परन्तु हंसराज ने सब उत्साह समाप्त कर दिया। उसने बताया कि गैस के बल्ब बिलकुल ठीक बन गये थे। लाहौर तक वह उन्हें सुरक्षित ले आया था परन्तु लाहौर से दिल्ली के लिए चलते समय वह स्टेशन तक जिस टाँगे में गया, उसमे उस का बकस हिलता रहा और गैस के बल्ब टूट गये। इस समय इन्द्रपाल उसके साथ न था। हसराज ने बताया कि गैस बहुत अच्छी बनी थी। बकस के भीतर गैस का बल्ब टूट जाने का प्रभाव यह हुआ कि टाँगे में बैठी सवारियाँ, टाँगे वाला और घोड़ा सब बेहोश हो गये। उसके पास गैस की अवरोधक औषध जेब में मौजूद थी इसलिए वह बच कर भाग आया।

हंसराज की गैस लाहौर में ही नष्ट हो जाने के कारण वह लायलपुर लौट जाना चाहता था परन्तु इन्द्रपाल हमारे आदेशानुसार उसे दिल्ली ले ही आया कि शायद कोई और राह निकल सके। हम लोगों को बहुत गम्भीर हो गया देख हंसराज ने आश्वासन दिया कि गैस न सही, उनके पास एक तीसरा आविष्कार है, शायद उससे काम बन

जाय। पिछली बार दिल्ली में उसने हमें एक गज़ की दूरी से बिना तार के बैटरी से बिजली चालूकर देने का चमत्कार दिखाया था। इस आविष्कार को वह 'एकगज़ी' कहता था। "एकगज़ी का प्रभाव अब पाँच सौ गज़ दूर तक हो सकेगा"—हंसराज ने हमें तसल्ली दी।

हम लोग इस आविष्कार से काम करने के लिए तैयार हो गये। हंसराज ने हम लोगों से दो या तीन रुपये लिए और आवश्यक पदार्थ बाज़ार से ले आया। ऐसे चामत्कारिक पदार्थ खरीदने के समय वह हम लोगों को साथ न ले जाता था। दोपहर तक कुछ गोलियाँ और दूसरी चीज़ें पीस कर, पानी में घोल एक छोटी बोतल उसने तैयार कर ली और बोला कि "तैयार है।" हम लोगों ने इस आविष्कार का प्रभाव पाँच सौ गज़ तक आज़मा लेना चाहा। इस वस्तु से जहाँ काम लेना था, उसी स्थान पर परीक्षण करना उचित समझा। अब कई दिन पूर्व लाइन के नीचे बम गाड़ देने और फिर निश्चित तारीख तक बमों के ठीक दबे रहने की रखवाली करते रहने का न तो समय था और न जरूरत। इसलिए सोचा कि तेहखण्ड क्यों जायें? २१ तारीख़ की बात कह रहा हूं, २३ तारीख़ सुबह छः बजे ही वाइसराय की गाड़ी दिल्ली लौटने वाली थी। बीच में केवल एक रात और एक दिन ही शेष थे। नई दिल्ली और निजामुद्दीन स्टेशनों के बीच, दिल्ली से केवल चार ही मील दूर, कौरव-पाण्डवों के किले के खण्डहर के पीछे हमने लाइन के नीचे बम दबाने का निश्चय किया। यहाँ भी लाइन के नीचे एक पुल और लाइन पर घुमाव है। खूब गहरी ढलवान भी है। गाड़ी के गिरने पर तेहखण्ड की जगह की अपेक्षा यहाँ बहुत अधिक चोट पड़ती।

इन्द्रपाल को बम लगाने के लिये चुनी हुई जगह पर जेबी बैटरी में एक छोटा बल्ब लगाकर बैठा दिया कि जब बल्ब जले हमें संकेत कर दे। मैं और हंसराज इन्द्रपाल को केन्द्र मान 'पांच सौ गजी' लिये लाइन से लगभग चार सौ गज की दूरी पर चक्कर लगाने लगे ताके आविष्कार का प्रभाव देखा जा सके। आविष्कार की शीशी हंसराज के ही हाथ में थी। हंसराज ने बताया कि उसके आविष्कार का प्रभाव केन्द्र से पांच सौ गज़ के वृत्त में सभी जगह नहीं होगा। इस सम्पूर्ण जगह में उसके आविष्कार से बिजली की केवल एक ही सूक्ष्म धारा बनेगी। यह बात मुझे कुछ विचित्र लगी। मैंने सुझाव दिया कि पांच सौ गजी को लिये घूमने के बजाय उसे सड़क के पास एक जगह जमा दिया जाय जहाँ

से इन्द्रपाल का इशारा देखा जा सके। 'पांचसौ गजी' और बैटरी की यदि अलग-अलग विद्युत धारायें हैं तो दोनों चीजों को अपनी अपनी जगह एक दूसरे से विपरीत दिशाओं में लट्टूओं की तरह घुमा कर देख लेने से किसी न किसी बिन्दु पर वे मिल ही जायंगी।

हंसराज ने मेरे सुझाव को गलत बताया और बोला—"नहीं, तुम इस बात को नहीं समझते। मैं स्वयं रात भर में इसे इस प्रकार सुधार दूंगा कि विद्युत धारा की दिशा खोजने का झंझट न करना पड़े।" सूर्यास्त हो गया था इसलिये हम लौट आये। लौटकर भगवती भाई से सलाह कर निश्चय किया कि जैसे भी हो २३ तारीख सुबह बम विस्फोट अवश्य किया जायगा। इसलिए बम आज ही रात कौरव-पांडवों के किले के पास गाड़ दिए जायें। अवसरवश साथी लेखराम और भागराम भी दिल्ली में ही थे। लेखराम को तो इसलिए बुलाया था कि विस्फोट से पूर्व हमारा सभी सामान साइकिलें आदि रोहतक ले जाय और हम घटना से पहिली रात मकान छोड़ दें। भागराम को कुछ दिन पूर्व ही जम्मू से बुला लिया था कि बम ढालने के काम में सहयोग देने के लिए भैया के साथ कर दें। भगवती भाई और मैं दोनों ही इस समय मृत्यु या गिरफ्तारी की सम्भावना का सामना कर रहे थे। इसलिए इन लोगों का सम्पर्क मुख्य दल से हो जाना उचित था। हम चार आदमी रात साढ़े ग्यारह बजे बम लेकर पैदल कौरवों-पांडवों के किले के पीछे निश्चित स्थान पर पहुँचे और डेढ़-एक घण्टे में बम दबाकर लौट आए।

दूसरे दिन सुबह हंसराज ने फिर अपने आविष्कार के परीक्षण शुरू किए। उसने बिना तार के डेढ़ गज की दूरी से बैटरी पर लगा बल्ब जलाकर दिखाया। आविष्कार की शीशी उसके हाथ में होने से तो बल्ब जल जाता था परन्तु किसी दूसरे के हाथ से नहीं। हंसराज ने ही फैसला कर दिया—"इस बार तुम लोग तार गाड़ कर बैटरी से विस्फोट कर लो। भविष्य के लिए मैं गैस और दूसरी चीजें काफ़ी मात्रा में ऐसी बना दूंगा कि उनका उपयोग जो चाहे कर सके।" दाँत पीसकर रह गये। हंसराज दल का साथी तो था नहीं कि दल की आज्ञा न मानने पर उसे दण्ड देने की बात सोची जाती। अब चिन्ता हुई कि शीघ्र ही बैटरी और तारों का प्रबन्ध किया जाय। हंसराज ने एक बड़ी सहायता यह की कि ढाई-ढाई आने में मिलने वाले जेबी बैटरी के दो चपटे सेल एक डिब्बे में जोड़ कर उस पर एक स्विच लगा दिया और

डिब्बे में तार को जोड़ने के लिए दो जगहें बना दीं। पाँच आने में ऐसी बढ़िया बैटरी बना लेना जो ढाई-तीन सौ गज तक काम दे सके, हमारी समझ के लिए सम्भव न था। हमें विश्वास था कि हंसराज सब कुछ कर सकता है। वह भय के कारण हमारी सहायता नहीं कर रहा। एक बार हमारी सफलता देख कर उस का साहस बढ़ जायगा।

हम लोग बाजार से तार लाने जा रहे थे। उसी समय कैलाशपति ने आकर समाचार दिया कि भैया ने हमें आवश्यक बात के लिए बुलाया है। मैं और भगवती उस के साथ 'कुदसिया बाग' पहुँचे। भैया के साथ एक और भी व्यक्ति था, लम्बा-चौड़ा शरीर, गेहुँआ रंग, तीखी आखें। भैया ने बात शुरू की—"मैंने दल की ओर से २३ तारीख की घटना के लिए अनुमति दे दी थी लेकिन कई ऐसी समस्यायें आ पड़ी हैं कि इस बात पर दुबारा विचार कर लेना आवश्यक है....।" वे प्रायः पांच-छः मिनिट बोले। अभिप्राय यही था कि गणेशशंकर जी विद्यार्थी से उन्हों ने फिर परामर्श किया है और उनका कहना है कि लाहौर में २४ तारीख़ से कांग्रेस अधिवेशन होने जा रहा है। यह कांग्रेस के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण होगा। पिछले वर्ष कलकत्ते के अधिवेशन में यह प्रस्ताव पास हुआ था कि यदि सरकार एक वर्ष में कांग्रेस की मांगों को पूरा न कर दे तो कांग्रेस १९२९ के अधिवेशन से व्यापक सार्वजनिक आन्दोलन आरम्भ कर देगी। १९२८ में गांधी जी ने इस बात की प्रतिज्ञा कर ली थी। यह उन के आन्दोलन आरम्भ करने का समय है। इसीलिये गांधी जी लाहौर अधिवेशन में जाते समय कल वाइसराय से आखिरी बात करके जायंगे।

मैंने और भगवती भाई ने सुझाया कि कांग्रेस ने १९२८ में जो चेतावनी ब्रिटिश सरकार को एक वर्ष में अपनी शर्तें पूरी करने के लिये दी थी, उसकी सरकार ने उपेक्षा कर दी है। यह बात हमने अपनी घोषणा में, जो कि विस्फोट के बाद प्रकाशित की जायगी, स्पष्ट कर दी है। सरकार ने देश की मांग की उपेक्षा कर राष्ट्र का अपमान किया है। उसी के प्रति हम लोग इस घटना द्वारा विरोध प्रकट कर रहे हैं। यदि कांग्रेस सचमुच आन्दोलन आरम्भ करना चाहती है तो इस घटना से जनता का उत्साह कम न होकर अधिक ही होगा। सरकार द्वारा देश की मांग की उपेक्षा किए जाने पर भी गांधी जी का वाइसराय से फिर मुलाकात के लिये प्रार्थना करना देश और कांग्रेस दोनों

का अपमान है। इसलिये हम मुलाकात की तारीख के दिन सुबह ही वाइसराय को समाप्त कर देना चाहते हैं। यह हमारी ओर से कांग्रेस की समझौतावादी नीति का विरोध है। कांग्रेस तो युद्ध घोषणा से सदा ही कतराती रहेगी। जब हम जनता की ओर से सरकार के साथ समझौता असम्भव कर देंगे, तभी संघर्ष शुरू होगा।

भैया के साथ नये आये व्यक्ति का परिचय हमें युक्त प्रान्त के बहुत महत्त्वपूर्ण संगठन कर्त्ता बी० (वीरभद्र तिवाड़ी) के नाम से दिया गया था। पैनी दृष्टि से देख कर आखें झुका, उंगुली से घास में चिह्न बनाते हुये बात करने का उसका तरीका मुझे बहुत विचारपूर्ण और प्रभावोत्पादक मालूम हुआ था। वीरभद्र ने समस्या की बहुत लम्बी-चौड़ी व्याख्या की जिसका अभिप्राय था कि वह हम लोगों से पूर्णतः सहमत है परन्तु विद्यार्थीजी और दूसरे कांग्रेसी नेताओं की सहानुभूति खो बैठना दल के लिए उचित नहीं। इसलिए घटना को सप्ताह भर के लिए स्थगित कर दिया जाय। गांधीजी और वाइसराय की भेंट का परिणाम देख लेने से कांग्रेसी नेताओं को सन्तोष हो जायगा। उसने यह भी कहा कि यह विश्वस्तसूत्र से मालूम हुआ है कि पण्डित जवाहरलाल के नेतृत्व में इस बार संघर्ष अवश्य ही आरम्भ हो जायगा। गांधीजी भी इसके लिए तैयार हैं। इसीलिए पण्डित नेहरू को उग्र पक्ष के प्रतिनिधि रूप में कांग्रेस का प्रधान चुना गया है। उस समय हमारे दल की ओर से किए गये प्रयत्न का मूल्य भी अधिक होगा।

कैलाशपति ने भी घटना स्थगित कर देने का ही अनुमोदन किया। उसका तर्क था कि अभी दल की शक्ति सरकार पर इतनी बड़ी चोट करने योग्य नहीं। इस घटना के बाद सरकार जैसी प्रतिहिंसा से क्रांतिकारियों की छानबीन करेगी उससे दल को बहुत नुक़सान पहुंचेगा। बहस उपरोक्त युक्तियों और तर्क को अनेक प्रकार से दोहरा-दोहरा कर प्रायः चार घण्टे तक चलती रही। न मैं और न भगवती वीरभद्र और कैलाशपति की बात मानने को तैयार थे और न वे दोनों हम लोगों की। आजाद कह रहे थे कि हमें दूसरे लोगों के हाथ की कठपुतली नहीं बनना चाहिए। एक बार तो उनके कहने से घटना स्थगित की जा चुकी परन्तु बिना सोचे क़दम रखना भी ठीक नहीं। यह कोई हमारा शौक तो है नहीं। कांग्रेस की अहिंसात्मक, समझौतावादी नीति और हमारी नीति अलग-अलग हैं। आप लोग सोच समझकर निश्चय

कीजिये। जो काम हो सर्वसम्पति से हो? बहस समाप्त ही न हो रही थी। मेरे मन में बिजली के तार खरीद लाने की खलबली मची हुई थी। बहस का अन्त होता न देख कुछ देर में लौट आने की बात कह मैं उठ आया। बाज़ार से ढाईसौ गज़ बिजली का साधारण फ्लेक्सिबल तार खरीद नये बाज़ार की जगह में पहुँचा और हंसराज की सहायता से तारों में जोड़ लगा उन्हें बैटरी में जोड़ तारों के दूसरे सिरे पर बल्ब लगाकर तारों के ठीक होने का परीक्षण कर रहा था।

लगभग छः बजे भगवती भाई भी लौट आये। उनका चेहरा उदास था। मुझे एक ओर बुला उन्हों ने बताया कि फैसला विस्फोट स्थगित कर देने का ही हुआ।

"नहीं, अब स्थगित नहीं होगा।"—मैंने दृढ़ता से कहा।

"यह कैसे हो सकता है?"—उन्होंने विरोध किया।

"उन लोगों की बातों से न मेरा समाधान हुआ है न तुम्हारा। इसलिए इस निर्णय का विरोध करना हमारा नैतिक कर्तव्य है, चाहे जो मूल्य देना पड़े!"

"यह ठीक नहीं है।"—भगवती ने मेरी बात अस्वीकार की।

"मैं तो इसी रात विस्फोट करूँगा"—मैं अड़ गया। "न मैं जिन्दा लौटूंगा न जवाब देही करनी पड़ेगी। मेरे बाद तुम दल को उत्तर दे सकते हो कि यशपाल नहीं माना। यदि मैं घटनास्थल से जीवित लौट आया तो घटना के प्रभाव से जनता की दृष्टि में दल का बढ़ा हुआ आदर हम लोगों की सफाई होगा। इस पर भी यदि दल मुझे अपराधी ठहरायेगा तो जो दंड होगा, मैं झेल लूंगा। यदि दल चाहे तो आज्ञा-भंग के अपराध में मुझे गोली मार दे!"

भगवती भाई कुछ देर मौन रहे और फिर निश्चय से बोले—"हम दोनों एक साथ हैं; जो होगा देखा जायगा। विस्फोट स्थगित नहीं करेंगे।"

दल ने विस्फोट स्थगित करने का फैसला कर लिया था इसलिए हम लोगों ने दल की ओर से इस अवसर पर जो घोषणा 'कमान्डरइन-चीफ 'करतारसिंह' अर्थात भैया के नाम से लिखी थी, उसका उपयोग न हो सकता था। इस घोषणा पत्र पर लगाने के लिए भैया ने हमे दल की मोहर दे दी थी। घटना स्थगित कर दी जाने के कारण भैया ने भगवती भाइ से मोहर लगे घोषणापत्र और मोहर लौटा देने के लिए

कहा था। इस मोहर में तोरण या मेहराब की तरह बनी हुई दो तलवारों के साथ H.S. R. A. अक्षर बने हुए थे और नीचे दो हाथ एक दूसरे से मित्रता में बंधे अंकित थे। यह मोहर विदेशी सरकार से युद्ध और देश की सम्पूर्ण जनता की एकता के चिन्ह स्वरूप थी।

वीरभद्र तिवाड़ी का सुझाव घटना को केवल सप्ताह भर के लिये स्थगित कर देने का था। दिसम्बर के अंत में वाइसराय प्रायः ही नये वर्ष का त्योहार मनाने कलकत्ते जाया करते थे। उस समय भी उनकी गाड़ी के नीचे विस्फोट किया जा सकता था परन्तु हम लोगों को घटना का स्थगित करना मंजूर न था। राजनैतिक दृष्टिकोण से घटना का कांग्रेस से पहले होना हमारी दृष्टि में अधिक उपयोगी था क्योंकि इससे कांग्रेस के निर्णयों पर प्रभाव पड़ने की सम्भावना थी। दूसरी ओर कांग्रेस के समझौतावादी नीति अपना लेने पर यदि हम उस नीति के विरुद्ध प्रदर्शन करते तो यह कांग्रेस से विरोध प्रकट करना ही होता। हम जनता के सामने कांग्रेस के विरोधी के रूप में नहीं बल्कि स्वतंत्र रूप से विदेशी सरकार का उग्र विरोध करने वाले सगठन के रूप मे आना चाहते थे। यह बात केवल तटस्थ राजनीति जान पड़ेगी परन्तु उस समय मैं केवल तटस्थ दृष्टि से ही समस्या पर विचार नहीं कर रहा था। इस घटना के तुरंत की जाने से मेरा व्यक्तिगत लगाव भी था। अक्टूबर में जब घटना की पूरी तैयारी हो चुकी थी, भगवती भाई ने ध्रुवजी से मेरा एक फोटो फौजी अफ़सर की पोशाक में (सिर पर हैलमेट, फौजी वर्दी पर आड़ी पेटी कसे, बिरचिस और घुटनों तक बूट पहने, घुड़सवार पल्टन के मेजर की पोशाक में) इस विचार से बनवा लिया था कि मेरी लगभग निश्चित मृत्यु के बाद स्मृति के रूप में रह सके। हम लोग किसी भी साथी के निश्चित मृत्यु की ओर जाते समय प्रायः उसका एक फोटो बनवा लिया करते थे। इन्द्रपाल जब मूंड मुंडाकर तेहखण्ड में साधु बनने गया था तो उसका भी एक फोटो साधारण वेश में बनवा लिया गया था। यह फोटो खिंच जाने के बाद से मैं अपने आप को बलिदान हो चुका ही समझने लगा था। अब जीता-जागता बने रहने में, अपनी दृष्टि में ही अपमान और लज्जा अनुभव हो रही थी। यदि २३ दिसम्बर को ही विस्फोट कर देने का निश्चय जिद कहा जाय तो इसका कारण मेरी इस भावना को ही समझा जा सकता है।

भगवती भाई घोषणा के कागज़ और मोहर इत्यादि भैया को लौटा कर प्रायः साढ़े आठ-नौ तक लौटे। साइकिलें और दूसरा ऐसा सामान जो सुविधा से लेखराम, इन्द्रपाल रोहतक और लाहौर न ले जा सकते थे, खयालीरामजी गुप्त के मकान पर पहुँचा दिया। साढ़ेनौ बजे, विलम्ब न करने के विचार से भोजन किये बिना ही बैटरी, तारों के गुच्छे और जमीन खोदने के औजार ले हम लोग कौरवों-पाण्डवों के किले की ओर पैदल चल दिये। लेखराम, भागराम, इन्द्रपाल, हंसराज सभी लोगों के वहां होने के कारण अच्छी खासी भीड़ थी। हमारे पड़ोसियों ने मुझसे पूछा—"ठाकुर साहब क्या बात है ? बहुत मेला लग रहा है ?" "आज मेला समाप्त हो जायगा"—मैंने मुस्कराकर उत्तर दे दिया और फिर उन का समाधान किया—"आज रात विलायत जा रहा हूं। घर-गांव के लोग हैं। मिलने के लिये आ गये हैं। मानो, फांसी पर चढ़ रहा हूं।"

साथियों को भूख लगी थी। रास्ते में 'खारीबावली' से कुछ पूरियां और मिठाई ले ली। हम लोग तार गाड़ने के स्थान पर समय से कुछ पहले ही पहुंच गये थे। लाइन पर से सवारी गाड़ी गुज़र जाने की प्रतीक्षा में खंडहर के एक भाग पर बैठ भूख मिटाने लगे। भूख मालूम होने पर भी मैं कुछ खा न पा रहा था। दिन भर और उससे पहली रात भी कुछ खा न सकने से मुंह कड़ुवा और अरुचि हो रही थी। मुझे कुछ खाते न देख इन्द्रपाल ने टोका—"अरे, इस बलि के बकरे को अच्छी तरह ठूस-ठूस कर खिलाओ! बकरे को खूब खिला पिलाकर मन्दिर में ले जाया जाता है। भूखा रहेगा तो इस की आत्मा तड़पती रहेगी।"—और मुझे दिखाकर खुद खाता जा रहा था।

"तू क्या समझता है, यहीं पीछा छोड़ दूंगा ? भूत बन कर आऊंगा और तेरी खोपड़ी पर सवार रहूंगा"—मैंने हंसी में उत्तर दिया। तब क्या मालूम था हमारी उस मण्डली के अधिकांश साथी भगवती भाई, भागराम और इन्द्रपाल मुझसे पहले ही चल देंगे। गाड़ी गुज़र जाने पर हम लोगों ने तार गाड़ना शुरू कर दिया। पिछले दो दिन की हल्की बारिश से जमीन नम और नरम थी। दो ही घण्टे में ढ़ाईसौ गज तार गाड़ हम लोग लौट चले।

लाइन के नीचे बमों से आता हुआ तार जहां समाप्त होता था वहां से सड़क लगभग दो सौ गज़ दूर थी। सड़क तक की जगह रेतीली और

झुरझुरी थी। मोटर साइकिल को सड़क पर छोड़ देना आवश्यक था। भगवती भाई ने शंका की, तुम मोटर साइकिल सड़क पर छोड़ कर बैटरी का स्विच दबाने यहाँ तक आओगे। कुछ देर पहले ही आना पड़ेगा। घण्टे-डेढ़ घण्टे प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। इस बीच में सड़क पर अकेली खड़ी गाड़ी पर किसी का भी ध्यान जायगा। हो सकता है उस समय कोई रौंद इधर से गुजरे। ऐसे समय कोई आदमी साइकिल के समीप होना आवश्यक है जो कुछ जवाब दे सके। कह सके कि दिल्ली आते समय गाड़ी बिगड़ जाने के कारण या तेल समाप्त हो जाने के कारण रुकना पड़ गया है। अकेली पड़ी साइकिल की चोरी भी हो सकती है। तुम बच सकने का अवसर होने पर भी न बच सकोगे ?

लगभग दो बजे नया बाजार की जगह में लौट आये। थोड़ा बहुत रह गया सामान समेटा गया। मैंने फौजी अफसर की वर्दी पहन ली और अपने दूसरे कपड़े भगवती भाई को सौंप दिये। पहले यह निश्चय था कि इन्द्रपाल, हंसराज और भागराम चार बजे की गाड़ी से लाहौर जाँयगे। लेखराम रोहतक लौट जायगा और भगवती भाई गाजियाबाद स्टेशनपर जाकर मेरी प्रतीक्षा करेंगे। वाइसराय की गाड़ी के नई दिल्ली पहुँचने का समय छः बजे था। उससे छः-सात मिनिट पहले उसे कौरवों-पाण्डवों के किले के पीछे से गुजरना था। घटना के बाद यदि मैं बिना बाधा निकल सकता तो मोटर साइकिल पर सीधा गाजियाबाद चला जाता। साइकिल को गाजियाबाद स्टेशन पर छोड़कर मैं और भगवती भाई कलकत्ते के गुंजान शहर में जा छिपते। उन दिनों कलकत्ते में बड़े दिन की घुड़दौड़ के कारण बहुत भीड़ भी रहती है। अपनी-अपनी दिशा मे सब लोगों के चल पड़ने से पहले भगवती बोले—"साइकिल की रखवाली के लिये मैं तुम्हारे साथ जाऊंगा।"

सिर्फ साइकिल की रखवाली के लिए भगवती भाई को खतरे में डालना उचित न जंचा। मैंने उन्हें साथ ले जाने का विरोध कर कहा—"अच्छा हो यदि भागराम मेरे साथ जाय! लड़ाई में कोई गोली मेरे हाथ या बांह में लगजाने पर भी मैं बचा रहा तो मैं पीछे बैठ जाऊंगा और वह तेज़ साइकिल चला कर मुझे गाजियाबाद पहुँचा देगा।"

भागराम तुरन्त तैयार हो गया। वाइसराय की गाड़ी के नीचे विस्फोट करने के कारण मुझे प्रायः साहसी समझा गया है, क्योंकि मै निश्चित मृत्यु का सामना करने गया था। इस दृष्टि से भागराम

का साहस मेरी अपेक्षा अधिक सराहनीय था। मैं तो कई दिन से इस बात के लिए तैयार ही नहीं बल्कि जूझ रहा था। भागराम इशारा पाते ही, एक क्षण में मेरा साथ देने के लिए तैयार हो गया। भागराम साधारण वेश में था। साधारणतः उसका स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण जाड़े में उसने एक पुराना फौजी ओवरकोट कबाड़ी के यहाँ से खरीद लिया था। वह इस समय बहुत काम आया। एक पिस्तौल उसे भी दे दिया गया कि मेरे सड़क से आगे चले जाने पर अपने ऊपर आये संकट का सामना कर सके और दोनों के संकट में पड़ने पर दोनो लड़ सकें। खैर, भगवती भाई को गाज़ियाबाद जाना पड़ा।

सब लोगों के चले जाने के बाद हम लोग लगभग साढ़े चार बजे चुपचाप मकान के जीने से उतर आए। मोटरसाइकिल नीचे गली में थी। उसे सड़क तक धकेलकर ले गये ताकि गली का सन्नाटा भंग न हो। सड़क पर गाड़ी को चालू किया। भागराम मेरे पीछे अर्दली के रूप में बैठ गया और हम लोग घटना स्थल के लिए चल दिये। पहले दो दिन वर्षा होती रहने के कारण उस रात सर्दी और कोहरा बहुत था। सड़क किनारे बिजली के लैम्प प्रकाश के धुन्धले बिन्दु मात्र जान पड़ते थे। मोटरसाइकिल के लैम्प का तीव्र प्रकाश भी कोहरे को बहुत दूर तक न भेद पा रहा था। शहर के बाहर कोहरा और भी घना था। कौरवों-पाण्डवों के किले के समीप पहुँच गाड़ी खड़ी कर दी।

सड़क से परे तार गड़े स्थान की ओर जाने से पहले मैंने भागराम को समझा दिया कि वाइसराय की गाड़ी आने से पहले पाइलट इँजन गुज़रेगा। वाइसराय की गाड़ी से कुछ मील आगे पाइलट इंजन लाइन की देखभाल के लिए चलता था ताकि लाइन पर कोई गड़बड़ या आशंका हो तो वाइसराय की गाड़ी खतरे से पहले ही रोक ली जा सके। लाइन पर से अकेले इंजन और पूरी गाड़ी के गुज़रने की आहट में काफ़ी फरक रहता है। भागराम को बता दिया कि इस इंजन को मैं यों ही निकल जाने दूंगा। पाइलट के लगभग दस-पन्द्रह मिनिट बाद वाइसराय की गाड़ी आयेगी तभी मैं बम चलाऊंगा। विस्फोट का शब्द होने के बाद यदि लड़ाई-झगड़े और गोलियाँ चलने की आहट मिले और मेरे आने में विलम्ब हो तो वह मोटर साईकिल चालू करके लौट जाये। यदि विस्फोट से पहले ही पुलिस की रौंद करती गारद इधर आने पर प्रश्न किया जाये तो बात बना दे कि कप्तान साहब रौंद

करने आये थे। साइकिल बिगड़ गई है। वे आगे चले गये हैं और लारी भेजने के लिए कह गए हैं।

सूखे कुएँ के समीप बिजली के दबे हुए तारों का सिरा मैंने खोज लिया और अपने साथ लाई हुई हलकी बैटरी उसमें लगा दी।. गाड़ी आने की प्रतीक्षा करने लगा। प्रतीक्षा में समय बिताने का एक साधन घड़ी देखकर मिनिट गुजारना भी होता है। सन्तोष रहता है, इतना समय बीत गया, इतना शेष है। पर मैं अपनी घड़ी भगवती भाई को सौंप आया था। सर्दी बहुत और कोहरा भी बहुत ही घना था। चुस्ती बनाये रखने के लिए मैं बैटरी के चारों ओर चहलकदमी करने लगा। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था पौ फटने के प्रकाश के बजाय अन्धेरा और भी घना होता जा रहा था। वर्षा से भीगी जमीन से उठा वाष्प वायु में जमता जा रहा था। काफ़ी प्रतीक्षा के बाद मथुरा की ओर लाइन पर गाड़ी की आहट जान पड़ी। आहट समीप आ रही थी। याद था, पहले पाइलट आयेगा। आहट घटनास्थल पर पहुँच गई परन्तु पाइलट इंजन के माथे पर लगा प्रकाश न दिखाई दिया। आहट नई दिल्ली की ओर गुजर गई। सोचा, शायद पाइलट इंजन के सामने प्रकाश (सर्चलाइट) न होती हो! या कोहरा और धुन्द इतना घना है कि प्रकाश दिखाई नहीं दे सका। अब वाइसराय की गाड़ी . के आने में पन्द्रह मिनिट से अधिक समय न था। कोहरे से लदे वायु में अन्धकार का कालापन कुछ कम होकर सफेदी बढ़ गई थी परन्तु ऐसे जैसे धुनी हुई रूई हवा में भर गई हो। दस कदम दूर की झाड़ियाँ भी दिखाई न दे रही थीं। सोचा, यदि वाइसराय की गाड़ी के सामने लगा तीव्र प्रकाश भी दिखाई न दिया तो निश्चित स्थान पर गाड़ी का पहुँचना कैसे पता लगेगा? जैसे भी हो, निश्चय किया, आहट से अनुमान लगाना होगा कि गाड़ी का इंजन निश्चित स्थल पर पहुँच रहा है।

हमारी योजना थी कि इंजन के निश्चित स्थल पर पहुंचते-पहुंचते, इंजन के मुंह पर धक्के के रूप में विस्फोट किया जाय। इससे इंजन पटरी से नीचे गिर जायगा; जैसे दो गाड़ियों के आमने-सामने भिड़ जाने पर होता है। मथुरा की ओर से फिर लाइन पर आहट सुनाई दी। आहट नईदिल्ली की ओर बढ़ती आ रही थी। कोहरे में आंखें फाड़ फाड़ कर मैंने इंजन के सामने लगे प्रकाश को देखा। कुछ न दिखाई दिया। अब आहट के आधार पर ही ठीक समय पर बैटरी का

बटन दबाना आवश्यक था। गाड़ी की आहट बिल्कुल पास आ गई। मैं सांस रोके, बटन पर हाथ रखे अपनी सम्पूर्ण चेतना को कानों में समेटे, आहट ठीक स्थान पर पहचानने की प्रतीक्षा कर रहा था। मेरी समझ के अनुसार वह पल आया और मैंने बटन दबा दिया।

बटन के दबते ही विस्फोट का भयंकर धड़ाका हुआ। मेरी कल्पना थी कि विस्फोट के शब्द के साथ ही गाड़ियों के आपस में भिड़ने और गड़गड़ाहट से ढलवान पर लुढ़कने का शब्द होगा। मेरी आशा और कल्पना के प्रतिकूल गाड़ी के नियमित रूप से, खूब तेज चाल से दौड़ते चले जाने की आहट नईदिल्ली की ओर बढ़ गई। असफलता और निराशा से मेरा हृदय बैठ सा गया। मेरा अनुमान है, निराशा के ऐसे ही धक्के से लोगों के हृदयों की गति बन्द हो जाती होगी। मैं असफल निराश, असहाय और भौंचक खड़ा रह गया।

विस्फोट में से गाड़ी के सही-सलामत गुजर जाने पर यही आशा थी कि लाइन के दोनों ओर कुछ-कुछ अंतर पर पहरे के लिए खड़े पुलिस के आदमी मेरी ओर दौड़ पड़ेंगे। मैंने कन्धे से लटकती पेटी से पिस्तौल निकाल हाथ में साध लिया। दोनों पावों के पंजों पर शरीर को तौल और आखें फाड़-फाड़कर अपनी ओर झपटने वालों को देखने की चेष्टा करने लगा। लगभग एक मिनट इसी प्रकार गुजर गया। मन में विचार आया, मैं व्यर्थ ही पकड़े जाने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मोटरसाइकिल की ओर चल पड़ने से पहिले ख्याल आया, यह असम्भव है कि पकड़ने वाले न आयें। भागने का अर्थ होगा कि मेरी पीठ पर गोली लगे। मरना है तो पीठ पर गोली खा कर मरना अपमान जनक जान पड़ा। वैसे ही खड़ा रहा बल्कि याद है कि साहस से मुस्कराने की चेष्टा कर मन ही मन ललकारा—"आओ, जिसे आना हो!" डेढ़-दो मिनट इसी अवस्था में बीत गये। न किसी के आने की आहट मिली न कोई आता दिखाई दिया।

मैं मोटरसाइकिल की ओर चल पड़ा परन्तु दो क़दम उठाकर पीछे देख लेता कि कोई पीछा तो नहीं कर रहा? ऐसे ही पीछे देखता, आगे बढ़ता सड़क पर पहुँच गया। मुझे देखते ही भागराम बोला—"कुछ नहीं हुआ?" हाथ हिला कर अपना अज्ञान और असफलता प्रकट की। "मसाला कम होगा?"—भागराम ने प्रश्न किया—"हो सकता है।"—उत्तर दे दिया।

लौटने में बहुत देर लगा दी, मैं परेशान था—"भागराम ने कहा—"न गोली चलने की आवाज़ आ रही थी न तुम्हीं आ रहे थे।" कुछ बोल नहीं पा रहा था इसलिए टाल दिया—"देख रहा था शायद कोई आता हो।"

मोटरसाइकिल को चालू करने के लिये उसके स्टार्टर पर पांव मारा। एक बार, दो बार, दस-बार स्टार्टर पर पूरी शक्ति से पांव मारा। इंजन नहीं चला। मैं एक ओर हट गया और भागराम ने चलाने की कोशिश की परन्तु मोटरसाइकिल न चला। भागराम ने विचार प्रकट किया कि सर्दी से इंजन जाम हो रहा है, ढकेलने से ठीक हो जायगा। इंजन को गेयर लगा दोनों ने मिलकर मोटरसाइकिल को कुछ दूर ढकेला। इस पर भी गाड़ी न चली। हम लोग गाड़ी को लगभग दो फ़रलांग ढकेल ले गये परन्तु वह चालू न हुई। गाड़ी के मडगार्ड और तेल के टैंक पर बहती हुई ओस की धारायें मुझे दिखा भागराम ने सुझाया—"ओस की बूंदें 'प्लग' में चली गई हैं। प्लग को खोलकर साफ किये बिना साइकिल नहीं चलेगी।" इस झुंझलाहट और छट-पटाहट में लगभग पन्द्रह-बीस मिनट गुज़र गये। दोनों में से किसी को भी यह न सूझा कि साइकिल को कुछ क़दम सड़क से परे ढकेल कर झाड़ियों में छिपा दें और अपनी जान बचाने के लिए भाग निकलें। विलम्ब का प्रत्येक पल हमें निश्चित गिरफ्तारी या पुलिस से मुठभेड़ की ओर ढकेला रहा था। वाइसराय की गाड़ी को घटना स्थल से नई-दिल्ली पहुंचने में छः-सात मिनिट से अधिक न लगने चाहिये थे और गाड़ी के स्टेशन पर पहुंचते ही पुलिस का तहकीकात के लिये घटना-स्थल की ओर दौड़ पड़ना अत्यन्त आवश्यक था। वही हुआ भी।

सड़क पर मोटरसाइकिल को ढकलते समय घने कोहरे में से बहुत से सिपाहियों के एक साथ कदम मिलाकर चलने की आहट आई "बस अब, रहने दो!"—मैंने भागराम से कहा—"पुलिस या फौज आ गई। तुम गाड़ी के उस तरफ हो जाओ। गोली चलने पर तुम बैठ जाना और साइकिल की आड़ ले अपने आपको बचाते हुए अधिक से अधिक आदमियों को गिराने की कोशिश करना। पहले मैं सामने से गोली चलाऊंगा।"

सिपाहियों के कदमों की आहट तेजी से हमारी ओर बढ़ रही थी। कोहरे और धुंध में से गारद की धुंधली-धुंधली झलक भी दिखाई दी।

उनका अफसर गारद से दो क़दम आगे चल रहा था। गारद के कन्धों पर राइफलें थीं। मैं तन कर सड़क पर एक ओर खड़ा हो गया कि गारद के बिल्कुल समीप आ जाने पर गोली चलाऊंगा ताकि निशाना चूके नहीं और पहल करके फटाफट दो-तीन को गिरा दूं।

आज उस बात को सोचने पर समझ आता है कि पुलिस से बचने का बहुत सीधा ढंग उस समय चुपचाप झाड़ियों में छिप जाना और गारद के गुज़र जाने पर दिल्ली की ओर चल पड़ना ही होता! खैर हुआ यह, गारद आठ ही दस कदम पर थी। आगे चलते हुये अफसर की नज़र मुझ पर पड़ चुकी थी। मैंने जेब में पड़े पिस्तौल को मज़बूती से थाम लिया। गारद दो कदम और आगे बढ़ी। सहसा अफसर ने ऊंचे और कड़े स्वर में हुक्म दिया—"आईज़ राइट!"

पिस्तौल थामे मेरा हाथ जेब से बाहर निकलता-निकलता ठिठक गया। मैं समझ गया कि हुक्म गोली चलाने का नहीं बल्कि सलाम करने का है। पल भर में मैं स्थिति समझ गया, अफसर ने मुझे संदिग्ध या अपराधी नहीं बल्कि अपने से बड़ा अफसर और भागराम को मेरा अरदली समझ लिया है। उसका ऐसा समझ लेना अस्वाभाविक भी नहीं था क्योंकि मेरी वरदी के कन्धों पर "मेजर" के पद के चिन्ह लगे हुए थे। शायद उसने समझा है कि मैं उससे पहिले ही मोटरसाइकिल पर घटनास्थल की ओर आ गया हूं। मैंने अफसराना गम्भीरता और कायदे से ठोढ़ी झुका कर गारद की सलामी स्वीकार कर ली। गारद मार्च करते हुए आगे बढ़ गई।

"खूब रहा"—मैंने भागराम को सम्बोधन किया—"फिर मोटरसाइकिल ढकेलो। देखें, आगे क्या होता है!" हम लोग बारीबारी से गाड़ी को दिल्ली की ओर ढकेलते गये। जेल के सामने पहुँच मैंने गाड़ी ढकेलने के लिए भागराम को ही दे दी क्योंकि सड़क पर आते-जाते लोग दिखाई देने लगे थे। हम लोग 'फैज़बाज़ार' में पहुँच गये। यहां कोतवाली के समीप ही एक मोटर और मोटरसाइकिल ठीक करने का कारखाना था। एक व्यक्ति रजाई मे सिकुड़ा कारखाने के बरामदे में पड़ा था। भागराम ने उसे कड़े स्वर मे पुकार कर जगाया और बोला—"कप्तान साहब का साइकिल खराब हो गया है। इसे चालू करके रक्खो। आदमी आकर ले जायगा।"

सूर्य उदय हो चुका था परन्तु बाज़ार में भीड़ न थी। हम

दोनों 'चांदनी-चौक' चले गये। अब मुझे और भागराम को भी बहुत थकावट अनुभव हो रही थी। चार मील मोटरसाइकिल ढकेली थी। पिछली रात भर सो नहीं पाये थे। मैं तो अड़तालीस घण्टे से अधिक समय से न सोया था, न कुछ खा सका था। पांव उठाना दूभर जान पड़ रहा था। कुछ खाकर शरीर में सामर्थ्य लाना आवश्यक समझा। हम दोनों उस समय के बहुत सम्मानित होटल 'मानसरोवर' में गये। भाग्य की बात. भगवती भाई ने मेरी जेब में दस-पंद्रह रुपये जबरदस्ती छोड़ दिये थे। भागराम ने सलाह दी—"कच्चे अन्डे खाकर खूब गरम दूध पीना ठीक होगा।" हम दोनों अलग-अलग मेजों पर बैठे क्योंकि अरदली और साहब का एक जगह बैठना उचित न था।

मुझे भूख तो तब भी नहीं मालूम हो रही थी। सिर चकरा रहा था और मुंह ऐसे कड़वा था मानो चिरायता पिया हो। मैंने ज़बरदस्ती छः कच्चे अंडे तोड़ कर निगल लिये और गरम गरम दूध पिया। कुछ देर होटल में विश्राम करते रहे परन्तु वहाँ कितनी देर बैठा जा सकता था? हम लोग बाजार में आ स्टेशन की ओर चलने लगे। देहली में अब हम लोगों का कोई स्थान न था। फौजी अफसर की वर्दी में मैं जाता भी कहाँ? जिसके यहाँ जाता वह स्थिति भांपकर घबरा जाता। भगवती भाई गाजियाबाद स्टेशन के वेटिंग रूम में हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे परन्तु वहाँ पहुँचने का साधन, मोटरसाइकिल धोखा दे गई थी। रेल गाड़ी से गाजियाबाद जाने का मतलब था, दिल्ली स्टेशन से गाड़ी पर सवार होना।

मेरे शरीर पर 'मेजर' की वरदी तो थी परंतु इस वरदी और मेरी फौजी टोपी पर लगे हुए पीतल के चिन्ह मुझे मुसीबत में डाल सकते थे। यह चिन्ह 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आरमी' की मोहर के आकार के थे और इनमें H. S. R. A. अक्षर स्पष्ट पढ़े जा सकते थे। वर्दी पर यह चिन्ह लगाने का अभिप्राय ही यह था कि हम आतंकवादी अपराधी के रूप में छिपकर काम नहीं कर रहे बल्कि स्वतन्त्रता के युद्ध में विदेशी सरकार से लड़ रहे हैं। अब संकट-स्थल से बचकर निकल आने पर यह चिन्ह ही आशंका का कारण थे। दूसरा उपाय भी नहीं था। इसी हालत में दिल्ली स्टेशन पर पहुँचा। मैं रोब और उपेक्षा का व्यवहार कर रहा था। भागराम ने मेरे लिए फ़स्टक्लास का और अपने लिए थर्डक्लास का टिकट ख़रीदा। मैं कदम

कदम पर संदेह किया जाने और पुलिस से गोली चलने की आशंका अनुभव कर रहा था परन्तु व्यवहार नितान्त स्वाभाविक बनाये था। आखिरी अड़चन गाजियाबाद जाने वाली गाड़ी के कमरे में क़दम रखने पर आई। एक गोरा सिपाही फ़र्स्टक्लास के बर्थ पर मजे में लेटा अखबार पढ़ रहा था। वह भला मेरी वरदी के विचित्र बिल्लों को कैसे न भाँपता ? गाड़ी में मेरे क़दम रखते ही उसने मेरी ओर तिरछी आखों से देखा और कूद कर एक दम खड़ा हो गया। सलाम किया और फर्स्टक्लास में लेटे हुए पकड़े जाने के भय और संकोच में सिर झुका बाहर चला गया।

गाड़ी दिल्ली स्टेशन से बहार निकल जाने पर आश्वासन हुआ कि फिलहाल तो बचे। गाजियाबाद स्टेशन पर गाड़ी लगभग १० बजे पहुँची होगी। मुझे देख भगवती भाई विस्मय से अवाक रह गये। मुझे ७ बजे से काफ़ी पहले ही पहुंच जाना चाहिए था। रास्ते भर मेरे मन में यही आशंका थी कि भगवती भाई ने ७ के बजाय ८ तक प्रतीक्षा की होगी। इसके बाद उन्हें चले ही जाना चाहिए था परन्तु वे वेटिंग-रूम में कुरसी पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे। मुझे देख आंखों ही आंखों में उन्होंने प्रश्न किया, कैसे या क्या ? मैंने हाथ के नकारात्मक सकेंत से उत्तर दिया—"कुछ भी नहीं।"

भगवती भाई को सन्देह हुआ था कि शायद हंसराज की बैटरी ने धोखा दिया। मैंने बताया कि विस्फोट तो बहुत जोर से हुआ परन्तु गाड़ी को शायद कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचा। बल्कि मोटरसाइकिल ही फेल हो गई। वहाँ से पैदल लौटना पड़ा और दिल्ली से गाड़ी में आये। मुझे मर गया समझ कर भगवती भाई के चेहरे पर मातम की जो मुर्दनी छा गई थी, वह मुझे देख और वास्तविकता जान कर दो मिनिट में दूर हो गई। मेरी पीठ पर हाथ मार मुस्करा कर उन्हों ने कहा—"Never mind. We will do it again (चिन्ता मत करो, फिर कोशिश करेंगें)।

भागराम सुबह सर्दी लग जाने से बहुत असुविधा अनुभव कर रहा था। उसे सीधे लाहौर भेज दिया कि इन्द्रपाल के यहाँ जाकर आराम कर सके। मैं और भगवती भाई फिर उसी पैसेन्जर गाड़ी में जा बैठे। गाड़ी हर स्टेशन पर ठहरती, धीमी चाल से मुरादाबाद की ओर जा रही थी। भगवती भाई सूट पहने हुए थे। मैंने फौजी वर्दी

उतार अपने साधारण कपड़े पहन लिये। हम दोनों का ही मन बहुत बुझा हुआ था। दोनों गाड़ी में चुपचाप लेटे रहे। हमारी गाड़ी के मुरादाबाद स्टेशन पर पहुँचते ही अखबार बेचने वालों की ऊंची पुकारें सुनाई दीं—"ताजा परचा। बड़े लाट की गाड़ी के नीचे बम चल गया! रेल की पटरी उड़ गई! स्पेशल ट्रेन का एक डब्बा उड़ गया! एक आदमी मारा गया!" हमें विस्मयपूर्ण उत्साह हुआ।

हमारी पैसेन्जर से एक या डेढ़ घन्टे बाद दिल्ली से चलने वाली एक्सप्रेस गाड़ी से घटना के बाद तुरन्त छपे अखबारों के विशेषांक हम से पहले ही मुरादाबाद पहुँच गये थे। यह एक्सप्रेस गाड़ी हमारी पसेन्जर को पीछे छोड़ आई थी। विशेषांक पढ़ा, मालूम हुआ कि बम विस्फोट वाइसराय की स्पेशलट्रेन के खाना खाने के कमरे के नीचे हुआ था। इस कमरे में केवल नीचे का लोहे का ढांचा ही बच रहा था शेष सब टुकड़े-टुकड़े होकर हवा में उड़ गया। रेल की पटरी का छ: फुट के लगभग टुकड़ा भी टूट कर दूर जा पड़ा था। गाड़ी बहुत तेज चाल में होने के कारण उस टूटी हुई जगह के ऊपर से खिंचती चली गई। वाइसराय का सेक्रेट्री खाना खाने के कमरे के साथ के ही कमरे में था। वह धमाके से बेहोश हो गया। एक बैरा दिल्ली समीप आती जान खिड़की खोल बाहर झांक रहा था। उसका मुँह जल गया। वाइसराय का कमरा विस्फोट की जगह से आगे निकल चुका था। वे धमाके से अपने बिस्तर में उछल पड़े। गाड़ी स्टेशन पर रुकते ही त्रिपालों से ढाँक दी गई ताकि गाड़ी को जख्मी हालत में देखने से जनता पर बुरा प्रभाव न पड़े। वाइसराय गाड़ी से उतरते ही अपने महल(गवर्नमेंट हाउस) में जाने से पहले, अपनी प्राण रक्षा के लिए भगवान को धन्यवाद देने गिरजाघर पहुँचे थे।

घटना की वास्तविकता जान हम लोगों की जान में जान आई। आपस में बात कर सन्तोष अनुभव किया कि यदि कोहरे के कारण इंजन दिखाई देना असम्भव न होता तो विस्फोट ठीक इंजन के सामने होता और पूरी गाड़ी तहस-नहस हो जाती। हम लोग मुरादाबाद में उतर गये और उसके बाद आने वाली 'देहरा-एक्सप्रेस' में कलकत्ते के लिये रवाना हो गये। घटना का समाचार हम से पहले कलकत्ते में पहुँच चुका था। सुशीला जी से मिले। यह जान कर कि हम लोग थोड़ा-बहुत काम कर आये हैं, उन की आंखें प्रसन्नता से चमक उठीं।

कलकत्ते में लाहौर से कांग्रेस अधिवेशन के समाचार आ रहे थे। वाइस-राय की गाड़ी पर आक्रमण के समाचार से कांग्रेस के अधिवेशन में इकट्ठा हुआ जन-समुदाय प्रसन्नता और उत्साह से बावला हो उठा।

गांधी जी ने कांग्रेस के अधिवेशन के आरम्भ में ही एक प्रस्ताव वाइसराय पर आक्रमण करने वाले लोगों की निन्दा, वाइसराय के प्रति सहानुभूति और उनकी प्राण रक्षा के लिय भगवान को धन्यवाद देने का स्वयं उपस्थित किया। गांधी जी के इस प्रस्ताव में वाइसराय पर आक्रमण करने वाले लोगों को कायर (coward) और उन के काम को जघन्य (destardly) कहा गया था। हम लोगों को गालियां देकर गांधी जी ने बहुत करूण शब्दों में अधिवेशन में उप-स्थित सदस्यों से प्रार्थना और अनुरोध किया कि वे उन के प्रस्ताव का विरोध किये बिना, उसे सर्व सम्मति से स्वीकार कर लें।

गांधी जी के प्रति जनता की अंधश्रद्धा, उनके व्यक्तित्व के प्रति असीम आदर और कांग्रेस नेताओं द्वारा गांधी जी की मान रक्षा की अनेक अपीलों के बावजूद जनता इस प्रस्ताव पर बौखला उठी। अधि-वेशन में उपस्थित १७१३ सदस्यों में यह प्रस्ताव केवल ८१ के बहुमत से ही पास हो सका। इस ८१ के बहुमत में भी कितने आदमियों को वास्तव में क्रान्तिकारियों के काम से विरोध था, यह अनुमान कर लेना कठिन नहीं। उस समय पंजाब में कांग्रेस की प्रमुख नेता श्रीमती सरलादेवी चौधरानी ने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया था कि वे ऐसे बीसीयों आदमियों को जानती हैं, जिन्हों ने गांधी जी के नाराज़ हो जाने की आशंका से ही प्रस्ताव के पक्ष में अपना मत दिया है।

हम लोगों के सामने अब फिर दल से सम्बन्ध जोड़ने और अपने लिए एक नया स्थान जमाने का प्रश्न आया। इस बार मैं कलकत्ते के 'सेन्ट्रल-एवेन्यू' में श्री सुरेन्द्र विद्यालङ्कार के यहां ठहराया गया था। मैं सुरेन्द्रजी को देखते ही पहचान गया। वे गुरुकुल कांगड़ी में मुझसे दो-तीन कक्षा ऊपर पढ़ रहे थे। मैंने अपना वास्तविक नाम-परिचय देना आवश्यक न समझा। उन्हें केवल इतना बता दिया गया था कि मैं क्रान्तिकारी हूँ और दिल्ली की घटना के कारण मुझे फरार हो जाना पड़ा है। भगवती भाई तीन-चार दिन बाद कलकत्ते से लखनऊ के लिए चल दिये। अब हमारा विचार लखनऊ में अड्डा जमाने का था। वाइसराय की गाड़ी के विस्फोट की आयोजना में मेरे स्वास्थ्य पर

काफ़ी तनाव पड़ा था। इसलिए उन्होंने मुझे चार-पांच दिन सुरेन्द्र जी के गृहस्थ में विश्राम के लिए छोड़ दिया।

निश्चित दिन, पूर्व निश्चित गाड़ी से मैं लखनऊ पहुँचा। भगवती भाई स्टेशन पर मिल गये, उन्होंने लखनऊ के 'अमीनाबाद पार्क' में, सालोमन कम्पनी की दुकान के पास, ऊपर की मंजिल में एक कमरा किराये पर ले लिया था। उस समय लखनऊ की बस्ती आज जैसी घनी न थी। हमने कमरा दस-ग्यारह रुपये महावार पर लिया था। आज वह शायद १००) में भी कठिनाई से मिलेगा। मैंने आते ही एक साइनबोर्ड बनवा लिया "सेनिटरी सपलायर्स" और उसे दोमंजिले में अपने कमरे के सामने लटका दिया। पड़ोसियों ने और नीचे के दुकानदारों ने इस साइनबोर्ड का कुछ अर्थ न समझा। प्रश्न किया, आप लोग क्या काम करते है? उन्हें समझाया कि हमारा सामान प्रायः अस्पतालों, कारखानों, स्कूल-कालिजों और रईसों की कोठियों में ही लग सकता है। उन्हें सेनिटरी के सामान के सचित्र सूचीपत्र भी दिखाए। उन दिनों 'फ्लश सिस्टम' और 'वाशबेसिन' आदि लखनऊ-अमीनाबाद के लोगों के लिए भी अद्‌भुत वस्तुएं थीं। मैं कलकत्ते से चलते समय सेनिटरी का सामान बेचने वाली कम्पनियों से ऐसे समान के सूचीपत्र लेता आया था।

रहने की नयी जगह तो हम लोगों ने बना ली। अब प्रश्न था, दल और भैया का निर्णय न मानने के बाद उन के सामने जवाब-देही का। अपनी दृष्टि में हम लोग दल का निर्णय न मानने के लिए लज्जित नहीं थे। पिछले दो महीने के अनुभव से यह भी जान चुके थे कि भैया का मिजाज़ काफ़ी गर्म है। प्रश्न यही था कि बदमज़गी का अवसर आये बिना मामला सुलझ जाये और भविष्य में सहयोग से काम हो सके। इतना तो निश्चित ही था कि पहली मुलाकात में भैया एकदम बिगड़ उठेंगे। मैं और भगवती भाई एक साथ ही जाकर मिलते तो वह दोनों से ही बिगड़ते इसलिए उचित जंचा कि पहले मैं जाकर मिलू और परिस्थिति भगवती भाई को बता दूँ।

मैं दो जनवरी के दिन दिल्ली पहुँचा। और न्यू हिन्दू होस्टल' में साथी प्रो० नन्दकिशोर निगम के यहाँ कैलाशपति का पता लेने गया। अव-सरवश वहाँ भैया ही मिल गये। दूसरे साथियों के सामने उन्होंने मुझ से साधारण गम्भीरता से बात की। इसी से समझ गया कि उनके मन में नाराजगी है। साधारणतः मुलाकात के समय वे मुस्कराहट और

आत्मीयता से ही सम्बोधन करते थे। बात करने के लिए वे मुझे यमुना किनारे एकान्त में ले गये और पूछा—"निर्णय के विरुद्ध तुम लोगों ने विस्फोट क्यों किया ?"

मैंने बहुत स्पष्ट बात की—"......जहाँ तक निर्णय के विरुद्ध काम करने का प्रश्न है मैं अपराधी हूँ। इस विषय में दल जो कुछ फैसला करेगा, मुझे शिरोधार्य होगा। भगवती भाई ने मेरे इस कार्य का विरोध किया था परन्तु मैंने उनकी भी बात नहीं मानी क्योंकि मेरे विचार में इस घटना का राजनैतिक महत्व, विस्फोट कांग्रेस अधिवेशन से पहले करने में ही था। लाहौर कांग्रेस में जनता पर इस घटना का जो प्रभाव पड़ा है, उससे मेरा विचार ठीक ही प्रमाणित हुआ ......"

"तुम्हारे विचार का क्या मतलब ?"—भैया अपना क्रोध सम्भालने के लिए ओंठ काटते हुए बोले—"तुम्हारा विचार क्या दल के निर्णय से भी बड़ा हो गया ? अगर तुम्हें ऐसा ही करना है तो दल में तुम्हारा क्या काम ? जाओ, जो करना है करो! यह तुम्हारी बेजा हरकत थी कि जब इस प्रश्न पर विचार हो रहा था, तुम बहाना बना कर उठ गये। जैसे हम सब लोग मूर्ख हों और व्यर्थ बकवास कर रहे हों..."—उनकी आँखें क्रोध में लाल हो गईं।

मैंने विनय से कहा—"मीटिंग से उठ आने का कारण विचार में भाग लेने के प्रति उपेक्षा नहीं थी। असली बात यह थी कि बिजली का तार खरीदना था। देर होने से दुकानें बन्द हो जातीं।" मैंने यह भी कहा—"एक कारण यह भी था कि घटना दो बार स्थगित हो चुकी थी। मुझे आशंका थी कि भगवती भाई को छोड़कर हमारे दूसरे साथी यह न समझने लगें कि मैं जान बचाने के लिए बहाना कर रहा हूं। मैंने दल के निर्णय के विरुद्ध काम किया है। यदि आप भविष्य में मेरा विश्वास करके क्षमा कर सकते हैं तो क्षमा कर दीजिए वरना आप या दल जैसा उचित समझें!"—मैंने जेब से पिस्तौल निकाल कर उनके सामने रख दिया—"मैं दल के सामने आत्मसमर्पण करता हूं।"

भैया ने क्रोध में ओंठ काटकर आँखों में छलक आये आँसू रुमाल से पोंछ लिये। मेरा पिस्तौल मुझे लौटाते हुए बोले—"रखो रखो इसे!" भैया का यह स्वभाव ही था कि अपने आदमियों पर आया क्रोध दबाने से उनकी आँखों में आँसू आ जाते थे। क्रोध में उन की आँखें लाल तो जरूर हो जाती थीं परंतु वह आपे से बाहर न हो जाते थे। मैंने

विचार प्रकट किया कि गांधी जी और कांग्रेस ने वाइसराय पर आक्रमण की जो निन्दा और आलोचना की है, उसका उत्तर देना आवश्यक है। जनता के सामने अपने विचारों और कार्य-क्रम को रखने का यह बहुत अनुकूल अवसर है। कांग्रेस ने २६ जनवरी का दिन पूर्णस्वराज्य की घोषणा के लिए निश्चित किया है। हमें भी उसी दिन अपनी घोषणा प्रकाशित कर उसे देश भर में बांटने की योजना करनी चाहिये। भगवती भाई से मैं इस बारे में बात करके गया था। मैंने यह भी कहा कि वे उचित समझें तो मैं और भगवती भाई एक विस्तृत चीज़ इस बारे में लिख डालें। वे और दूसरे साथी उसे स्वीकार कर लें तो उसे छपवा लिया जाये। भैया ने इस बात का अनुमोदन बहुत उत्साह से किया और मेरे साथ ही लखनऊ चलने के लिए तैयार हो गये।

अमीनाबाद के मकान में हम लोगों ने इस घोषणा के बारे में खूब विचार कर मूल विषय निश्चित कर लिये। उन्हीं दिनों गांधी जी ने अपने साप्ताहिक पत्र 'यंग इंडिया' में एक लेख 'Cult of The Bomb' (बम का मार्ग) लिखा था। हम लोगों ने अपनी घोषणा का शीर्षक रखा, 'Philosophy of the Bomb' (बम का दर्शन)। इस घोषणा की मूल बातों को यहां उद्धृत कर देना अप्रासंगिक न होगा।

× × ×

आठ

बम का दर्शन

(THE PHILOSOPHY OF THE BOMB)

"वाइसराय पर आक्रमण की घटना के बाद कांग्रेस और गांधीजी ने क्रान्तिकारियों की आलोचना और निन्दा का एक बवंडर खड़ा कर दिया है। क्रान्तिकारी अपने विचारों की आलोचना और विचार-विनिमय से नहीं कतराते परन्तु हमारे विरुद्ध दुष्टचार द्वारा जो लांछन लगाये जा रहे हैं, उन का निराकरण करना और जनता के निर्णय के लिये वास्तविक स्थिति प्रकट करना आवश्यक है।

"क्रान्तिकारियों पर हिंसात्मक होने का लांछन लगाया जाता है। हिंसा और अहिंसा का अर्थ क्या है? हिंसा का अर्थ है, शारीरिक बल द्वारा अन्याय करना। क्रान्तिकारी ऐसा नहीं कर रहे हैं। साधारणतः अहिंसा का अभिप्राय समझा जाता है, स्वयं कष्ट उठा कर अपने प्रतिद्वन्दी का हृदय आत्मिक शक्ति द्वारा बदल कर वैयक्तिक और राष्ट्रीय उद्देश्य को पूरा करना। क्रान्तिकारी भी अपने विश्वास के अनुसार न्याय की मांग करते हैं, उसके लिये अनुरोध और तर्क करते हैं। वे उद्देश्य के लिये अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति का पूर्ण उपयोग करते हैं और अपने उद्देश्य के लिये कष्ट उठाने या बलिदान हो जाने में किसी से पीछे नहीं हैं। क्रान्तिकारियों के विचार और व्यवहार से आप सहमत हों या असहमत परन्तु उनके व्यवहार को हिंसा कह देना अनुचित है। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिये आग्रह करना। सत्य के लिए आग्रह केवल आत्मिक बल से ही क्यों किया जाय? शारीरिक बल से भी क्यों नहीं? क्रान्तिकारी अपने विश्वास के अनुसार सत्य, न्याय और देश की स्वतंत्रता के लिये कोई भी कोर कसर छोड़ देना उचित नहीं समझते। वे अपनी सम्पूर्ण आत्मिक, नैतिक और शारीरिक शक्ति को उद्देश्यपूर्ति में लगा देते है। गांधी जी तथा कांग्रेस के मार्ग में और क्रान्तिकारियों के मार्ग में हिंसा और

अहिंसा का भेद नहीं, भेद इस बात का है कि गांधीवादी उद्देश्य पूर्ति के लिए केवल आत्मिक शक्ति का ही प्रयोग करना चाहते हैं और क्रान्तिकारी अपनी सभी प्रकार की शक्ति और सम्भव उपायों का।

"क्रान्तिकारियों का विश्वास है कि देश की जनता की मुक्ति केवल क्रान्ति द्वारा ही सम्भव है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय केवल जनता और विदेशी सरकार में सशस्त्र संघर्ष ही नहीं है। हमारी क्रान्ति का लक्ष्य एक नवीन न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है। इस क्रान्ति का उद्देश्य पूंजीवाद को समाप्त कर श्रेणीहीन समाज की स्थापना करना और विदेशी और देशी शोषण से जनता को मुक्त कर आत्म निर्णय द्वारा जीवन का अवसर देना है। इसका उपाय शोषकों के हाथ से शासनशक्ति लेकर मजदूर श्रेणी के शासन की स्थापना ही है।

"देश का युवक वर्ग आज क्रान्ति के द्वार पर खड़ा है। वह मानसिक दासता और साम्प्रदायिक रूढ़िवाद की कड़ियों को तोड़ फेंकना चाहता है। वह क्रान्ति के 'दर्शन' की ओर बढ़ रहा है। उसकी यह प्रवृत्ति उसमें विदेशी दासता के प्रति घृणा और संघर्ष की आग पैदा कर रही है। वह अपनी इस आग में अन्यायी और शोषक को भस्म कर देना चाहता है। अन्याय और शोषण के प्रति युवक का विद्रोह ही आतंकवाद का रूप ले रहा है। आतंकवाद सार्वजनिक क्रान्ति का पहिला कदम मात्र है। इसे पूर्ण क्रान्ति नहीं कहा जा सकता परन्तु इसके बिना क्रान्ति आरम्भ भी नहीं हो सकती। संसार भर की क्रान्तियों का इतिहास इसी मार्ग पर चला है। आतंकवाद अन्यायी शोषक के हृदय को दहलाता है और पीड़ित तथा दलित जनता को प्रतिकार द्वारा आत्मविश्वास, उत्साह और साहस देता है। हमारा लक्ष्य आतंकवाद नहीं है। आतंक का मार्ग क्रान्ति में परिणित होगा और क्रान्ति सर्वसाधारण जनता की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता में परिणित होगी।

"क्रान्तिकारी क्रान्ति के मार्ग में ही विश्वास करते हैं। वे देश की जनता को इसी मार्ग पर ले जाना चाहते हैं और इसी के लिये प्रकट और गुप्त रूप से प्रयत्न कर रहे हैं। क्रान्तिकारियों के सामने संसार भर की दलित और शोषित जातियों की मुक्ति के संघर्ष मार्गदर्शक के रूप में मौजूद हैं। शोषितों और दलितों ने निरन्तर संघर्ष से सदा शोषकों को ही पराजित किया है। भारत के क्रान्तिकारी भी अपने लक्ष्य में अवश्य सफल होंगे। कांग्रेस का मार्ग क्या रहा है? आज कांग्रेस अपना

लक्ष्य 'स्वराज्य' से बदलकर 'पूर्ण स्वतन्त्रता' घोषित कर रही है। अब कांग्रेस से यही आशा की जानी चाहिये थी कि वह विदेशी सरकार से युद्ध की घोषणा करे परन्तु कांग्रेस विदेशी सरकार से लड़ने वाले क्रान्तिकारियों पर ही चोट कर रही है। कांग्रेस की पहली चोट क्रान्तिकारियों द्वारा २३ दिसम्बर १९२९ को वाइसराय पर आक्रमण की निन्दा है। यह प्रस्ताव गांधी जी ने पेश किया और इसे पास कराने के लिए उन्हों ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। दस वर्ष से गांधी जी और कांग्रेस जनता को प्रेम और सद्भावना द्वारा विदेशी सरकार के हृदय परिवर्तन का उपदेश देते आ रहे हैं। गांधी जी देश की शत्रु विदेशी सरकार के प्रतिनिधियों को तो मित्र कह कर सम्बोधन करते हैं परन्तु देश की स्वतन्त्रता के लिए अपनी जान पर खेल जाने वाले क्रान्तिकारियों को 'कायर' और उन के काम को 'जघन्य' कह कर गालियां देते हैं। गांधी जी का यह प्रस्ताव कांग्रेस में किस प्रकार पास कराया गया? जनता को गांधी जी के रूठ जाने और कांग्रेस छोड़ देने की धमकियाँ दी गईं। तिस पर भी १७१३ की उपस्थिति में से गांधी जी के प्रस्ताव को केवल ८१ का ही बहुमत मिल सका। यह घटना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जनता किसके साथ है। गांधी जी के प्रस्ताव की यह दशा उस कांग्रेस के अधिवेशन में हुई जो अहिंसा को सिद्धान्त रूप से माने हुए हैं। देश की विराट जनता का विचार क्या है? यह समझ लेना कठिन नहीं है।

"गांधीजी ने कांग्रेस में दिये अपने भाषण को 'दी कल्ट आफ बम' के नाम से अपने पत्र यंग इण्डिया में भी प्रकाशित किया है। यह लेख तीन अंशों में हैं। एक—उन का विश्वास, दूसरा—उन की राय और तीसरा—उनका तर्क। गांधी जी के विश्वास के विषय में हमें कुछ नहीं कहना क्योंकि विश्वास का सम्बन्ध युक्ति से नहीं होता। हम उन की राय और तर्कों पर ही विचार कर सकते हैं। गांधी जी का कहना है कि उन के दस वर्ष के राजनैतिक नेतृत्व मे देश की जनता ने अहिंसा के सिद्धान्त को अपना लिया है। देश की जनता गांधी जी के प्रति श्रद्धा और भक्ति प्रकट करती है, इसमें सन्देह नहीं परन्तु इस का अर्थ यह नहीं कि जनता उन के राजनैतिक विचारों की अनुगामी है। जनता अधिकांश में अशिक्षित है और राजनैतिक दृष्टिकोण से विचार ही नहीं करती। वह गांधी जी को एक आध्यात्मिक

और धार्मिक महापुरुष के रूप में देखती है और गांधी जी के विचारों को समझने की चिन्ता ही नहीं करती। गांधी जी न तो जनता की अवस्था और न उसके विचार जानते हैं। गांधी जी का सम्बन्ध जनता से समूह के रूप में, व्याख्यानों की वेदी से दर्शन देकर होता है। कितने वर्षों से उन्होंने कभी पीड़ित किसानों-मजदूरों और भूखे मरते सफेद-पोशों के बीच बैठ कर न बात की है और न उन की भावना को समझा है। हमारे देश की जनता संसार के दूसरे मनुष्यों के समान ही है। अपने शत्रु से प्रेम करने के जादू को वह नहीं समझती। जनता जिससे प्रेम करेगी उसका साथ भी देगी। जिससे दुख पायेगी, उससे घृणा करेगी और लड़ेगी। लड़ाई प्रेम से नहीं घृणा से होती है। अन्याय और पाप से लड़ने के लिये उस से प्रेम नहीं घृणा करना आवश्यक है। हमारे देश की जनता इसी प्राकृतिक नियम को मानती है।

"गांधी जी का दावा है कि प्रेम द्वारा शत्रु को जीतने के सिद्धान्त में उनका विश्वास प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। हम पूछना चाहते हैं, अब तक उन्हों ने प्रेम से देश के कितने शत्रुओं का हृदय परिवर्तन कर लिया है? क्या उन्हों ने ओडवायर, डायर, रीडिंग या इरविन; किसी का भी हृदय जीत कर उन्हें भारत का मित्र बना लिया है? उन का दावा तो है पूरे ब्रिटिश राष्ट्र का हृदय जीत लेने का?

"यदि वाइसराय की गाड़ी के नीचे बम का विस्फोट ठीक ढंग से हो जाता तो गांधी जी की आशंका के अनुसार क्या अनर्थ हो जाता? वाइसराय जख्मी हो जाते या मर जाते और वाइसराय से भारत के राजनैतिक नेताओं की मुलाक़ात न हो पाती। इस मुलाकात में हुआ क्या? देश के राजनैतिक नेता औपनिवेशिक स्वराज के लिए वाइस-राय के सामने जाकर एक बार और गिड़गिडाये। पिछले वर्ष कलकत्ता में सरकार को संघर्ष की चुनौती दे देने के बाद हमारे नेताओं का सरकार के सामने गिड़गड़ाना क्या उचित था? यदि यह न होता तभी अच्छा था।

"यदि इस विस्फोट से लाहौर और मेरठ षड़यन्त्रों के मामलों और भुसावल के दमन के लिए जिम्मेवार भारत का शत्रु मर जाता तो अच्छा ही था। गांधी जी और नेहरू अपने आप को चतुर राजनीतिज्ञ समझते हैं परन्तु कूटनीति में उन्हें वाइसराय से मुंह की ही खानी पड़ी। साइमन कमीशन के विरोध में जो राजनैतिक एकता भारत के सब दलों

में हो गई थी, वह इस वाइसराय ने कायम न रहने दी। स्वयं कांग्रेस ही आज दो दलों में बटी हुई है। भारत के इस दुर्भाग्य के लिए मौजूदा वाइसराय की कूटनीति ही जिम्मेवार है लेकिन गांधी जी इस आदमी को 'भारत का मित्र' बताते हैं।

"यदि गांधी जी समझते हैं कि क्रान्तिकारियों को कांग्रेस से कोई आशा और सम्बन्ध नहीं तो यह हमारे साथ अन्याय है। हम स्वीकार करते हैं कि कांग्रेस ने देश की अचेतन जनता में स्वतन्त्रता की इच्छा जगाई है परन्तु कांग्रेस का इतना ही काम नहीं। हमें उससे बड़ी बड़ी आशाएं हैं लेकिन कांग्रेस पर समझौतवादी नेताओं का आधिपत्य काग्रेस की शक्ति को व्यर्थ कर रहा है। अहिंसा की नीति विदेशी शत्रु से समझौता करने का बहाना बन रही है। इस वर्ष कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य को स्वीकार किया है। क्रान्तिकारी पचीस वर्ष से इसी लक्ष्य के लिये संघर्ष करते चले आ रहे हैं। हमें आशा है कि कांग्रेस मुक्ति के सच्चे मार्ग को अपनायेगी।

"क्रान्तिकारियों को सुधारों के लिए लालायित बताना उनके साथ सब से बड़ा अन्याय है। हम सुधारों के नहीं बल्कि व्यवस्था बदल देने की मांग करते हैं। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने सुधारों के खिलौने क्रान्तिकारियों की मांगों से नहीं दिये। यह खिलौने ब्रिटिश सरकार ने अपने उन पिट्ठुओं को रिझाने के लिये दिये हैं जो जनता का दमन करने में सरकार का साथ देते रहे हैं। कांग्रेस के होमरूल, स्वायत्त शासन, उत्तरदायी स्वायत्त शासन, पूर्ण उत्तरदायी शासन और औपनिवेशिक स्वाराज्य की मांगें विदेशी दासता के ही नाम हैं। क्रान्तिकारी इन्हें अपना लक्ष्य नहीं मानते। वे केवल पूर्ण स्वाधीनता में विश्वास रखते हैं और उसी के लिए बलिदान होते आये हैं।

"गांधी जी का दावा है कि जनता में दिखाई देने वाली जागृति का श्रेय कांग्रेस के असहयोग के कार्यक्रम के साथ-साथ अहिंसात्मक नीति को है। यह धोखा है। जनता में जागृति सदा संघर्ष से आती है। रूस की जनता जागृति के मार्ग पर संघर्ष द्वारा ही आगे बढ़ी, अहिंसा की नीति से नहीं। सचाई तो यह है कि अहिंसा के बहाने समझौता-वादी नीति ने कांग्रेस के असहयोग कार्यक्रम को भी असफल कर दिया। अहिंसात्मक संघर्ष की नीति एक नया आविष्कार है जिसकी सफलता कभी प्रमाणित नहीं हुई। दक्षिणी अफरीका में अहिंसात्मक संघर्ष

असफल रहा और भारतवर्ष में भी इस नीति द्वारा एक वर्ष में स्वराज्य पा लेने की प्रतिज्ञा मजाक ही बनी। बारदौली में इस नीति ने किसानों के आन्दोलन को असफल कर दिया। सब जगह से असफल होने वाली इस नीति ने देश के भाग्य को बलिदान कर देश के साथ विश्वासघात किया है।

"गांधीजी ने देश की जनता को समझाया है कि क्रान्तिकारियों के साथ किसी प्रकार की सहानुभूति न प्रकट की जाय और न उन्हें कोई सहायता दी जाये ताकि क्रान्तिकारियों का 'भ्रम' दूर हो! गांधी जी जनता की भावना को समझने का दावा करते हैं परन्तु वह क्रान्तिकारियों की भावना को नहीं समझते। क्रान्तिकारी अपनी जान की बाजी लगा कर अपने उद्देश्य के लिए आगे बढ़ते हैं। वह 'शाबाश'! और 'जय जयकार' के नारों की परवाह नहीं करते। वह अपने देश की जनता और अपने उद्देश्य के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए निन्दा और कठिनाइयों की चिन्ता नहीं करते! उन्हें भरोसा है अपने कार्यक्रम की ठोस सचाई पर। वह बलिदान और सफलता की कसौटी पर पूरे उतरते हैं और यह असम्भव है कि जनता उनकी सचाई को न पहचाने!

"हम अपने देश के नवयुवकों, मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों से अनुरोध करते हैं कि वे देश की आजादी के झन्डे के नीचे इक्ट्ठे होकर हमारा साथ दें! देश में ऐसी व्यवस्था लाने का प्रयत्न करें जिस में राजनैतिक और सामाजिक दासता और आर्थिक शोषण असम्भव हो जाए!" अहिंसा के नाम पर समझौतावादी नीति को ठोकर मार दीजिए! हमारी संस्कृति और गौरव का कोई अर्थ उस समय तक नहीं होगा जब तक हम अहिंसा के नाम पर विदेशी दासता के सम्मुख सिर झुकाये रहेंगे!

क्रान्ति चिरंजीवी हो!

कर्तारसिंह
प्रधान
हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन"

यहां 'फिलासफी औफ दी बम' का बहुत संक्षिप्त अनुवाद दिया गया है। यह घोषणा अंग्रेजी के महीन अक्षरों के फुलस्केप कागज के चार पृष्ठों में थी। इसे तैयार करने में और छपवाने में कई दिन लग गये। छपवाई का प्रबन्ध भैया ने किया था। अपने क्रान्तिकारी काम

के विस्तार के लिए प्रेस का महत्व भैया खूब समझते थे। आवश्यक चीजों को यथेष्ट मात्रा में गुप्त रूप से छपवाने का प्रबन्ध उन्हों ने काफी अच्छा किया हुआ था। जैसे उन्हें बम ढालने के लिए अपना कारखाना बना लेने की धुन सवार थी वैसे ही अपना गुप्त प्रेस बना लेने की लगन भी थी। उस समय हमारा छपाई का काम कानपुर में ही होता था। यह दिन हम लोगों ने अमीनाबाद के मकान में ही गुजारे। भोजन बनाने का प्रबन्ध नहीं था। भैया और भगवती भाई दोनों प्रायः 'गुईन रोड' पर 'शुद्ध महाबीर हिन्दू होटल' में भोजन कर आते थे। एक तो मेरा पेट खराब था, दूसरे 'महाबीर हिन्दू होटल' के रिवाज के अनुसार पटरे पर पालथी मार कर भोजन करने में मुझे विशेष आनन्द न आता था। पतलून पहन कर पालथी से बैठने में असुविधा भी होती है। धोती मेरे पास थी नहीं। मैं अमीनाबाद में एक छोटे से मुस्लिम होटल से डबल रोटी मक्खन और पाव भर टमाटर ले आता था। उन दिनों लखनऊ में टमाटर शायद दो पैसे में सेर मिलते थे। एक छोटा स्टोव चाय बनाने के लिये ले लिया था। जमे हुए विलायती दूध के डिब्बे भी उन दिनों बहुत सस्ते थे। शायद तीन आने में एक डिब्बा मिलता था जो चार-पाँच दिन चल जाता। जब मैं डिब्बे में से दूध निकालने लगता तो उसकी तारें सी बंध जातीं। उन्हें देख भैया नाक सिकोड़ कहते—"छी-छी! यह क्या खाया करता है?" एक बार मैंने जमा हुआ दूध डबल रोटी पर लगा एक टुकड़ा खाने का आग्रह भैया से किया। बहुत "ना ना" कर उन्हें ने अनिच्छा से टुकड़ा खाया और फिर माथे पर तियोरियां चढ़ा कर बोले—"वाह पट्ठे, यह मजे हैं?" और उन्हें ने डिब्बा ही खत्म कर दिया। इसके बाद जब भी मैं नया डिब्बा लाता, भैया उसे झपट कर भगवती भाई को पुकारते "आओ, बाबू भाई आओ, रबड़ी खिलायें"—और दोनों ब्राह्मण पूरा डिब्बा चाट जाते। दोनों को ही मीठे का बहुत शौक था।

जनवरी के तीसरे सप्ताह में आजाद ने दल के खास कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक कानपुर में बुलाई। प्रयोजन था कि नयी केन्द्रीय समिति बना कर संगठन के लिए क्षेत्र और काम बाँट दिये जायँ। यह बैठक शायद 'रामनारायण के बाजार' के एक मकान की ऊपर की मंजिल में हुई थी। मकान पुराने ढंग का था। बिजली नहीं थी। भैया हमें लखनऊ से संध्या की गाड़ी से लिवा ले गये थे। तंग जीने में उनके दो

विश्वस्त साथी रिवाल्वर लिए पहरा दे रहे थे। इस सभा में आजाद, भगवतीचरण, वीरभद्र, कैलाशपति और मेरे साथ एक और भी आदमी था जिसे मैं देखते ही पहचान गया और आश्चर्य भी हुआ। यह थे, आजकल यू० पी० समाजवादी दल के एक प्रमुख नेता सेठ दामोदर-स्वरूप। सेठ जी ने भी मुझे पहचान लिया।

सेठ जी से मेरे पूर्व परिचय की कहानी भी अद्भुत थी। सम्भवतः १९२६ या २७ की बात है। आनन्द स्वामी (कृष्ण जी) ने देहरादून और मंसूरी बीच डाक्टर केशवचन्द्र शास्त्री के बंगले और औषधालय के साथ खाली पड़ी बारकों में 'शक्ति आश्रम' चालू किया था। प्रयोजन था, नौजवानों को व्यायाम और राष्ट्रीय भावना की शिक्षा देना। स्वामी जी ने मुझे भी बुला लिया था। प्रकट में मैं नवयुवकों को लाठी, गतका, बिन्नौट, और जुजुत्सु की शिक्षा देता था और बातचीत में उन्हें क्रान्तिकारी कार्यक्रम की ओर आकर्षित करने की चेष्टा करता। डाक्टर शास्त्री प्राकृतिक चिकित्सा करते थे। उन के रोगी प्रायः बड़ी-बड़ी फीसें दे सकने वाले अमीर आदमी ही होते थे परन्तु एक रोगी ऐसा था जिसे उन्होंने सहानुभूति के कारण ही अपने यहां रख लिया था। यह थे सेठ दामोदरस्वरूप। सेठ जी काकोरी-षड्यन्त्र के मामले में गिरफ्तार होकर मुकद्दमे की हालत में जेल में बहुत बीमार हो गए थे। उनका रोग डाक्टरों की राय में असाध्य था इसलिए सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया। रोग की उस अवस्था में सेठ जी को शास्त्रीजी ने चिकित्सा और उपचार के लिए अपने यहां आश्रय दिया था।

शास्त्री जी के औषधालय में क्रान्तिकारी रोगी के होने की बात सुनकर मैं सेठ जी को देखने के लिए गया। बिस्तर पर उनका शरीर चमड़ी से मढ़े नरकंकाल जैसा ही था। उठने-बैठने की बात क्या, बिना सहायता वे करवट भी न ले सकते थे। उन्हें कुछ भी पचता न था। कभी किसी फल का रस निचोड़ कर, कभी दूध फाड़ कर उस का पानी उन्हें दिया जाता था। वह भी प्रायः उनके पेट मे न टिक पाता। सेठ जी के क्रान्तिकारी उद्देश्य के प्रति आदर और उनके दारुण कष्ट के प्रति सहानुभूति के कारण मैं अपने सन्तोष के लिए उनकी सेवा करने लगा। मुझ से पहले भी एक व्यक्ति उनकी काफी सेवा कर रहा था। यह थीं, एक अमेरिकन महिला-डाक्टर शास्त्री की मित्र और मेहमान मिसेज फ्रेडा, उड़ीसा के एक बड़े ताल्लुकदार श्रीयुत दास की धर्मपत्नी।

सेठ जी का दारुण कष्ट देख कर फ्रेडा की आंखों में आंसू आ जाते। यह जान कर कि सेठ जी के इस रोग का कारण राजनैतिक बंदी के रूप में जेल जाना था, फ्रेडा उन का आदर भी करने लगीं। फ्रेडा जिस निःसंकोच और आत्मीय भाव से सेठ जी के पूरे शरीर को नित्य गर्म पानी से पोंछ कर बिस्तर की रगड़ से जख्मी हो गई उन की पीठ पर पाउडर आदि लगा, कपड़े बदला विस्तर संवार देती थी उससे सभी लोग उन्हें करुणामयी देवी समझ कर श्रद्धा करने लगे थे। एक दिन शक्ति आश्रम की ओर से की गई सार्वजनिक सभा में कुछ वक्ताओं ने फ्रेडा की मानवीय करुणा और भारत के प्रति सहानुभूति की प्रशंसात्मक चर्चा भी कर दी।

दूसरे दिन से डाक्टर शास्त्री की अमेरिकन धर्मपत्नी और उन की साली मावेल ने भी सेठ जी की सेवा में हाथ बटाना आरम्भ कर दिया। सेवा के लिए नया उत्साह पाई हुई इन दोनों महिलाओं ने फ्रेडा को अपना प्रतिद्वन्दी मान लिया। फ्रेडा की इच्छा थी कि रोगी की सेवा का काम आरम्भ किया है तो निबाहती रहें। उन्हें शायद रोगी से कुछ ममता भी हो गई थी। मिसेज शास्त्री और उन की बहन चाहती थीं कि इस पुण्य कार्य को वे ही करें। दोनों की प्रतिद्वन्दिता बढ़कर विकट झगड़े का रूप ले बैठी। इस झगड़े की लपेट में थोड़ा बहुत मैं भी फंसा। मिसेज.शास्त्री और मावेल फ्रेडा की अपेक्षा भी अधिक ममता से सेठ जी के पास घन्टों बैठी रहने लगीं और उन्हें समझातीं—"तुम हमारे मेहमान हो, मेरा पति तुम्हारी चिकित्सा कर रहा है इसलिये तुम्हें किसी दूसरे से सेवा नहीं करानी चाहिए।" मैं प्रायः सेठ जी के समीप रहता था इसलिए उन्हों ने मुझे भी शिकायत सुनाने के विश्वास में ले लिया और मुझसे भी फ्रेडा की शिकायत शुरू की—"यह कैसी कृतघ्न औरत है, हमारे घर में पड़ी है और हमें अपने मेहमान की सेवा करने का अवसर नहीं देती और इस मौके से अपनी प्रशंसा और यश कमाती है। यह हमारा अधिकार है, इसका नहीं। हमारा और सेठ जी का मित्र होने के नाते तुम्हारा यह कर्तव्य है कि मैं फ्रेडा को सेठ जी की सेवा न करने दूं।"

दूसरी ओर फ्रेडा अपना दुख सुनाती—"इन औरतों को बीमार से कोई सहानुभूति नहीं। ये रोगी की शुश्रुषा और परिचर्या का ढंग नहीं जानती। मैंने तो नर्स का काम सीखा हुआ भी है, मेरे पास

सर्टीफिकेट भी है। इन औरतों को केवल मेरी प्रशंसा से ईर्ष्या हो रही है। मुझे प्रशंसा की आवश्यकता नहीं। मैं तो रोगी की विशेष कर अपने देश के लिए त्याग करने वाले रोगी या व्यक्ति का यथासम्भव आदर और सहायता करना अपना मानवीय कर्तव्य समझती हूँ। तुम सेठ जी के मित्र हो तुम्हारा यह कर्तव्य है कि उन औरतों को समझाओ कि इस मामले में व्यर्थ झगड़ा न करें।"

सेठ जी इस झगड़े से व्याकुल होने लगे। किसी समय पीड़ा बन्द होने पर जो थोड़ी बहुत नींद उन्हें आ जाती थी, वह सेवा तत्पर देवियों के समीप बैठकर बात करते रहने के कारण दुर्लभ हो गई। मैं किसी भी पक्ष की बात दूसरे पक्ष को समझा सकने में असमर्थ था और बिगाड़ भी किसी से नहीं करना चाहता था। रोगी की सेवा के लिए होड़ बढ़ती ही जा रही थी। सेठ जी भी उन दोनों पक्षों से तो कुछ कह नहीं पाते, यूं भी उन का स्वर रोग के कारण इतना क्षीण हो गया था कि उन की बात सुन पाने के लिए कान को उनके मुंह तक झुकाना पड़ता था। झगड़े से खिन्न होकर सेठ जी अपनी मानसिक यातना की बात मुझ से ही कहते—"मैं तो घड़ियां गिन रहा हूँ कि कब प्राण निकल जायें। माबेल मुझ से प्रणय लीला कर रही है। कहती है, मेरी सेवा करने का अधिकार उसी को है क्योंकि वह मुझे प्राणों से अधिक प्यार करती है। इसी प्रतीक्षा में है कि मैं ठीक हो जाऊँ तो मुझ से विवाह करे।" सेठ जी ने बताया—"फ्रेडा तो बेचारी मुझे बच्चे की तरह सम्भाल कर कभी एक आध बार माथा चूम लेती थी। यह चुड़ेल तो दिन भर पुचपुच किया करती है। सिर भिन्ना जाता है। एक ओर तो रोग का कष्ट, तिस पर यह व्याधि लग गई।"

सेवा की होड़ से झगड़ा बहुत अधिक बढ़ गया। और उसमें फ्रेडा हार गईं। मिसेज शास्त्री का आखिरी पेंतरा बहुत जबरदस्त था। उन्हों ने प्रचार शुरू कर दिया कि उनके पति तो बीमार का बहुत अच्छा इलाज कर रहे हैं परन्तु फ्रैडा जान बूझ कर वैमनस्य से रोगी को कुपथ खिला देती है इसलिए रोगी अच्छा नहीं हो रहा बल्कि उसकी अवस्था गिरती जा रही है। फ्रेडा ने आंसू बहाये और हार मान गईं। उन्हों ने दिल पर पत्थर रख प्रतिज्ञा कर ली की अब वह रोगी के कमरे में न जायेंगी। हार जाने पर भी वे अपनी ममता के पात्र रोगी का हाल जाने बिना रह न पातीं। वे शास्त्री का मकान छोड़ होटल

में चली गई थीं। मुझे बुला कर सेठ जी का हाल पूछती रहतीं। रोगी की सेवा के लिये अमेरिकन महिलाओं की यह प्रतिद्वन्दिता कुछ लोगों को पहेली सी जान पड़ेगी परन्तु इसका आधार जनता की नज़रों में ऊँचा उठने की वही प्रवृत्ति थी जिसके कारण कांग्रेस के नेतृत्व का परिणाम जेल जाना होने के युग में भी नेतृत्व के लिये भीषण प्रतिद्वन्दिता और षडयंत्र चलते रहते थे।

फ्रेडा के न आने से सेठ जी को भी खलता। वे उसे बुला लाने के लिये कहते या उसका हालचाल मुझसे पुछवाते रहते। एक दिन माबेल ने शिकायत की कि मैं फ्रेडा का साथ दे रहा हूँ। शिकायत करने का ढंग जरा परेशानी पैदा करने वाला था। माबेल की आयु क्या थी, यह तो मैं जान ना सका था, चिन्ता भी न की। देखने में वह बिलकुल नवयुवती लड़की ही जान पड़ती थी। शरीर की गठन और नखशिख अच्छे थे। चेहरे पर चेचक के हलके दाग तो थे परन्तु पाउडर की मोटी तह के नीचे छिप जाते। कभी-कभी वह सैर के लिए मुझे साथ ले जाती। मुझे भी उसके साथ घूमना-फिरना, हंसना-बोलना अच्छा लगता था। मेरे फ्रेडा का साथ देने की शिकायत करते समय उसने कहा—"मैं तो तुम से इतना प्यार करती हूँ और तुम मेरे विरुद्ध मेरे शत्रु को सहायता देते हो! अगर ऐसा करोगे तो तुम्हारे साथ घूमना-फिरना और बोलना बन्द कर दूंगी।"

माबेल का यह ढंग मुझे अच्छा न लगा परन्तु उसे यह विश्वास भी न दिला सका कि मैं फ्रेडा से मिलना-जुलना और बात करना छोड़ दूंगा। यह कहने की हिम्मत न पड़ी कि मैं तुम्हारी कोई परवाह नहीं करता। बड़ी दुविधा थी। दुविधा स्वयं ही सुलझ गई। जाने किस कारण फ्रेडा उसी दिन राजपुर छोड़ चली गई और तभी मुझे लायलपुर से तार द्वारा बहिन प्रेमवती के पिता की मृत्यु का समाचार मिला। मैं भी राजपुर से चल दिया और फिर वहां न लौटा! एक-आध बार आनन्द स्वामी को पत्र लिख कर सेठ जी के स्वास्थ्य की बाबत जिज्ञासा की, फिर भूल गया। उसके लगभग चार वर्ष बाद सेठ जी को उस बैठक में ही देखा। वह मृत्यु से कुश्ती में जीत कर चलने-फिरने योग्य हो गये थे। उस सभा में उनके आने का अर्थ था कि वह फिर जेल और फांसी की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। बाद में मालूम हुआ कि भैया उन्हें काकोरी का अनुभवी साक्षी समझ नये संगठन में सुझाव

और सहायता की आशा से खींच लाये थे परन्तु इसके बाद दल के काम में सेठ जी को कभी नहीं देखा।

केन्द्रीय समिति की कानपुर की बैठक में कई महत्वपूर्ण सुझावों पर विचार हुआ। हम लोगों ने भैया से पहले ही बात की थी कि हमारे सशस्त्र संगठन और काम के पीछे सैद्धान्तिक रूप से दृढ़ और विश्वस्त लोगों का एक संगठन रहना आवश्यक है। यह संगठन दल को आवश्यक संख्या में साथी देता रहे और दल के सशस्त्र कामों का पूरा प्रभाव जनता पर डालने का यत्न करे। हमारा अभिप्राय मजदूरों, सरकारी नौकरों, सिपाहियों और विद्यार्थियों में ऐसी विचार-गोष्ठियाँ (स्टडी सर्कल) बनाने का था जहाँ युवक वर्ग क्रान्ति के मूल प्रयोजन और मार्ग पर स्पष्ट विचार और भावना ग्रहण कर सकें। सेठ दामोदर स्वरूप को पुलिस खूब जानती पहचानती थी। उनका स्वास्थ्य भी फरारी का कठिन जीवन निभाने योग्य न था। इस कठिनाई के प्रतिफल में सेठजी राजनैतिक रूप से सचेत जनता में विश्वस्त क्रान्तिकारी के रूप में परिचित हो चुके थे। उदाहरणतः दल के लिए धन संचय करने या नेताओं से कोई बात करने अथवा नवयुवकों को उग्र राजनीति की ओर आकर्षित करने की बात कहने पर उन्हें कोई संदिग्ध व्यक्ति या क्रान्तिकारियों के नाम पर ठगी करने वाला नहीं बता सकता था।

सेठजी को केन्द्रीय समिति में बुलाने का अभिप्राय उन्हें दल की ओर से इस प्रकार के संगठन का काम सौंपना था जो कांग्रेस और नौजवान भारतसभा की अपेक्षा गुप्त हो परन्तु हिसप्रस के सशस्त्र दल की अपेक्षा प्रकट हो। इस संगठन का काम शस्त्रों का प्रयोग छोड़कर गुप्त साहित्य का प्रचार, धनसंचय और ऐसे साथी तैयार करना था जो किसी भी समय सशस्त्र संघर्ष के लिए बुलाये जा सकें। भैया का यह सुझाव था कि दल के आशंकापूर्ण रहस्यों की रक्षा के लिए यह काम सेठ जी को सौंपकर बिलकुल अलग कर दिया जाये। सेठजी को आशंका और संकट में न डाला जाए। वे संकट का सामना करनेवाले नवयुवक तैयार करें! सेठजी के वय और उनके झेले हुए कष्टों का ध्यान कर भैया ने उन्हें हिसप्रस का प्रधान बना देने का प्रस्ताव किया। सन १९२८ से भैया ही दल के प्रधान और कमाण्डरइनचीफ़ दोनों ही समझे जाते थे। इन दोनों पदों से व्यक्तिगत लाभ चाहे कुछ न रहा हो परन्तु दल के सीमित क्षेत्र में एकाधिपत्य और सम्मान का एकाधिकार

तो था ही। भैया ने स्वयं ही सेठ जी को प्रधान का पद देने का प्रस्ताव किया और स्पष्ट कहा कि सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण और लोगों के विचार परिवर्तन का काम वे ठीक ठीक नहीं निभा सकते। भैया का यह व्यवहार इस बात का प्रमाण था कि वे दल के उद्देश्य को अपने व्यक्तित्व से अधिक महत्व देते थे।

दल के अनुशासन और रहस्य की रक्षा के लिये प्रचार और सशस्त्र संगठन को अलग-अलग करके भी उनका मूल सम्बन्ध एक जगह रखने के लिये दोनों कामों का सेक्रेटरी या संयोजक भगवती भाई को ही बनाया गया। अर्थात वे प्रधान (सेठ दामोदर स्वरूप) और कमाण्डरइनचीफ़ (भैया आज़ाद) दोनो के मंत्री निश्चित किये गये। भैया, सेठ जी और भगवती भाई को स्थायी केन्द्र बना कर इस सूत्र द्वारा दूसरे प्रान्तों का पारस्परिक सम्बन्ध कायम रखना निश्चित हुआ। यू. पी. के संगठन का काम वीरभद्र तिवारी को, दिल्ली का कैलाशपति को और पंजाब का मुझे सौंपा गया। वीरभद्र तिवारी ने विश्वास दिलाया कि लाहौर कांग्रेस में उस की मुलाकात बंगाल के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी प्रतुल गांगोली से हुई थी और उन्हों ने हमारे दल से अपने दल का सम्पर्क स्थापित कर लेने के लिये इच्छा प्रकट की थी। महाराष्ट्र के लिये भी भैया ने एक आदमी का नाम सुझाया परन्तु वे लोग समय पर आ नहीं सके थे।

सशस्त्र काम को प्रोत्साहन देने और अपना एक प्रेस जमाने का निश्चय किया गया। धन का प्रश्न महत्व का था। निश्चय किया गया कि धन यथासम्भव सहानुभूति रखने वाले लोगों से ही लिया जाये और डकैती से बचा जाये परन्तु संगठन और सहानुभूति रखने वाले लोगों की संख्या पर्याप्त रूप से बढ़ाये बिना धन का प्रश्न सुलझ न सकता था। उसमें समय लगना आवश्यक था। आरम्भिक अवस्था में डकैती करके काम चलाना ही आवश्यक समझा गया। इस के लिये उचित अवसर और आयोजन की जिम्मेवारी भैया पर छोड़ दी गई।

सशस्त्र कामों और डकैती के सम्बन्ध में वीरभद्र तिवारी ने सुझाया कि ऐसे काम में भाग लेने वाले व्यक्तियों के घटनास्थल पर मारे या गिरफ्तार हो जाने की सम्भावना रहेगी। इसलिये संगठन की परम्परा बनाये रखने के लिए प्रान्तीय संगठन कर्ता ऐसे सशस्त्र कामों का संगठन और निर्देशन तो करें परन्तु उसमे सक्रिय भाग न लें। मैंने इस सुझाव

का विरोध किया था। मेरी आपत्ति यह थी कि काम आरम्भ करते समय यदि दल के मुख्य संगठन कर्ता उसमें भाग न लेंगे तो नये साथियों में भी आत्मरक्षा की कमज़ोरी अनिवार्य रूप से घर कर जायगी। दल की परम्परा और संगठन का आधार बनाये रखने के लिए केन्द्र का तिगड्डु काफी है।

कैलाशपति ने भी वीरभद्र के सुझाव का समर्थन किया। मैं, भगवती भाई और भैया तीनों इसके विरुद्ध थे। समझौता इस बात पर हुआ कि सेठ जी को छोड़कर आरम्भ में सभी साथी कम से कम तीन बार सशस्त्र काम में सहयोग दें। कोई भी साथी; अदालत से फांसी का दण्ड पाने योग्य काम कर चुकने के बाद और केन्द्रीय समिति के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक समझा जाने पर सशस्त्र काम में भाग लेने से रोक दिया जा सकता है। सशस्त्र काम में भाग न लेना अपनी इच्छा पर नहीं बल्कि दल के निर्णय पर रखा गया! इसी बैठक में 'फिलासफी आफ़ दी बम' को पूरे उत्तर भारत, बंगाल, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश तक बांटने का निश्चय किया गया। अपने प्रान्त में पर्चे के ठीक बंटवारे की जिम्मेवारी प्रान्तीय संगठन-कर्ताओं को दे दी गई।

इस बैठक के बाद अपने काम के लिये मेरा लाहौर में रहना ही अधिक उपयोगी था। इन्द्रपाल को लखनऊ बुलाया। लाहौर में एक ऐसा मकान किराये पर लेने के लिए उसे समझाया जो शहर से एक ओर हो। लाहौर में लगभग बीस वर्ष रहने से वहां जान-पहचान खूब थी। इन्द्रपाल के हाथ ही पंजाब के हिस्से के 'फिलासफ़ी आफ़ दी बम' के पर्चे का बण्डल भी पहले से लाहौर भेज दिया। अभिप्राय यह था कि अपने साथ ले जाने पर यदि पहचान कर पकड़ा जाऊं तो इतने परीश्रम से तैयार की गई चीज़ व्यर्थ न हो जाये

इन्द्रपाल इस बार लखनऊ आया तो नया गरम सूट पहने था। उससे पूछा, ऐसा बढ़िया नया सूट कहां से मिल गया? मालूम हुआ कि इसी बीच उसका विवाह हो गया है। हम लोगों ने विस्मय प्रकट किया—"जब तुम सदा खतरे और संकट में सिर दिये हो तो इस शादी का क्या मतलब? यदि लड़की से तुम्हारा प्रेम होता, उसे जानते पहचानते, उसके संकट से न घबराने और साथ देने का भरोसा होता तो भी एक बात थी।" इन्द्रपाल ने उत्तर दिया, लड़की से तो शादी के बाद अभी अच्छी तरह बात भी नहीं हुई लेकिन सगाई हो चुकी थी।

विवाह में टालमटोल से लोगों को सन्देह ही हो रहा था और घर में खामुखाह झगड़ा झंझट चल रहा था। रोज़ ही लोग घेर कर समझाने के लिए बैठ जाते थे। ब्याह हो भी गया तो क्या ? दल का काम अपनी जगह और ब्याह अपनी जगह ! सभी सिपाहियों का विवाह होता है और सभी लड़ाई पर भी जाते हैं। विवाह क्या हमारे ही लिये कमजोरी बन जायगा ? हम तो तीस रूपये माहवार के लिए सिपाही बन कर तोपों के आगे सीना करने वाले सिपाहियों की अपेक्षा अधिक समझदार हैं। उस के इस तर्क के आगे चुप हो जाना पड़ा। उस के व्यवहार पर मुग्ध हो भगवती भाई गद्गद स्वर में बोले—"He is a jewel' यह आदमी रत्न है।

उस ने सुनाया कि अच्छा नया सूट पहने आ रहा था। रास्ते में एक भलेमानस मुसाफिर ने उससे अंग्रेज़ी में बात शुरू की। इन्द्रपाल ने उत्तर दिया कि वह अंग्रेज़ी नहीं जानता। मुसाफिर ने कुछ विस्मय से प्रश्न किया कि वह किस महकमे में नौकर है। इन्द्रपाल ने बहुत स्पष्टवादिता से उत्तर दिया कि वह कलम की मजदूरी करने वाला कातिब है। यह सुन मुसाफिर मुस्करा कर चुप रह गया।

हम लोगों ने उसे समझाना चाहा कि उसका सूट पहन कर यात्रा करना ठीक न था। यह बात उसे भली न लगी। उसने एतराज़ किया, क्या अंग्रेज़ी न जानने वालों और मजदूरी से पेट भरने वालों को सूट नहीं पहनना चाहिए ? यह अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोगों का ही दावा है। यह अंग्रेजों की दिमागी गुलामी नहीं ? उसे समझाया कि अधिकार और सिद्धान्त से तो सभी लोगों को सभी कुछ पहनने-ओढ़ने का अधिकार है परन्तु यदि तुम्हारे इस प्रकार के व्यवहार और बातों से किसी को तुम्हारे प्रति सन्देह हो जाये तो यह ठीक नहीं। ऐसे प्रश्न पूछने वाला सी०आई० डी का आदमी भी हो सकता था। यदि वह तुम्हें असाधारण व्यक्ति समझ तुम्हारे आने-जाने की जगह के बारे में जानना चाहता ? जब हम ने एक असाधारण काम हाथ में लिया है, जिसे गुप्त रखना आवश्यक है तो हमें ऐसा व्यवहार अपनाना आवश्यक है कि वह चाहे हमें स्वयं असाधारण और अनुचित जंचे परन्तु सर्वसाधारण और हमें खोजने वालों की दृष्टि में इतना साधारण हो कि वे हम पर ध्यान ही न दें। इन्द्रपाल को यह बात जंच न रही थी। उसे याद दिलाया, तेहखंड में बदरपुर की पुलिस के हाथ पड़ कर यदि मैं दीन बनिए का

सा व्यवहार न करता और आत्म सम्मान दिखाने की चेष्टा करता तो क्या होता ? हम लोगों को जिन्दगी भर ऐसा ही अनुशासन निभाना होगा ! इन्द्रपाल को मेरी बात अब समझ आ गई । हाथ मिलाकर बोला—"अब आया समझ में !" तब भी अनेक परिचित पूछा करते थे और अब भी पुरानी बातों को याद कर कई लोग पूछ बैठते हैं—"पुलिस तुम पर सन्देह क्यों नहीं करती थी ?" सन्देह न होने देने का एक ही उपाय था, खूब सोचसमझ कर प्रकट में ऐसा स्वाभाविक व्यवहार रखना कि वास्तविकता बिलकुल छिप जाए।

लाहौर में इन्द्रपाल ने हमारे मतलब से एक मकान पुराने गवर्मेण्ट प्रेस के आगे कृष्णनगर की ओर ले लिया था। तब कृष्णनगर की बस्ती घनी नहीं हुई थी। अभी दूर-दूर, कहीं-कहीं मकान बन रहे थे। उस अहाते में दो ही मकान थे। एक में मकान मालिक विधवा रहती थी। दूसरा इन्द्रपाल ने किराये पर ले लिया था। इन्द्रपाल ने इस जगह को एकान्त होने और वहाँ अधिक लोगों के आने-जाने की सम्भावना न होने के कारण पसन्द किया था। मैं मकान में रात के समय पहुँचा था। सुबह उठ कर आस पास देख रहा था। पड़ोसिन विधवा अपनी गाय या भैंस को सानी दे रही थी। उसे देखते ही पहचान लिया। यह थीं श्रीमती धनदेवी, स्वर्गीय लाला भगतराम पुरी की धर्मपत्नी। भगतराम जी पहले सूत्तरमण्डी में रहते थे। वे आर्यसमाज के जाने-माने उत्साही कार्यकर्ता थे। हमारे परिवार का उनसे बहुत घनिष्ट परिचय था। मैं उन्हें मामा और धनदेवी जी को मामी कहता था। धनदेवी जी मेरे फरार हो जाने की बात जानती थीं। आशंका थी कि मुझे पहचानकर वे माँ को खबर देने जायंगी और बात फैल जायगी। मैं बहुत सावधानी से रहने लगा कि वे मुझे देख न पायें। दिन में तो प्रायः मकान के बाहर जाता ही न था। सुबह तड़के या संध्या समय बाहर जाता तो उनके दरवाज़े के सामने से गुज़रना पड़ता। तब प्रायः साथ चलते इन्द्रपाल की ओर मुंह मोड़े रहता या दूसरी ओर देखता रहता। पोशाक लाहौर में ऐसा ही पहनता था जैसी वहाँ पहले रहते समय न पहनी थी।

पंजाब के अधिकांश स्थानों में तो 'फिलासफी आफ दी बम' के पर्चे अच्छी तरह बंटवा देने में कोई उलझन न हुई। यह काम धन्वन्तरी, एहसानइलाही और फ़ज़ल कुर्बान ने नौजवान सभा के चुने हुए साथियों

द्वारा कराने का प्रबंध कर लिया। प्रश्न था, पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश में पर्चा बांटने का। सीमान्त प्रदेश में भारतीय ब्रिटिश राज की सीमा होने के कारण राजनैतिक दमन और पुलिस की कड़ाई अधिक थी। हम लोग भी सीमान्त में अपने सूत्र जमाने का यत्न करते ही रहते थे। कानपुर की बैठक में सीमान्त से सम्पर्क जोड़ने का काम भी मुझे सौंपा गया था। सुखदेव ने रावलपिण्डी में हंसराज वोहरा को निश्चित तौर पर बैठा दिया था। जयगोपाल तो कोहाट के समीप बिल्कुल सीमा के एक छोटे कसबे में रहने लगा था, जहां से आवश्यकता होने पर सीमा लांघ जाने में सुविधा होती। लेकिन वे दोनों गिरफ्तार होकर मुखबिर बन चुके थे। वहां नये सूत्र जमाने की जरूरत थी। पहले ही कह चुका हूं कि इन्द्रपाल भी रावलपिण्डी कुछ दिन रह आया था। मैंने इन्द्रपाल को साथ ले स्वयं रावलपिण्डी जाने का निश्चय किया।

रावलपिण्डी में इन्द्रपाल के १९२७ के परिचितों में से चुने हुए साथियों से मिल कर बात की। वाइसराय की घटना के प्रभाव से इन लोगों में हमारे प्रति अगाध विश्वास उत्पन्न हो चुका था। पर्चे बांटने के प्रबंध में कोई कठिनाई नहीं हुई और जिन लोगों ने इस काम में उत्साह से सहयोग दिया था उन्हीं को ले भविष्य में एक स्थानीय संगठन की नींव डाल दी गई। क्रान्तिकारी कार्य के जोखिम के लिए नौजवानों को उत्साहित करना एक समस्या रहती थी परन्तु ऐसे भी लोगों से सम्पर्क पड़ता था जिनके उत्साह को सीमा में रखना समस्या हो जाती थी। दोनों ही प्रकार के लोग आशंका का कारण थे। भीरू लोगों से तो ठीक समय पर कायरता के कारण काम पूरा किये बिना पीछे हट जाने या पुलिस के हाथ पड़ने पर दूसरों को भी फंसा देने का डर था। उच्छृंखल लोगों से यह कि अकारण आपत्ति बटोरने की उमंग में कुछ न करके भी स्वयं फंसने के साथ-साथ दूसरों को ले डूबें। रावलपिण्डी में ऐसे ही नवयुवकों से काम पड़ा। उत्साह प्रकट करने के अवसरों के अभाव के कारण वे कुछ कर डालने और विकट रूप में कर डालने की उमंग में उच्छृंखलता की ओर बढ़ जाना चाहते थे।

'फिलासफी आफ दी बम' के बहुत अच्छे ढंग से देश भर में बट जाने और इस सम्बन्ध में कोई गिरफ्तारी न हो सकने से जनता में हमारे दल की शक्ति के प्रति आस्था और भी बढ़ गई। शिक्षित और सचेत लोगों को पर्चे में प्रकट किए गए विचार और तर्क तो पसन्द

आये ही, इसके साथ ही पर्चे के एक ही दिन, एकही समय (२६ जनवरी सूर्योदय के समय) सभी जगह मिलने का प्रभाव भी बहुत हुआ। यही समझा गया कि हमारी शाखायें, सूत्र और अनुशासन सभी जगह मौजूद हैं। जनता राजनैतिक दलों के सिद्धान्तों और कार्यक्रम से सहानुभूति रखने पर भी उन का विश्वास तभी करती है जब उनमें कुछ कर सकने की शक्ति भी देख पाती है। अब यह बता देने में आपत्ति नहीं है कि पर्चे को बांटने के लिये कई शहरों में तो हमारा केवल एक ही साथी भेज दिया गया था। उसने कई जगह अपना कोई निजी मित्र ढूंड कर पर्चे बंटवा दिये। दो-दो तीन तीन जगहें एक ही आदमी ने सम्भाल लीं और सूर्योदय से पहले ही उस स्थान से रवाना हो गया। जनता ने अधिकांश में इस पर्चे को क्रान्तिकारी कामों के आरम्भ की घोषणा ही समझा और उत्सुकता से विदेशी सरकार पर नवीन आक्रमणों की प्रतीक्षा करने लगी।

× × ×

नौ

भगतसिंह और दत्त को जेल से निकालने की योजना

कानपुर की बैठक में तय हुआ था कि सब से पहले लाहौर षड्यंत्र के बन्दियों को जेल से निकालने का प्रयत्न किया जाए। भैया को हम हंसराज की चामत्कारिक 'मूर्छा गैस' और 'अवरोधक' औषधि का रहस्य और यह चीजें यथेष्ट मात्रा में मिल सकने की बात भी बता चुके थे। स्वाभाविक ही उन्हें इससे बहुत उत्साह हुआ और कैदियों को जेल या अदालत से छीन लाने की योजना सरल जान पड़ने लगी। मुझे पहला काम यही सौंपा गया था कि हंसराज से गैस तैयार कराकर साथियों को जेल से छुड़ाने की योजना बनाऊं। इन्द्रपाल गैस की बाबत पता लेने लायलपुर गया। लौटकर उसने बताया कि आवश्यक चीजें न मिल सकने के कारण गैस नहीं बन सकी। हंसराज का कहना था कि गैस बनाने के लिये कोकीन चाहिये। उसके पास जितनी कोकीन थी, समाप्त हो गई है।

मैं कोकीन का गैस से कोई सम्बन्ध न समझ सका परन्तु उसकी तो कोई भी बात समझ न आती थी। तर्क छोड़ विश्वास ही करना पड़ता था। मैं स्वयं बाहर कम ही निकलता था। लाहौर में अपने सूत्रों की कमी न थी। दुर्गा भाबी, धन्वन्तरी, एहसानइलाही थे ही अब धर्मपाल, प्रेम, विशम्भर और सुखदेवराज भी हो गये थे। मैंने धन्वन्तरी को बुलाकर कहा—"हमारे साइन्टिस्ट (वैज्ञानिक) को दल के आवश्यक काम के लिए कुछ कोकीन चाहिए!" धन्वन्तरी के साथ सुखदेव भी आया था। दोनों बहुत हंसे और सन्देह प्रकट किया—"तुम्हारा साइन्टिस्ट कोकीन खाता है?"

धन्वन्तरी और सुखदेवराज उस समय तक न तो यह जानते थे कि हमारा साइन्टिस्ट कौन है और न यह कि कोकीन से क्या बनाया जा रहा है। हंसराज का परिचय दूसरों को न देने के लिये हम लोग आपस में उसका नाम न ले, उपनाम साइन्टिस्ट ही पुकारते थे।

उन्हें विश्वास दिलाने का यत्न किया कि साइन्टिस्ट को कोकीन दल के काम के लिए ही चाहिए। खाता भी हो तो हमारी बला से! हमें उससे काम लेना है। वह यदि हमारा काम कर दे तो उसके कोकीन खाने के 'पाप' की चिन्ता नहीं! चाहे जितनी खाये। धन्वन्तरी ने कोकीनखोरों से परिचय की बदनामी की चिन्ता न कर जैसे तैसे दो ही दिन में कोकीन की एक मोटी पुड़िया मुझे सौंप दी। इन्द्रपाल यह पुड़िया ले लायलपुर गया और आकर हंसराज की ओर से आश्वासन दिया कि सात दिन में सब कुछ तैयार मिलेगा। सात दिन बाद इन्द्रपाल फिर लायलपुर गया तो खबर लाया कि वह कोकीन ठीक न थी। जैसी कोकीन चोरी से बिकती है, उस से काम नहीं चलेगा। प्रयोगशालाओं (लेबोरेटरी) में वैज्ञानिक परीक्षणों के लिए जो कोकीन उपयोग की जाती है, वैसी शुद्ध (pure) वस्तु चाहिए। इस कोकीन से तो बेचारे साइन्टिस्ट की दूसरी चीजों, जो गैस बनाने के लिए साथ मिलानी पड़ीं, की ही हानि हुई। हंसराज ने इन्द्रपाल को यह भी बताया कि वैसी कोकीन लायलपुर के एग्रीकल्चर कालेज की लेबोरेटरी में है। वह वहाँ से कोकीन चुराने की कोशिश कर रहा है, भरोसा रखो! बड़ी व्याकुलता से हम लोग गैस तैयार होने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

लाहौर में हमारा खर्च दुर्गा भाभी और धन्वन्तरी के इकट्ठे किये पैसे से ही चल रहा था। बहन प्रेमवती पिछले अक्टूबर-नवम्बर में ही बहुत बीमार हो जाने के कारण काँगड़ा चली गई थीं। बुखार उन्हें पहले ही रहता था। उस की चिन्ता न करने के कारण विकट क्षय रोग हो गया। परिवार के लोग उन्हें कांगड़ा ले गये कि पहाड़ में चीड़ों के वृक्षों की हवा से रोग के इलाज में सहायता मिलेगी। वे बड़ी अनिच्छा से गईं और रोग शैया पर पड़े पड़े, मन सदा लाहौर पहुंचने की बेचैनी में छटपटाता रहने के कारण शीघ्र ही उन का शरीर प्राणों को सम्भाल सकने में असमर्थ हो गया। धर्मपाल उन की रोगी अवस्था में एक बार उन्हें देख आया था। उसके शायद सप्ताह भर बाद ही उनकी मृत्यु हो गई थी। उस समय भी बहन प्रेमवती ने धर्मपाल से लाहौर में रहने वाले सगे सम्बन्धियों के बारे में जिज्ञासा न कर हम लोगों और दल के सम्बन्ध में ही बातचीत की थी। कांगड़े जाने से पूर्व वे अपने तीन विशेष शिष्यों प्रकाशवती कपूर, प्रेमनाथ और विमला का परिचय दुर्गा भाभी से करा गई थीं। प्रेम और विमला बहन भाई थे। प्रकाशवती

प्रेमवती को निरन्तर आर्थिक सहायता देती रहती थीं। प्रकाशवती की सहायता का स्रोत था घर से चोरी करना। घर की बड़ी लड़की होने के कारण माँ चाबियाँ प्रायः उन्हें ही सौंप देतीं। प्रकाशवती कभी माँ की सन्दूकची में से नोट खिसका लेती, कभी कोई छोटा-मोटा जेवर। प्रकाशवती की यह सहायता पहले प्रेमवती द्वारा ही हम लोगों तक पहुँचती थी अब वह विमला के भाई प्रेम द्वारा सीधे मेरे पास भेजने लगीं। प्रकाशवती और विमला कौन हैं, यह मैं जानता था परन्तु उनसे कभी साक्षात्कार न हुआ था।

आर्थिक कठिनाई तो थी ही। मांग-तांग कर अब पहले से कुछ अधिक ही मिल सकता था परन्तु अब खर्चा भी बढ़ गया था। मैं डकैती की मजबूरी से बचना चाहता था। इन्द्रपाल से प्रायः इन कठिनाइयाँ की चर्चा होती रहती थी। इन्द्रपाल ने सुझाव दिया, जाली रुपया क्यों न बनाया जाय? उसका एक परिचित यह काम जानता था। सोचा, यदि यह काम हो सके तो बड़ी भारी समस्या सुलझ जाये अर्थात डकैती न करनी पड़े। डकैती से मुझे और भगवती भाइ दोनों को बहुत विरक्ति थी। विरक्ति का मुख्य कारण था कि हम जनता की दृष्टि में क्रान्तिकारियों का सम्बन्ध डकैती से जुड़ा होना पसन्द नहीं करते थे।

इन्द्रपाल गुलाबसिंह को मुझसे मिलाने के लिये लाया। गुलाबसिंह ने समझाया कि सिक्का बनाने का सांचा बना लिया जायगा और उसमे तीन धातुओं के मेल को ढालकर रुपया बन जायगा। उसने अपना ढाला हुआ एक सिक्का दिखाया, जिसकी खनक उस समय के अच्छे रुपये जैसी थी। किनारे जरुर साफ़ न थे और देखने से ही सन्देह हो जाता। ख्याल किया कि किनारे ठीक कर सकना बहुत कठिन न होगा। मुझे भागराम की दस्तकारी पर बहुत भरोसा था। मैंने उसे भी सहायता के लिए गुलाबसिंह के साथ कर दिया। इस काम में काफी समय, परीश्रम और पैसा भी नष्ट हुआ परन्तु बन कुछ न सका। इन्द्रपाल ने मुख़बिर बनने का जो नाटक किया था उसमें जाली सिक्क बनाने की बात भी पुलिस को बता दी। परिणाम स्वरूप मेरी फ़रारी के समय अपराध की जो धारायें मेरे विरुद्ध लगाई गई थीं उनमें जाली सिक्का बनाने की भी धारा थी। जाली सिक्के बनाने का अपराध सजा की दृष्टि से हत्यापूर्ण डकैती के समान ही संगीन है। सरकार की सुरक्षा

के विचार से उसका यह दृष्टिकोण ठीक है क्योंकि जाली सिक्का बनाना सरकार के सिक्का बनाने के एकाधिकार पर चोट है और उस की आर्थिक सत्ता की जड़ काटना है। हम लोगों की दृष्टि में वह हत्यापूर्ण डकैती से अच्छा ही था। रहा सरकारी सज़ा का डर ? पकड़े जाने पर हमें सरकार से किसी प्रकार की दया की आशा या इच्छा न थी।

हंसराज की मूर्छा गैस की प्रतीक्षा में लगभग दो मास बीत चुके थे। इन्द्रपाल और सुखदेव को फिर लायलपुर भेजा। उन्हें कहा गया था कि हंसराज के साथ जाकर देख लें कि कालिज की लेबोरेटरी में कोकीन कहां रखी है। यदि दिन के समय किसी तरह वह कोकीन न ला सके तो रात में खिड़कियों और आलमारियों के शीशे काट कर कोकीन निकाल लायें। इन्द्रपाल और सुखदेवराज हंसराज के साथ दिन में कालिज जाकर जगह देख आये और रात में कोकीन चुराने गए। यह कोकीन हमारे लिए उस समय वैसी ही बहुमूल्य थी जैसी कि मेघनाथ का बाण लग कर लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर रामचन्द्र जी के लिए द्रोणागिरि पर्वत की अमोघ बूटी हो गई होगी। यह कोकीन रूपी बूटी पाकर हम लोग अपने साथियों को जेल से निकाल लाने और ब्रिटिश सरकार के रोब पर बहुत बड़ी चोट करने की आशा कर रहे थे। हंस-राज की मूर्छा गैस पर हमें अन्ध विश्वास था।

इन्द्रपाल और सुखदेवराज अपने साथ शीशा काटने की कलमें लेते गये थे। बराम्दे में खिड़की का शीशा काट, चिटखनी खोल वे लेबोरेटरी में चले गये। भीतर पहुंच अपने आपको निर्भय समझ सुख-देवराज ने आवश्यकता से अधिक बहादुरी दिखाई। आलमारी का शीशा काटने की घिसघिस करने की अपेक्षा कोई चीज़ उठा शीशा तोड़ दिया और बोतल जेब में रख चल दिये। वे लोग खिड़की से वापस ही निकले थे कि खतरे की घंटी बज उठी। शीशा गिरने की आहट से चौकीदार चौंक उठा था। इन्द्रपाल और सुखदेवराज कालिज के बाग से अंधेरे में कांटों और कांटेदार तारों को लांघते हुए किसी तरह पकड़े जाने से बच कर वापिस लौटे। सुखदेवराज का यह व्यवहार दल में उसके भावी व्यवहार की बहुत अच्छी भूमिका है और इसके लिये हम लोगों को या सुखदेवराज के सम्पर्क में आने वाले लोगों को खूब भुगतना पड़ा।

संकट सिर पर लेकर चुराई हुई कोकीन की शीशी हंसराज को

दी गई तो उसने होंठ सिकोड़ कह दिया कि यह ग़लत शीशी है। हंसराज ने अपने मतलब की शीशी आलमारी में जिस जगह दिखाई थी वहां एक सी कई शीशियां श्वेत पदार्थ की पड़ी हुई थीं। इन पर पदार्थों के नाम के चिट नहीं, केवल नम्बर थे। अब क्या किया जा सकता था? हंसराज की खुशामद की गई कि तुम अपने रासायनिक पदार्थ का नाम बता दो या कोकीन की वह खास किस्म बता दो। लाहौर में न मिलेगी तो कलकत्ता, बम्बई से मंगाने की कोशिश करेंगे। आखिर हंसराज ने आवश्यक दवाई का नाम बताया—"लिक्रिस पाउडर!"

बड़े उत्साह से मैंने धन्वन्तरी को कुछ लिक्रिस पाउडर ला देने के लिये कहा और बताया कि इस वस्तु से मूर्छागैस बन जायगी। धन्वन्तरी लाहौर के आयुर्वेदिक कालिज में वैद्यराज की परीक्षा पास कर चुका था। उसे एलोपैथिक-डाक्टरी की दवाइयों का भी कुछ ज्ञान था। वह बहुत हंसा—"वाह भाई, वाह! इससे मूर्छागैस बनेगी? यह तो बहुत मामूली चीज़ है। कितना चाहिये? कहो तो एक पसेरी इकट्ठा कर दें?" अस्तु, हंसराज को लिक्रिस पाउडर भी पहुँचाया गया। इन्द्रपाल ने लौटकर निश्चित बात कह दी कि हंसराज कुछ नहीं बनायेगा।

इन्द्रपाल हंसराज के व्यवहार से बहुत खीझ गया था। उसने मुझ से कई बार कहा—"इस आदमी से जैसे हो काम निकालो! यदि हजार दो हजार रिश्वत मांगता है, तो वह भी दो! मेरे पास जो कुछ बीवी के जेवर हैं, बेच दूंगा। कुछ तुम लोग जमा करो! यदि ऐसे नहीं मानता तो इसे मैं फुसला कर बुला लाऊं और किसी कमरे में कैद कर पिस्तौल का पहरा बैठा दिया जाये। कह दिया जाये कि ठीक चीज़ जब तक न बना दोगे बाहर नहीं जा सकोगे! यहां ही समाप्त कर दिया जायेगा!" मैं इस बात से सहमत न हुआ। किसी आदमी से ऐसा व्यवहार कर उसे शत्रु बना दल को हानि पहुंचा सकने के लिये छोड़ देना उचित न था। अब मुझे सन्देह था कि वह वास्तव में कुछ कर सकता है! केवल हम लोगों से प्रतिष्ठा पाने और खुशामद कराने के लिये हमें बहलाता है। इन्द्रपाल ने हंसराज से बहुत भक्ति और प्रेम से बातें कर उसका वास्तविक विचार जानना चाहा। हंसराज ने उसे दूसरा ही मंत्र पढ़ाया—"यह लोग ऐसी छोटी-मोटी बातों के लिये मुझे खतरे में डाल रहे हैं। मैं दुनिया को हैरान कर देने वाली चीज़ें बना रहा हूँ। अपनी जिन्दगी ऐसे कामों में क्यों बरबाद करूं? मैं अगर इनकी

सहायता करूंगा तो किसी दिन बात अवश्य प्रकट हो जायगी।" इन्द्रपाल को हंसराज की इस दगाबाजी पर तो क्रोध आया लेकिन उसकी चामत्कारिक वैज्ञानिक शक्ति पर और भी अधिक विश्वास हो गया। इस कारण इन्द्रपाल ने अपने विश्वास और समझ के अनुसार उससे बहुत गहरा बदला लेने की चेष्टा भी की।

इन्हीं दिनों बंगाल के क्रान्तिकारियों द्वारा चटगांव के शस्त्रागार पर आक्रमण कर शस्त्र लूट लेने का समाचार आया। लाहौर में भी बहुत सनसनी थी। लाहौर मे मालरोड पर लार्ड लारेंस की एक बड़ी भारी मूर्ति थी। इस मूर्ति के एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में कलम थमी थी। मूर्ति के नीचे लिखा था—"Will you be Governed by Pen or Sword ?" (तुम कलम का राज चाहते हो या तलवार का ?) यह मूर्ति सन् १६५७ के गदर की स्मृति रूप थी और पंजाब के लिये बहुत कलंक की बात। स्कूल-कालिज में पढ़ते समय भी इस मूर्ति के समीप गुजरते समय हम लोगों का खून खौल उठता था। १६१६ के रौलेट बिल विरोधी आन्दोलन में जब अभी गांधी जी की अहिंसात्मक नीति कांग्रेस पर अपनी समझौतावादी नीति की लगाम नहीं कस-पाई थी, जनता ने इस मूर्ति पर आक्रमण कर इसकी तलवार और कलम तोड़ दी थी। मूर्ति ही गिरा दी जाती परन्तु पुलिस ने पहुंच कर गोली चला देश के कलंक के चिन्ह को बचा लिया।

जनता के उग्र विरोध के परिणाम में सरकार का कुछ 'हृदय परिवर्तन' हो गया। पंजाब के अपमान के प्रतीक इस मूर्ति के नीचे लिखे शब्द सरकार ने बदल दिये—"I Served You With Sword and Pen" "मैंने कलम और तलवार से तुम्हारी सेवा की है।" लाहौर में नौजवान-भारतसभा ने इस मूर्ति के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया था और अब जनता फिर इसे तोड़ने के लिये सत्याग्रह कर रही थी। इस आन्दोलन का नेतृत्व कांग्रेस के वयोवृद्ध नेता नहीं नौजवान ही कर रहे थे। मालरोड पर 'शेरदिल' सिपाही हर समय घूमते रहते थे। सत्याग्रह करने वाली टुकड़ियों को मालरोड पर आता देख मार-पीट कर उन्हें तितर बितर कर दियाजाता था। पुलिस की मार से जनता का सत्याग्रह आन्दोलन दबने लगा।

इन दिनों सुखदेवराज लाहौर की 'गली चिड़िमारां' में अपना मकान छोड़ इन्द्रपाल के मकान में आ गया था। वह फरार न था इसलिए

उसे घर छोड़ने की जरूरत न होनी चाहिए थी लेकिन वह आ ही गया तो क्या कहा जाता। धन्वन्तरी के साथ आकर वह यह जगह देख गया था। अब रात भी यहाँ ही काटने लगा। वह उन दिनों एम० ए० में पढ़ रहा था। असलीयत यह थी कि उसका मन पढ़ाई में न लगता और न घर के ग़रीब और अनाकर्षक वातावरण में। जैसे कुछ बिगड़ैल लड़के होते हैं जो स्कूल से भाग कर केवल माली की चिड़चिड़ाहट और परेशानी देखने के लिए ही बाग़ों में कच्चे फल झाड़ कर फेंक देते हैं। वैसी ही प्रकृति सुखदेवराज की भी थी। जब देखो, वह टोकता रहता—कुछ हो ही नहीं रहा। यह किया जा सकता है वह किया जा सकता है।

उस समय मैं उसे उत्साह से उतावला साथी समझ रहा था तिस पर अच्छी तरह पढ़ा लिखा। उसे सन्तुष्ट करने के लिए मैंने 'शेरदिल' सिपाहियों से हथियार छीन कर दल को फायदा पहुँचाते हुए सरकार की प्रतिष्ठा पर चोट करने की योजना बता दी और उसके लिए आवश्यक तैयारी में सहयोग देने के लिए कहा। मेरा विचार था कि एक एक 'शेर-दिल' सिपाही पर दो दो साथी आक्रमण करें। एक साथी अपनी साइकिल 'शेरदिल' की साइकिल से भिड़ा कर उसे गिरा दे। उसी समय दूसरा साथी गिरे हुए शेर दिल के माथे पर पिस्तौल रख गोली मार दे। शेर-दिलों पर ऐसा आक्रमण एक ही समय लाहौर की भिन्न-भिन्न एकान्त ज़गहों में एक साथ करने का विचार था। विशेषरूप से क्रान्तिकारियों का ही दमन करने के लिए बनाई गई पुलिस के पाँच आदमी मारने का प्रयोजन पुलिस को जनता के राजनैतिक दमन से डराना भी था।

सुखदेवराज प्रतिदिन दो या तीन बार कहता—"समय बरबाद करने से क्या फायदा? मुझे एक पिस्तौल दे दो। मैं अकेला ही एक 'शेरदिल' को मार कर उसका पिस्तौल छीन लाता हूँ।"

मैं उसे समझाता—"तुम एक से छीन लाओगे तो पुलिस अफ़सर तुरन्त शेरदिलों को दो-दो या तीन-तीन साथ रहने का हुकम दे देंगे। हमारी असली योजना विफल हो जायगी। पूरी तैयारी हो लेने दो!" मैंने कहा—"तुम्हारे हाथ बहुत खुजाते हैं,तो पहले साइकिलें ही इकट्ठी करो!" इस काम के लिए पांच पिस्तौल और दस साइकिलें तथा दस चुस्त साथियों की आवश्यकता थी। पिस्तौलों की तो मैं केन्द्र से आने की प्रतीक्षा कर रहा था। साइकिलें लाहौर में ही इकट्ठी की जानी थीं।

इन्द्रपाल के मकान में इस समय दल के काम के लिए तीन साइकिलें माँग-ताँग कर और पुर्जे नम्बर बदल कर इकट्ठी कर ली गई थीं।

दोपहर का समय था उसने चुनौती दी—"आओ मेरे साथ गवरमेंट कालिज तक चलो!" मैं भी चल दिया। उसने मुझे कालिज के सामने कचहरी के पास खड़ा रहने के लिये कहा और स्वयं कालिज के भीतर पैदल जा एक नई साइकिल पर चढ़ा चला आया। साइकिल उसने मुझे दे दी और पैदल कालिज लौट गया। मुझे साइकिल सौंप उसने कहा लौटकर तुम कालिज के यूनिवर्सिटी वाले दरवाजे पर आओ। चोरी की साइकिल मैं मकान पर छोड़ एक दूसरी पुरानी साइकिल पर निश्चित जगह पहुँचा। मैं दरवाजे के सामने से कुछ दूर आगे जा लौट रहा था कि वह दूसरी नई साइकिल लिए आता दिखाई दिया। फाटक से कुछ दूर जा वह साइकिल उसने मुझे थमा दी। मैं दोनों साइकिलें लिए लौटा। इस बार मैं लौटा तो इन्द्रपाल को अपनी साइकिल के पीछे बैठा लाया। सुखदेव इन्द्रपाल को ले फिर कालिज के भीतर चला गया और कुछ देर बाद दोनों साइकिलों पर लौट आये। सुखदेवराज के इस साहस को तो स्वीकार करना पड़ा लेकिन उसकी जल्दबाज़ी मुझे ज़रूर अखर रही थी। हां, भगवती भाई ने लाहौर आकर जब राज की यह बहादुरी मुझ से सुनी तो उन्हों ने भी गद्गद् स्वर में कहा—"He is a jewel" (रत्न आदमी है।)

एक दिन प्रेम बहुत घबराया हुआ आया। उसकी आंखों में आंसू थे। उसने बताया—"प्रकाशवती ने आप को देने के लिये एक लिफाफा भिजवाया था। वह मुझसे कहीं गिर गया है। वह कहती हैं उसमें एक हज़ार रुपया था। मुझे सुनकर बहुत विस्मय और दुख हुआ। प्रेम को भय था कि दल उसे इस बात के लिये कठोर दण्ड देगा। मैंने उसे आश्वासन दिया—"तुम ढूंडने का यत्न करो! सज़ा बेईमानी की होती है। गलती के लिये तो दुख ही है। क्या किया जा सकता है परन्तु बेईमानी होगी तो छिप न सकेगी!"

इस घटना के दो-तीन दिन के भीतर ही प्रेम ने संदेश दिया कि प्रकाशवती मुझ से मिलना चाहती हैं। मेरे अनुमति दे देने पर प्रेम उन्हें बुला लाया। यह मेरा प्रकाशवती जी को देखने का पहला अवसर था। बहुत दुबली-पतली और छोटे क़द की लड़की थीं। प्रकाशवती ने प्रेम के एक हज़ार रुपया खो देने की शिकायत कर खेद प्रकट किया

इतना रुपया मुझे भाग्यवश पड़ा हुआ मिल गया था। ऐसा अवसर तो रोज नहीं होगा। दूसरी बात उन्हों ने यह याद दिलाई—"बेबे (बहन प्रेमवती) ने कहा था, यदि घर में रह कर काम करने में कठिनाई होगी तो मेरे घर छोड़ कर दल में आ मिलने का इन्तजाम कर दिया जायगा। अब घर में रह कर काम करना कठिन हो रहा है। घर के लोग मेरा विवाह कर देने पर उतारु हैं। सगाई कर ही दी है।" प्रकाशवती से पहली बार बात करते समय मैंने प्रेम को समीप बुला लिया था। कारण वही मध्यवर्गी पारिवारिक संस्कार था कि लड़की से अकेले में बात न करनी चाहिये। घर छोड़ने के बारे में मैंने सोच कर प्रेम द्वारा सन्देश भिजवाने का आश्वासन दिया। प्रकाशवती के मिलने आने और हजार रुपया खोये जाने की बात मैंने दुर्गा भाबी और धन्वन्तरी आदि को भी बतादी ताके इस बात में मेरी अकेली जिम्मेवारी न रहे। फिर भी इस बात ने बाद में बड़ा विकृतरूप धारण किया। यहां यह बात कुछ भी महत्वपूर्ण न जान पड़ने पर भी कह रहा हूँ ताके यथा प्रसंग इसका महत्व समझ में आ सके।

× × ×

लगभग तभी की बात है, मैं दोपहर के समय मकान के पिछले कमरे में बिलकुल अकेला बैठा कुछ पढ़ रहा था। इन्द्रपाल की प्रतीक्षा में सामने बरौठे का दरवाजा खुला था। आँगन से पार खुले दरवाजे से नजर बाहर दूर तक जा सकती थी। दरवाजा खुला होने पर पड़ोस से धनदेवीजी की मुर्गियां इस मकान में घुस आतीं। मुर्गियाँ आँगन गन्दा कर जातीं थीं इसलिए मैं खटका कर या कोई चीज उनकी ओर फेंक उन्हें भगा देता था। आँख पुस्तक या अखबार पर टिकाने पर मिनट दो मिनिट में फिर मुर्गियों के कुड़-कुड़ करने की आवाज होने लगती। मुर्गियों को कई बार भगा कर चिड़ गया था। इस बार समीप कोई ऐसी चीज न थी जो उनकी ओर फेंक कर डराता। एक बड़ी सी, मोटे माथे की कील पास पड़ी थी। एक खूब बड़ा मुर्गा सीना आगे बढ़ा बढ़ा कर चला आ रहा था। मुर्गा लगभग बीस फुट दूर होगा। मैंने कील उठा उसके सिर का निशाना साधा। निशाना खूब साध कर मैंने कील चला दी। कील मुर्गे के माथे पर ठीक सामने लगी और वह कोई शब्द किए बिना या छटपटाये बिना गिर गया।

उसी समय इन्द्रपाल आ गया। वह बहुत घबराया। धनदेवी ऐसी

महिला नहीं थीं कि उनका कोई नुकसान करके उपेक्षा की जा सकती। वे घर में बच्चों या नौकर को डाँटतीं तो आवाज हमारे यहाँ तक आती थी। इन्द्रपाल ने कहा—"इस औरत से बिगाड़ कर गुजारा न चलेगा।" वह मुर्गे को टाँग से उठाये उन के यहाँ पहुंचा और मुर्गा उन के सामने रख बोला—"एक घण्टे भर से यह बार-बार आँगन में घुस आता था। कई बार डराकर भगाया। इस बार एक जरा सी कील इसकी ओर फेंक दी यह लेट गया। बताइये, मेरा क्या कसूर है? आप कहें तो इसके दाम दे दूँ और इसका भोजन कर लूं!"

"चल झूठा"—उसे उत्तर मिला—"अभी एक मिनिट हुआ तू सामने मे गया है। मुर्गा तुझे एक घण्टे से परेशान कैसे कर रहा था? तेरे घर में कौन है?"

"कोई नहीं, मेरा भाई गांव से आया है।"

"दिन में कभी घर से नहीं निकलता?"

"उसकी आंखें आई हुई हैं।"

"चल झूठा। मैं तो उसकी चाल पहचानती हूं। मेरा क्या है; पर उसकी मां की आंतें तो अपने लड़के को देखने के लिये कलपती होंगीं। एक बरस हो गया बेचारी को लड़के को देखे! वह यहां दो बार मुझसे मिलने आई भी पर मैंने कोई बात न की। दिल पर पत्थर रख लिया। तुम लोग मां का दरद क्या जानो! नालायक आदमी हो! प्रेमदेवी (मेरी मां) बेचारी बड़ी परेशान है। दोनों लड़के एक जैसे हैं। पुलिस उस बेचारी के ही पीछे पड़ी रहती है। मैं तो उसे यहां ही लाकर अपने साथ रख लेती पर सोचती हूं, उसे यहां ले आऊं तो पुलिस घर के सामने बैठने लगेगी और तुम्हारे दरवाजे पर भी उन की नज़र पड़ेगी। मैं क्या समझती नहीं? लेकिन एक दिन मैं उसे ले आऊंगी। लड़के को देख तो जाये!"

इन्द्रपाल ने आगे बात बनाना व्यर्थ समझा और मुझ से पूछ कर जवाब देने का आश्वासन दे आया। मुझे विश्वास था कि बड़ी चतुरता का व्यवहार कर रहा हूं, धनदेवी ही पहचान नहीं सकीं। यह जान कर कि चतुरता उन्हीं ने अधिक दिखाई, झेंप अनुभव हुई। वह मुर्गा तो हमें मिल ही गया साथ में उसे रांधने के लिये घी, मसाला वगैरा भी मिला। हम लोग दिन में प्रायः रोज़ खिचड़ी ही पका लेते थे। संध्या

समय बाहर जा किसी तन्दूर पर रोटी खा आते। मैंने इन्द्रपाल को अनुमति दे दी कि मां आकर मिल जाये लेकिन तुम स्वयं जाकर देखते रहना कि कोई सी. आई. डी. उनके पीछे न आ रहा हो।

मां मिलने आईं। एक बरस में वे बहुत दुबली हो गई थीं। उन्होंने बताया कि धर्मपाल घर में बहुत कम आता है। बिजली का काम छोड़ कर केवल लाहौर षड़यंत्र के बन्दियों की डिफेंस कमेटी का काम करता है। कभी कोई अच्छी मजदूरी मिल जाती है तो दो-तीन दिन काम करके पांच-सात रुपये दे जाता है। लाहौर अपने जिन सम्बन्धियों के साथ साझा मकान लेकर हम रहते थे, वे दरवाज़े पर खूफ़िया पुलिस वालों के हरदम बैठे रहने के कारण घबरा कर मकान छोड़ गये। पूरे मकान का किराया वे कैसे देतीं? वे वहां से स्त्रियों की 'बुद्धसभा'* के मकान में चली गई हैं! वहां भी जाने कितने दिन टिकना मिलेगा? कहीं मुफ्त रहने में बुरा भी लगता है। वे आंखों में आते आंसुओं को रोके मुस्कराने का यत्न करती रहीं।

मैंने भी कोई उदासी न दिखाई। हंस कर पूछा—"मैं कोई बुरा काम तो कर नहीं रहा हूं? अपने देश से विदेशी गुलामी दूर करना तो कर्त्तव्य है। आप तो मुझे बचपन से ही सचाइ और वीरता का उपदेश दिया करती थीं, वही काम मैं कर रहा हूं। आप जो चाहती थीं, वही हो रहा है। अपनी मां की तो सभी चिन्ता करते हैं, भारत-माता की भी तो चिन्ता किसी को करनी चाहिये। भगतसिंह सुखदेव भी तो जेल में बैठे हैं…!"

मां ने साहस प्रकट किया—"मुझे कोई चिन्ता नहीं है। कोई नौकरी ढूंढ रही हूं। सारी उम्र परीश्रम किया है, अब भी कर लूंगी। बस कलंक की कोई बात न करना। मैं समझूंगी, मेरी कोख सफल हो गई।"—इसके बाद फरारी की अवस्था में मां से मुलाकात नहीं हुई। जब धर्मपाल भी गिरफ्तार हो गया तो उन्हें नौकरी मिलने में भी बहुत कठिनाई होने लगी। मुर्गे के हत्याकांड के बाद से धनदेवी प्रायः नित्य ही छाछ या मट्ठे का एक लोटा इन्द्रपाल को दे देतीं। कभी

---

*कुरीतियों के निवारण के लिये आर्यसमाज की ही तरह बनाई गई स्त्री सभा। इसका सम्मेलन प्रति बुद्धवार होने कारण इसे बुद्धसभा कहा जाता था।

पूछतीं, चाहिये तो कुछ दूध ले जाओ। इन्द्रपाल की गिरफ्तारी के अवसर पर पुलिस ने धनदेवीजी के, इन्द्रपाल की मकान मालिक और पड़ोसी होने के कारण उनसे इन्द्रपाल के घर आने-जाने वालों के बारे में पूछताछ करनी चाही। धनदेवी जी बहुत ऊंचे स्वर में बिगड़ उठीं—"मैं क्या पड़ोसियों के घरों मे झांकती फिरती हूं ?"

× × ×

मूर्छा गैस पाने की आशा न रही थी। साथियों को छुड़ाने के लिये पांच-सात आदमियों को ले, जेल पर धावा बोल देना मुझे कुछ जंच न रहा था। जेल के दरवाज़े पर सशस्त्र गारद रहती है। उन दिनों तो सेन्ट्रल जेल में क्रान्तिकारियों का मुकद्दमा चालू होने के कारण जेल के दरवाजे पर छोलदारी गाड़ कर शेरदिल-पुलिस की एक गारद भी तैनात कर दी गई थी। मैं स्वयं जेल के दरवाज़े के सामने से कई बार गुज़र कर स्थिति देख आया था। मैं चाहता था पहले शेरदिलों से हथियार छीनने का काम किया जाय और फिर हथियारों की संख्या बढ़ा कर जेल पर अधिक साथियों को लेकर आक्रमण किया जाये। कार्यक्रम में परिवर्तन कर सकने के लिये मैं भगवती भाई का समर्थन चाहता था इसलिये उन्हें लाहौर बुला लिया था। कार्यक्रम में परिवर्तन उन्हें मंजूर न हुआ। उनके विचार में यह भगतसिंह के प्रति उपेक्षा का व्यवहार था।

वाइसराय की गाड़ी के नीचे विस्फोट स्थगित करने के लिये बहस की चर्चा करते समय एक बात याद न रही थी। भैया ने विस्फोट स्थगित करने के पक्ष में एक तर्क भगतसिंह की राय के रूप में भी दिया था। विद्यार्थीजी कांग्रेसी दृष्टिकोण के कारण विस्फोट के विरुद्ध थे। भैया स्वयं विस्फोट स्थगित करना न चाहते थे। उन्हों ने बच्चन को लाहौर भेज भगतसिंह की भी राय ली थी। जेल में बन्द भगतसिंह से हम लोग गुप्तरूप से पत्र व्यवहार करते ही रहते थे। भगतसिंह ने राय दी थी कि यदि इस घटना से कांग्रेसी नेताओं की नाराज़गी का भय है तो उसे स्थगित कर पहले हम लोगों को ही छुड़ाने का यत्न किया जाये। इससे कांग्रेस नेता भी नाराज न होंगे और दल की प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ेगी। उस समय भगवती भाई यह बात न माने थे परन्तु बाद मे भगतसिंह को सन्देश भेजा गया था कि अब सब काम छोड़ कर तुम्हें छुड़ाने का ही यत्न किया जायगा। उसे यह भी बता दिया गया था कि यशपाल इसी प्रयोजन से लाहौर में व्यवस्था कर रहा है। भगतसिंह इस आश्वासन

में प्रतीक्षा कर रहा था और अपनी ओर से एक योजना भी इस सम्बन्ध में हमें भेज चुका था। भगवती भाई उस वचन पर दृढ़ रहना चाहते थे। मैंने अपनी बात पर काफी जिद् की और कुछ कड़वी बातें भी कह गया, उदाहरणतः—"···तुम मोह में फंसे हो। भगतसिंह चल चुका कारतूम (स्पेंट कार्टरिज) है। यह लड़ाई का समय है, प्रेम का नहीं। चल चुके कारतूस की गोली ढूंडने के लिये अपने दूसरे कारतूसों (अर्थात साथियों) को नष्ट करने से क्या लाभ? किसी एक आदमी के लिये दल की शक्ति न्योछावर करना मूर्खता है। बीसियों भगतसिंह दल में निकल आयेंगे। पहले शेरदिल कांड करके अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिये। उसके बाद यदि युक्तिसंगत जंचे तो इस काम में हाथ डालना चाहिये!"

भगवती भाई को मेरी बात लग गई। उदास हो गम्भीरता से उन्हों ने कहा—"तुम से ऐसी बात की आशा नहीं थी। मैं अब कुछ नहीं कहूँगा। आजाद को फैसला करने दो।"

मैं और भी चिढ़ गया—"आज़ाद क्या करेगा? जो तुम समझा दोगे वह कह देगा! पूरी स्थिति भगतसिंह को ही लिख कर भेजी जाय। वह जो कहेगा, मैं मान लूंगा।"

भगतसिंह की बहन के हाथ गुप्त पत्र जेल में भेजा गया। तुरन्त उत्तर भी आ गया। भगतसिंह को क्या मालूम था कि बाहर झगड़ा हो रहा है। उसने मजाक में मेरे प्रति संकेत से उत्तर दिया—"···उस कलाकार से कहो नित्य नयी कल्पना (अर्थात शेरदिल कांड) न गढ़ा करे। जो पहले सोचा है, वह पहले होना चाहिए। उसे समझाओ कि परिस्थिति और नीति निश्चित करने में 'मोटा' (भगवतीचरण) ज्यादा योग्य है। एक्शन (सशस्त्र संघर्ष) में 'मोटे' को बचा कर 'पण्डित' (आज़ाद) को आगे रखो! कलाकार से कहो वह मेनीफेस्टो (घोषणा पत्र) लिखे" भगतसिंह के पास 'फिलासफी आफ़ दी बम' की प्रति पहुँच गई थी। उसे पसन्द भी बहुत आई थी। उसका अनुमान था कि वह मेरी लिखी चीज थी परन्तु वास्तव में यह घोषणा रुपये में बारह आने भगवती भाई की ही लिखी थी—"जब तक उसकी (अर्थात् मेरी) भावुकता पूरी नहीं होगी, वह हर बात में आगे सिर निकालेगा। वह एक काम (अर्थात गाड़ी के नीचे विस्फोट) तो कर चुका है, कुछ दिन संतोष करे। फिल-हाल एक्शन (घटना) से अधिक उपयोग लगातार घोषणायें निकालने का है।" उत्तर आजाने पर मैं दाँत किटटिाकर चुप रह गया।

हंसराज की मूर्छा गैस से निराश होकर गैस बनाने का एक और प्रयत्न हम लोगों ने कर डाला। गैस की समस्या पर धन्वन्तरी से विचार करने पर उसने सुझाया—विज्ञान के नियम और प्रक्रिया किसी आदमी की बपौती नहीं है। हंसराज न सही, दूसरा भी कोई आदमी जो विषैली गैस का सिद्धांत समझता है, यह काम कर सकेगा। आदमी ही तो गैस बनाते हैं। हंसराज क्या खुदा है ?" भगवती भाई और मुझे दोनों को ही यह बात जंची। धन्वन्तरी का एक मित्र 'केवल' उन्हीं दिनों जर्मनी से रसायन में इन्जिनियरिंग (कैमिकल इन्जिनियरिंग) सीखकर आया था। धन्वन्तरी उसे बुला लाया।

केवल साधारणतः योरुपियन पोशाक में रहता था। हमारे अड्डे पर वह भेष बदल पठान की पोशाक में आया। केवल ने पुस्तकों की सहायता और अनुमान से विषैली गैस उत्पन्न करने वाले पदार्थ सोच डाले। गैस बनाने का यत्न करने से पहले उसने चेतावनी दी, गैस बनेगी तो पहले हमी लोगों की सांस में जायगी। उसकी अवरोधक चीज पहले होनी चाहिए। केवल कोई चामत्कारिक चीज़ नहीं, पहले युद्ध में उपयोग की गई गैस बनाने का यत्न कर रहा था। इसलिए उसका अवरोधक भी वैसा ही बनाना आवश्यक था अर्थात् पहले गैस का प्रभाव रोकने वाला तोबड़ा (गैसमास्क) कोयला और कुछ दूसरी चीजें भर कर बना लिया गया।

गैस बनाने के लिए केवल के साथ मैं और भगवती भाई भी बैठे। जहाँ तक मुझे याद है केवल ने 'पोटाशियम पर्मैंगनीज़' को गन्धक के तेजाब में मिलाने का प्रस्ताव किया। यदि मैं यह काम करता तो पहले तोला भर तेजाब में पोटाशियम के दो चार कतरे डालकर देख लेता। पिक्रिक एसिड बनाने के प्रयोग में मैंने यही ढङ्ग अपनाया था। केवल ने दोनों चीज़ों को अच्छी खासी मात्रा में लिया। तेजाब में पोटाशियम पड़ते ही भयंकर परिमाण में जामनी रङ्ग का धुआँ उठा; जैसे रेलवे इन्जन ने खूब तेजी से धुआँ छोड़ दिया हो। गैस से रक्षा के लिए बनाये हमारे तोबड़े कुछ न कर सके। एक दम कमरे से बाहर भागना पड़ा! भगवती भाई झुंझला उठे—"No more this nonsense. (यह वाहियाती बन्द करो !)"

× × ×

एक दिन सुबह घर पर मैं और भगवती भाई ही थे। प्रेम दस-साढ़े दस बजे प्रकाशवती जी को साथ लिए आया और बोला—"भाबी जी ने इन्हें यहाँ भेजा है ? घर से आ गई हैं। हमारे यहाँ तो सब से पहले संदेह होगा। जब तक कोई दूसरा प्रबन्ध न हो, यहाँ ही रहे।"

उस मकान में तब तक कोई भी लड़की या स्त्री न थी। दुर्गा भाबी कभी कभी आती थी पर उनकी बात दूसरी थी। उनका आत्मविश्वास का व्यवहार ऐसा था उनकी चिन्ता करने का सवाल क्या वे ही दूसरों की चिन्ता करती थीं। प्रकाशवती को मैंने स्वयं लिखा था कि क्रांतिकारी काम में सहयोग देने के लिए वे घर छोड़ देंगी तो उन के लिए दल की ओर से प्रबन्ध हो जायगा। यह आशा न थी कि वे इतनी जल्दी आ जायंगी और बिना एक दो दिन पहले खबर दिये। उनके सहसा सामने आ जाने पर कुछ परेशानी हुई। दल में प्रकाशवती को मेरे और प्रेम के सिवा कोई साथी जानता भी न था। भगवती भाई ने मुझे ही उनसे बात कर स्थिति समझने के लिये कहा। प्रकाशवती को एक ओर ले जा कर मैंने पूछा—"बिना पहले कोई सूचना दिये आप कैसे आ गईं ? हमने तो कोई प्रबन्ध अभी नहीं किया।"

प्रकाशवती ने उत्तर दिया कि उस सुबह मेरा लिखा पत्र उन के भाई के हाथ पड़ गया। उस पत्र में उनके घर छोड़ आने की बात थी। पिता को मालूम हुआ। उन्हों ने अपमान और क्रोध से बावले हो हुक्म दिया—"जो जेवर तुम्हारे शरीर पर है, सब उतार दो और अभी निकल जाओ !"—यह कह वे नीचे के कमरे में जा बैठे। प्रकाशवती ने सब जेवर उतार वहीं डाल दिया और मकान की छत पर जा साथ के मकान में चली गई। लाहौर में प्रायः ही पड़ोसी मकानों की दीवारें साझी होती हैं। और छतों की मुंडेरें छोटी-छोटी। इस मकान से वे नीचे गली में उतरीं और दुर्गा भाबी के यहाँ पहुँच गयीं।

मैंने पूछा—"घर में रहने में अड़चन क्या है ?"

"पिताजी विवाह कर देना चाहते हैं। मैं विवाह नहीं करूँगी। इन्हों ने आपका पत्र देख लिया है। इसलिए वे बहुत नाराज़ हैं।"

"विवाह न करने के लिए ही आपको घर छोड़ना पड़ा है?"

उन्हों ने सिर झुकाकर स्वीकार किया।

चुपचाप सोच कर मैंने पूछा—"आप कितना पढ़ी-लिखी हैं ?"

"मिडिल पास करने के बाद हिन्दीरत्न की परीक्षा पास की है। घर वाले ज्यादा पढ़ने नहीं देते ?"

"कुछ भूगोल, इतिहास पढ़ा है ?"

"हां, सारी दुनिया का।"

इस भोले उत्तर से मुझे हंसी आ गई बोला—'सारी दुनिया से क्या मतलब ? अपने देश का ही ठीक से आ जाये तो बहुत है।" मेरी हंसी से उन्हें क्रोध आ गया। मैंने पूछा—"और क्या पढ़ा है ?"

"बेबे ने जो पुस्तकें दी थीं सब पढ़ी हैं।"

मैं यह जांचने की चेष्टा कर रहा था कि वे दल के लिये कितनी उपयोगी हो सकेंगी। उत्साह और लगन के सम्बन्ध में सन्देह न था परन्तु उत्साह के साथ ज्ञान भी तो चाहिये।

"देखिये"—मैंने बेलाग और कुछ कड़े स्वर में कहा—"आप यदि अपनी इच्छा के विरुद्ध विवाह का विरोध कर रही हैं तो हमें आप से सहानुभूति जरूर है परन्तु इस काम में हम आपकी सहायता नहीं कर सकते। हमारा काम केवल राजनैतिक संघर्ष है।"

"आप का क्या मतलब ?"—प्रकाशवती ने घबराहट से पूछा।

"मतलब है कि विवाह के विरोध में आप घर छोड़ कर आई हैं तो हम आप के लिये कोई इंतजाम नहीं कर सकेंगे। हमारा यह काम नहीं है।

प्रकाशवती का सिर झुक गया। निराशा से बोलीं—"अच्छा, मैं चली जाऊंगी।"

"कहां जायेंगी ? घर लौट जाइये और पिता के अन्याय का विरोध कीजिये !"—मैंने सलाह दी।

"नहीं घर नहीं जऊंगी। एक बार आगई हूं तो घर नहीं लौटूंगी और चाहे कहीं चली जाऊं ?"

"कहां जायेंगी ?"

"कहीं चली जाऊं, चाहे रावी (नदी) में।"

मेरा हृदय दहल गया। मैंने समझाना चाहा यह बुद्धिमानी नहीं है ?

"बेबे ने (बहन प्रेमवती) ने तो कहा था कि जब तक स्वयं इच्छा

न हो, विवाह न करना। घर के लोग दल का काम न करने दें तो घर छोड़ देना। आपने भी ऐसा ही लिखा था।"—प्रकाशवती ने आंखों में आते आंसू रोकने के लिये ओठ दबा कर याद दिलाया।

"आप तो कहती हैं घर विवाह के विरोध में छोड़ रही हैं। दल के काम के लिये तो आपने घर नहीं छोड़ा?"

"विवाह कर लूं तो दल का काम कौन करने देगा?"

"तो फिर कहिये कि दल के लिये ही घर छोड़ा है। ऐसी हालत में आप हम लोगों की सिर-आंखों पर हैं।"—मैंने कड़ाई दिखाकर दल के सिर पर पड़ते बोझ से बचने की जो चतुरता की थी उसके लिये लज्जा अनुभव हुई। इसलिये कुछ खुशामद भी की—"मेरी बात का बुरा न मानिये। मैं असलीयत जान लेना चाहता था। मेरी बातें जरा कड़ी थीं इसके लिये क्षमा कीजिये।"

जब तक मैं कड़ाई से बात कर रहा था प्रकाशवती भी गम्भीरता से जवाब दे रही थीं। मैं झेंप कर क्षमा मांगने लगा तो वे आंचल में मुख छिपा आंसू पोंछने लगीं। सहसा खयाल आया, दल के दूसरे साथी इन्हें रोते देखेंगे तो क्या प्रभाव पड़ेगा इसलिये चुप कराने के लिये समझाने का यत्न किया परन्तु बात करते न बनती थी। अपनी आरम्भिक ढिठाई और कड़ाई के कारण एक झेंपसी अनुभव होने लगी और वह कुछ दिन बाद मेरी 'कमजोरी' बन गई। उसी दिन सन्ध्या मैंने उन्हें एक पत्र अपने पिता के नाम लिख देने के लिए कहा। पत्र का अभिप्राय पिता को यह बताना था कि उनकी लड़की किसी लज्जा-जनक प्रयोजन से घर छोड़ कर नहीं गई है। प्रयोजन फिलहाल विवाह न कर देश का काम करना है। वे इस विषय में शिकायत और शोर न करें। उससे लाभ के बजाय हानि ही होगी।

शेरदिलों पर आक्रमण और साथी बन्दियों को छुड़ाने की तैयारी के समय सुखदेवराज ने एक और बहादुरी कर दिखाई। लारेंस की मूर्ति को तोड़ने के सत्याग्रह के प्रसंग में मालरोड पर जनता और पुलिस में रोज़ कुछ धक्कमधक्का होता ही रहता था। सुखदेवराज उस ओर से घूमता हुआ आया और बोला—"नील, (लाहौर का सुपरिण्टेण्डेंट पुलिस) सत्याग्रहियों को रोकने के लिए डाकखाने के सामने खड़ा है। बड़ा अच्छा अवसर है। एक रिवाल्वर दे दो। अभी साइकिल पर

जाकर उसे मार आता हूँ। खूब भीड़ जमा है। मैं पीछे से जाऊंगा और साफ़ निकल आऊंगा।"

उसके ऐसे अनुरोधों को पूरा न कर सकने से मैं कुछ झेंप अनुभव करने लगा था। उस समय मकान पर मेरे और प्रकाशवती के अतिरिक्त दूसरा कोई न था। पूछा—"यदि तुम्हारा पीछा किया गया? कोई तुम्हें बचाने वाला भी तो चाहिए? इस समय यहां कोई भी आदमी नहीं। मुझे तो वहां कई आदमी पहचानने वाले मिल जायंगे। मैं फरार हूँ। मुझे देख कर, तुम्हारे नील को गोली मार सकने से पहले ही, कोई पुकार बैठा तो बात बिगड़ जायगी।"

"मुझे बचाने वाले रक्षक (कवर) की कोई जरूरत नहीं।"—उसने आग्रह किया। हार माननी पड़ी। उसे एक रिवाल्वर दे दिया परन्तु उसके मकान से निकलते ही मैंने झटपट एक पगड़ी सिर पर लपेटी और पगड़ी का पीठ पर लटकता छोर सामने दांत से ऐसे थाम लिया कि नाक और ठोड़ी दिखाई न दे और जेब में पिस्तौल डाल खूब तेज़ी से साइकिल पर सुखदेव के बताए स्थान की ओर उसके पीछे भागा। किसी साथी को अरक्षित अवस्था में खतरे का सामना करने के लिए अकेले भेज देना मुझे सह्य न हुआ। सुखदेव साइकिल को धीमे चला रहा था। इसलिए वह डाकखाने तक पहुंचने से पहले ही मुझे दिखाई दे गया। वह भीड़ और पुलिस के जमघट की ओर न जा भीड़ के पीछे से गवालमन्डी की ओर चला गया।

अनुमान किया कि वह 'लोअर मालरोड' से घूमकर दूसरी तरफ़ से पुलिस के पीछे आयगा। मैं उसकी प्रतीक्षा में पुलिस के पिछवाड़े जा टहलता रहा। नील भीड़ को रोके पुलिस से काफ़ी दूर पीछे खड़ा सिगरेट सुलगाये स्थिति देख रहा था। फुटपाथ के समीप उस की मोटरसाइकिल खड़ी थी। उसके समीप ही दूसरा सशस्त्र सार्जेण्ट मोटर साइकिल सहित खड़ा था। मैं सोच रहा था, ऐसे समय राज करना क्या चाहता है? प्रतीक्षा में मालरोड पर कुछ दूर आगे जा पीछे लौटा। एक छोटी दुकान से एक बोतल लैमन पी कर समय काटा। मेरे देखते-देखते नील और गोरा सार्जेण्ट अपनी मोटर साइकिलों पर बैठ पीछे की ओर लौट गये। मैं भी मकान पर लौट आया।

एक घण्टे बाद सुखदेव आया। मुझे पिस्तौल लौटाते हुए बोला—"स्थिति ठीक नहीं थी। नील के चारों ओर आदमी खड़े थे। गोली

किसी दूसरे को लग जाती ! मैं बहुत देर तक उसके चारों ओर घूमता रहा।" इस समय इन्द्रपाल भी लौट आया था। उसके सामने उस पर जिरह कर उसे झूठा प्रमाणित करना ठीक न लगा। इन्द्रपाल पहले ही उससे खिन्न हो चुका था।

× × ×

यही उचित समझा गया कि प्रकाशवती अभी कुछ दिन केवल अध्ययन करे। फरारी की अवस्था में असंदिग्ध ढङ्ग से रहने और दल के साथियों के साथ निःसंकोच व्यवहार का अभ्यास कर ले। दल में उनका नाम कमला रख दिया गया। उन्हों ने आते ही दूसरे दिन से इन्द्रपाल के मकान को साफ़ रखना और अंग्रेजी पढ़ना शुरू कर दिया। इस मकान में दिल्ली से बचन भी आ गया था। कभी कभी सम्पूर्णसिंह भी आ टिकता। भीड़ अधिक हो गई थी। 'किला गुज्जरसिंह' में भी दल ने एक छोटा सा मकान लिया हुआ था। सुखदेवराज, विशेश्वर और भगवती भाई भी लाहौर आने पर वहाँ रहते थे। सुखदेवराज ने राय दी—"यहां बहुत भीड़ हो गई है। कमला लिख पढ़ नहीं पायगी इसे हमारे मकान में भेज दो। वहां जगह काफ़ी है। मैं नियम से पढ़ा भी दिया करूँगा।" दुर्गा भाभी ने राय दी—"अच्छा हो कमला इनके (भगवती चरण) या तुम्हारे साथ ही रहे या इसे दिल्ली में महाशय (कृष्ण) के यहाँ भेज दो।"

सुखदेवराज का प्रस्ताव अच्छा न लगने पर भी मैंने भाभी की बात का ही विरोध किया—"इन बातों में क्या रक्खा है? वहीं (किला गुज्जरसिंह) जाने दो।"—इस में अपनी इच्छा और रूढ़िगत संस्कार दोनों से लड़ने का प्रयत्न था।

जाने क्या सोचकर भाभी बोली—"हटाओ सब झगड़ा। तुम उस से शादी कर लो।" मुझे यह बात बहुत बुरी लगी क्योंकि यह मेरी उस इच्छा की ओर संकेत था जिसे मैं दबा देना चाहता था। मैंने क्रोध में उत्तर दिया—"बड़ी बत्तमीज़ हो तुम !"—भाभी मेरी इस धृष्टता को पी गई और चुप रहीं।

नये सूत्रों से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए मैं रावलपिण्डी और लायलपुर आता जाता रहता था। भगवती भाई भी दिल्ली चले गये थे। शायद सप्ताह भर बाद मैं किला गुज्जरसिंह के मकान में प्रकाशवती से मिला तो उन्हों ने पूछा—"क्या उस मकान में जगह नहीं है ?"

"क्यों यहाँ कुछ तकलीफ़ है ?"—मैंने पूछा।

"नहीं"

"तो फिर ?"

"वहाँ ही बुला लीजिये"—संकोच से उन्हों ने कहा।

"वहाँ भीड़ है, तकलीफ़ होगी ?"

"आपको भी होती होगी ? वैसे ही मैं भी रह लूंगी।"

"क्यों बात क्या है ?"

"वहां आप के पास रहूंगी तो जल्दी कुछ सीख जाऊँगी !"

"पढ़ती तो यहाँ भी हो ! तुम्हें तकलीफ न हो इसलिये यहाँ रखा गया है।"

"आप को क्या मेरी वजह से तकलीफ होगी ?"

"वाह, मुझे तो अच्छा ही लगेगा।"

"तो मुझे भी अच्छा ही लगेगा।" उत्तर मिला

मैंने कई बार पूछा और कहा—"तुम्हें तकलीफ़ दे कर अपने पास रखना क्या उचित है ?"

"तकलीफ़ नहीं होगी"

शब्द तो शायद इतने ही थे परन्तु जब भाव प्रबल होते हैं अधिक शब्दों की जरूरत नहीं होती। मैंने याद दिलाया—"इस तरह सोचने से क्या फायदा ? इस मार्ग में कितने दिन की जिन्दगी है !"

"वो जैसे आपके लिये वैसे मेरे लिये"—उत्तर मिला। उन्होंने यह भी शिकायत की—"हरी भाई (भगवतीचरण) भी यहां से चले गये हैं। इन लोगों की छिछोरी बातें अच्छी नहीं लगतीं।"

उसी रात दुर्गा भाबी से मिलने पर मैंने बहुत झिझकते हुए कह डाला—"तुमने जो कहा था वही ठीक है !"

"क्या"—उन्हों ने पूछा

"कमला से शादी की बाबत……समझो हो गई।"

"अच्छा बच्चू ? तब कैसे बने थे ?…बहुत अच्छा हुआ।" उन्हों ने मेरी पीठ थपथपा दी। भाबी को इतना कह देने से मुझे संतोष हो गया कि कोई बात छिपा कर या अनुचित ढंग से नहीं कर रहा हूं।

मुझे भैया ने दिल्ली बुलाया था। मतलब था कि मैं जेल पर विना गैस के आक्रमण की योजना उन्हें ठीक से समझा सकूं और आक्रमण के समय मेरे अधिक उपयोगी हो सकने के लिए मुझे पिस्तौल के इलावा राइफल का भी अभ्यास करा दिया जावे। भैया ने एक राइफल भी खरीद ली थी। मैं प्रकाशवती को दिल्ली साथ ले गया। हम सब लोग तो जेल पर आक्रमण में जूझने वाले थे। सोचा, ऐसे समय उन का दिल्ली में रहना ही अधिक अच्छा है। उनका परिचय दल से सहानुभूति रखने वाले कुछ लोगों से करा देने का विचार था ताकि हम लोगों के बिना वे बिलकुल निस्सहाय न हो जायें; अर्थात् दिल्ली में उन्हें खयालीराम गुप्त, महाशय कृष्ण और ध्रुवदेव आदि से परिचित करा दिया। व्यक्तिगत रूप से उन पर भरोसे की कमी का प्रश्न नहीं था। लेकिन अब भी मैंने उन्हें जेल पर आक्रमण की योजना के सम्बन्ध में कुछ न बताया।

दिल्ली आने पर राइलफ के व्यवहार की शिक्षा के लिए भैया ने मुझे एक दिन के लिए मेरठ जिले में 'नलगड़ा' चलने के लिए कहा। कैलाशपति, लेखराम और शायद भवानीसिंह भी साथ थे। मुझे निशानाबाजी सीखने में विशेष उत्साह नहीं रहता था परन्तु भैया इस विषय में बहुत ध्यान देते थे। दृष्टिकोण के इस भेद का कारण यह था कि मैं तत्कालीन आतंकवादी कामों की आवश्यकता के विचार से ही सोचता था और वे हमारी व्यापक योजना के अनुसार 'गोरिला युद्ध' के लिए लोगों को तैयार करना चाहते थे। अस्तु, शस्त्र शिक्षा के लिए नलगड़ा जाते समय दो छोटे सूटकेसों में हथियार रख लिए गए और एक बड़े से होल्डाल में पांचों आदमियों के कपड़े तथा रात को सोने के लिए कम्बल आदि का बिस्तर बांध लिया गया। चलते समय एक सूटकेस भैया ने अपने हाथ में लिया और शेष सामान मेरे हवाले कर दिया—"सोहन, खयाल रखना।"

मैं निकर कोट और हैट पहने था। भैया निकर कोट और बाबू लोगों जैसी गोल (क्रिस्टी) टोपी। लेखराम, कैलाशपति और भवानीसिंह धोती, पायजामा कोट आदि। मेरी पोशाक और व्यवहार के कारण लारी के ड्राइवर ने मुझे अपने साथ आगे की जगह दे दी। मेरे पीछे की सीट पर भैया और सब लोग पीछे बैठ गये। बैठते समय मैंने कैलाशपति को बिस्तर का खयाल रखने के लिए कह दिया। नलगड़ा जाने के लिए

दिल्ली और मेरठ के बीच सड़क पर एक थाने के सामने उतरे। थाने के दरवाजे के दोनों खम्भों पर हम लोगों की गिरफ्तारी के लिए इनाम के इश्तहार लगे हुए थे। एक ओर लाहौर षड्यन्त्र केस के फ़रारों के इनाम का इश्तहार था जिसमें भैया और मेरा नाम था दूसरी ओर वायसराय की गाड़ी के नीचे विस्फोट के सूराग़ के लिये इनाम का इश्तहार था।

मैं अपने हाथकी अटेंची को लिये उतर गया था। बिस्तर लारी में ही चला गया था। भैया ने मुझे डांटा—"बिस्तर क्यों नहीं उतारा गया?" मैंने सफ़ाई दी—"मैं आगे था, कैलाशपति को कह दिया था। वह पीछे बैठा था।" वे बिगड़े—"जिम्मेवारी तुम्हें दी थी। बिस्तर में लोगों से मांगी हुई चीजें हैं। बिस्तर जब पकड़ा जायगा कपड़ों पर से निशान देख कर तहकीकात होगी। वो सब लोग फसेंगे या नहीं? लाहौर में पकड़े गये कपड़ों से क्या हुआ था?"

"अब बिगड़ने से क्या फायदा—" मैंने कहा—"मेरे पीछे आओ!"—मैं थाने के भीतर चल दिया। भैया मेरे पीछे-पीछे चले। थाने का स्टेशन इंचार्ज और शायद हैडकांस्टेबल बरामदे में कुर्सी और स्टूल पर बैठे काम कर रहे थे। मैंने जाकर रोब से पूछा—"थाने का इंचार्ज कौन है?"

थाने के लोग घबराहट में सलाम कर खड़े हो गये। मैंने कुर्सी खींचली और बैठ कर आधी अंग्रेजी और टूटी हिन्दुस्तानी में भैया को सम्बोधन किया—"मुन्शी, बिस्टर गुम का टीक रिपोर्ट दो!" और स्वयं सिगरेट जलाते हुए इंचार्ज को सम्बोधन किया—"आगे स्टेशन पर अबी फोन करो, बिस्टर पीचे बेजेगा। हम कल शिकार से आयगा।" और फिर भैया को सम्बोधन किया—"मुन्शी तुम समझाओ! तुम कल इदर पूचेगा।"

"हुजूर"—भैया ने हुकुम स्वीकार किया और थानेदार और मुंशी को लारी में बिस्तर आगे चले जाने की बात समझाने लगे। मैंने फिर स्टेशन इंचाज की ओर देखा—"बिस्टर अबी नई आता है तो उसे डीली स्टेशन पर बेजेगा। समजा! ऐड्रेस देता है।" एक काग़ज पर मैंने पता लिख दिया—"आर. के. मुडालयर, इन्जीनियर, सेन्ट्रल पी. डब्ल्यू. डी., केयर आफ स्टेशन मास्टर, दिल्ली।"

थाने से लौटने पर भैया का क्रोध बुझ चुका था, बोले—"साले,

बनता तो ऐसा है ? पर बिस्तर न मिला तो सिर तोड़ दूंगा।"—मैंने आश्वासन दिया—"मिलेगा। न मिला तो उस पर क्रान्तिकारियों की मोहर नहीं लगी है। सन्देह का कारण न होने पर भी क्यों घबराया जाये ?" दिल्ली लौटने पर तीसरे दिन स्टेशन पर बिस्तर मौजूद था।

गैस के अभाव में अदालत पर आक्रमण नहीं हो सकता था। हमने अपने साधनों के विचार से केवल भगतसिंह और दत्त को ही छुड़ाना तय किया। जेल पर आक्रमण या जेल के फाटक पर आक्रमण उस समय करना था जब भगतसिंह दत्त जेल की अदालत से लौट रहे हों। इसके लिए भी जितने साथियों को ले जाने के लिए पहले से टिका रखने की और फिर भगत और दत्त को, यदि उन्हें सफलतापूर्वक छीन कर लाया जा सके तो, छिपा लेने के लिए इन्द्रपाल का छोटा सा मकान और किला गुज्जरसिंह के मकान काफ़ी न थे। इस काम के लिए एक बँगला ले लेने का निश्चय किया गया। बंगले का बाह्य रङ्ग-ढङ्ग ऐसा बना लेना आवश्यक था कि किसी प्रकार के सन्देह के लिए गुन्जाइश न हो। बँगले को सन्देह से परे रखने और बहुत सम्मानित गृहस्थ का रूप दे सकने के लिए इस में 'मेमसाहब लोग' का दिखाई देना भी आवश्यक था। वे मेमसाहब लोग कौन हों, इस विषय पर भी विचार हुआ।

इस समय दुर्गा भाबी की परिस्थिति भी बहुत उलझन की थी। एक ओर तो खुफिया पुलिस छाया की तरह उनका पीछा किये रहती थीं। हम लोगों से मिलना-जुलना तक कठिन हो रहा था। दूसरी ओर लाहौर में जयचन्द्र जी के दुष्प्रचार के कारण भी वे संकट में थीं। दुर्गा भाबी को खुफ़िया पुलिस के आदमी की स्त्री समझने वाले लोग और उस प्रचार से प्रभावित पड़ोसी भी इन के इधर-उधर जाने पर नज़र रखना चाहते थे। कुछ लोगों ने खुफिया पुलिस के आदमी की बीबी को परेशान करना और चिढ़ाना भी देशभक्ति का कर्त्तव्य समझ लिया। भाबी हम लोगों से मिलने या हमारे सन्देश आवश्यक स्थानों पर पहुंचाने के लिये प्रायः घर से गायब रहतीं। समय असमय, बल्कि अधिकांश में रात के समय पड़ोसियों के लिये अपरिचित लोग भी उन के यहां आते रहते। यह बात भाबी को खुफ़िया पुलिस वाले की बीबी विश्वास करने वाले लोगों की दृष्टि में उनके उच्छृंखल और अवारागर्द होने के लक्षण थे। इन लक्षणों का जबरदस्त प्रमाण यह था कि पति के घर से लापता होने पर भी वे कभी दुखी और रोती कलपती नहीं

दिखाई दीं। ऐसी धारणाओं के कारण लोग उनकी सहायता करने के बजाय उन्हें परेशान करने में ही संतोष पाते थे। ऐसे व्यवहार की शिकायत भी किससे की जाती ? पास पड़ोस के लोगों की दृष्टि में वे देशभक्तों की शत्रु और पुलिस की दृष्टि में सरकार की शत्रु थीं।

इस विचित्र परिस्थिति के कारण भाबी को बहुत परेशानी थी। जो लोग भगवती भाई को खुफिया पुलिस का आदमी नहीं समझते थे उन्हें भी आने जाने के स्थान प्रयोजन या मिलने वालों के नाम और दूसरे रहस्य नहीं बताये जा सकते थे। इसलिये ऐसे लोग भी उन्हें उच्छृंखल समझ बैठते थे। उन्हें भाबी पर दूसरे ढंग से क्रोध आता। अर्थात्, "भगवती बेचारा तो देश के लिये घरबार छोड़ मारा-मारा फिर रहा है। इसे उसका ज़रा ग़म नहीं। मजे में नये-नये मित्रों के साथ रंग रेलियां मना रही है।" इन्द्रपाल १६२६ के सितम्बर मास में जब पहले पहल दिल्ली आया था, भाबी से बहुत कम परिचित था। लाहौर में उस ने उन के सम्बन्ध में इतनी अफ़वाहें सुनी थीं कि उसका माथा गरम हो रहा था। उसने भगवती भाई के सामने स्पष्टवादिता से काम लिया—"एक क्रान्तिकारी की स्त्री को ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये कि सभी लोग निन्दा करने लगें ?"

भगवती भाई ने उस की भावना समझ समझाने का यत्न किया—"तुमने सुना ही है या कुछ देखा भी है ? जब सुन कर ही विश्वास करना है तो मैं दूसरे लोगों की बातों की अपेक्षा अपनी स्त्री की ही बात पर ही विश्वास क्यों न करूं ?"......उसे असाधारण ढंग से रहना पड़ता है और लोग उसे साधारण कसौटी पर जाँचते हैं—

दुर्गा भाबी ने उस समय भी अपनी कठिन परिस्थिति के बारे में भगवती भाई को सन्देश भेज कर फ़रार हो जाने की अनुमति मांगी थी ! भगवती भाई ने उन्हें मिलने के लिये दिल्ली बुलवाया था। अजमेरी दरवाजे पर महाशय कृष्णजी के मकान पर मेरे सामने ही बातचीत हुई थी। उन का लड़का शची भी, जो अब इंजीनियर साहब हैं, तब साढ़े चार बरस का रहा होगा, मां के साथ आया था। उसने पिता को छः मास से अधिक दिन बाद देखा था। शची पहले तो उन्हें देख अपनी मोटी-मोटी, नीली सी आंखे फैला कर हैरान रह गया। फूले-फूले गालों में होंठ विस्मय से खुल गये—"पापा !" लेकिन शायद उस

अवस्था में भी वह समझने लगा था कि यह बात कहने की नहीं वह झपट कर चुपचाप पापा के गले से लिपट गया। पापा से विदा होते समय भी उसने रोने-धोने का कोई उत्पात नहीं किया।

उस समय भगवती भाई ने भाबी को समझाया था—"घर छोड़ कर फरार होने की जल्दी मत करो ! हम दोनों के फरार हो जाने से सरकार घर, जयदाद और बैंक के हिसाब पर कब्ज़ा कर लेगी। अवसर आने पर तुम्हें बुला लेंगे। यह लड़ाई काफी लम्बी है।"—अब भाबी को मालूम हुआ कि दल के काम, विशेष कर भगतसिंह को जेल से छुड़ा कर छिपाने के लिये स्त्री पात्र की आवश्यकता है तो उन्हों ने अवसर दिया जाने का तकाज़ा किया। इस बार भगवती भाई इनकार न कर सके। तय हो गया कि मैं जल्दी बंगले का प्रबन्ध कर लूं तो भाबी और प्रकाशवती उस गृहस्थ की गृहस्थिन बन कर उसमें टिक जायें।

सब काम बहुत जल्दी में किया जा रहा था। मई की दोपहर के सुनसान में घूम-फिर कर मैंने जेल के समीप ही, बहावलपुर रोड की एकान्त और असन्दिग्ध जगह में एक बड़े बंगले का आधा भाग किराये पर ले लिया। यहां पड़ोस में एक अवसर प्राप्त जज मि० खोसला रहते थे और बंगले के दूसरे भाग में एक मद्रासी इंजीनियर।

बँगला किराये पर ले लिया था परन्तु फर्नीचर या चारपाई आदि कुछ न था। बँगले में पहुंचने से पहिले दुर्गा भाभी इन्द्रपाल के मकान पर आ गई थीं। शची साथ न था। दुर्गा भाबी संकट का सामना करने आई थीं और शची को सम्भवतः धन्वन्तरी के बड़े भाई विद्यारत्न जी को सौंप आई थी। विद्यारत्न जी उस समय भी एक अच्छी नौकरी पर थे। दुर्गा भाबी के साथ अपने कपड़ों का एक-सूटकेस ही था। मैं इन्हें टांगे पर बैठा, स्वयं साइकिल पर सवार हो बंगले में पहुँचाने गया। बंगले की मेहतरानी और मालिन नये किरायेदारों के आने की प्रतीक्षा बहुत कौतूहल और उत्सुकता से कर रही थीं। नवआगंतुक मेमसाहबों को आते देख मेहतरानी ने मालिन को पुकारा—"आ गये, नये मेमसाहब लोग आ गये !" मालिन भी उत्सुकता से अपनी कोठरी से बाहर निकली परन्तु निराशा के स्वर में बोल उठी—"अरे, टांगे पर आई हैं !"

मालिन की बात मेरे कान में पड़ी। मस्तिष्क में खटका एक दम हुआ। हमें अपने उपयोग के लिये मोटर और फर्नीचर की आवश्यकता

न सही परन्तु संदेह से परे, सम्मानित साहब लोग होने का आडम्बर निबाहने के लिये मोटर और फर्नीचर आवश्यक हैं ।

जेल पर आक्रमण करने और भगतसिंह और दत्त को छुड़ा कर लाने के लिये एक मोटर की व्यवस्था तो की ही गई थी । धन्वन्तरी को संदेश भेजा कि उस मोटर को यथासंभव अधिक से अधिक समय इस बंगले में खड़ा रहने दिया जाये । स्वयं मालरोड पर लाहौर के सब से बड़े फर्नीचर के व्यापारी 'हयात ब्रदर्स' के यहां पहुँचा और एक बड़ा सोफासेट, तीन चार कुर्सियां, चाय पीने और खाना खाने की मेजें, दो लोहे के और दो निवारी पलंग किराये पर ले दस्तखत कर दिये । हुक्म दे दिया कि सामान हमारे बंगले पर पहुँचा दिया जाये । किराया तो महीना समाप्त होने पर दिया जाना था जो बेचारे को आज तक भी न पहुँच सका । एक बढ़िया नई सी लारी में यह सब सामान बंगले पर पहुँचा । उसी संध्या दरवाजों पर चिकें भी लग गईं । एक भिश्ती सुबह-शाम छिड़काव भी कर जाने लगा । बंगले के स्थायी नौकरों और पड़ोसियों को हमारे सम्मानित होने का विश्वास हो गया ।

भगवती भाई दिल्ली गये कि प्रकाशवती को ले आवें और आजाद तथा दूसरे दो और साथियों के आवश्यक शस्त्रों सहित लाहौर पहुँचने की व्यवस्था कर आवें । लौट कर भगवती भाई ने असंतोष काट किया—"यह तुमने क्या अक्लमंदी की है ! इस लड़की को (उनका अभिप्राय प्रकाशवती से था) सम्भालने का बोझ दल के सिर सहेड़ लिया । उस की न कुछ अभी उम्र है, न अध्ययन और न व्यवहारिक अनुभव ! एक अजीब फूहड़पना है । उससे घूंघट निकाल कर चलते भी नहीं बनता । वह बंगले की व्यवस्था के लिए बिल्कुल उपयोगी नहीं हो सकती बल्कि बेतुकी लगेगी । मैं उसे साथ लिवा तो लाया हूं लेकिन सुरक्षा के लिये फिर दिल्ली लौटा देना ही ठीक होगा ।"

घर से ताजा-ताजा आने पर प्रकाशवती जी के आधुनिक व्यवहारिक ज्ञान का उदाहरण यह था कि उन्हों ने कभी चाय की पत्ती न देखी थी, न चाय बनाना जानती थीं और न उसका स्वाद । उनके घर में केवल दूध का ही रिवाज था । उन के घर से आने के ही दिन पिता को पत्र लिखने के लिये मैंने अपना 'वाटरमैन' फाउन्टेनपेन दे दिया था । यह कलम पुराने ढंग का था । कलम की टोपी खोल कर पेंदी में लगा पेच की तरह घुमाने से निब बाहर निकल आता था और बन्द

करते समय नीचे से टोपी उल्टी घुमाकर खोलने से निब भीतर चला जाता था। पत्र लिखने के बाद पत्र को पढ़ते-पढ़ते उन्होंने क़लम के नीचे से टोपी खोलली। मुंह पर टोपी लगाने के लिये नजर ऊपर की तो निब ग़ायब! उन्होंने समझा, निब कहीं गिर गया है। वे निब को फर्श पर ढूंढ़ने लगीं तो कलम की स्याही धोती पर फैल गई। उन्हें परेशान देखकर पूछा—"क्या हुआ?" कुछ नहीं, कह कर उन्होंने टाल दिया और निब को ढूंढ़ती रहीं। जब निब नीचे फ़र्श पर कहीं न मिला तो उन्होंने कलम के भीतर झांका। क़लम में धंसा हुआ निब चमक रहा था। उन्होंने एक सींक ले निब को ऊपर उठाने की चेष्टा आरंभ की। आख़िर मैंने क़लम उनके हाथ से ले, नीचे का सिरा घुमाकर निब को ऊपर निकाल कर दिखाया, यह है तरीक़ा! मारे लज्जा के उनका चेहरा सुर्ख़ हो गया।

प्रकाशवती के सम्बन्ध में भगवती भाई की वह धारणा उस समय मुझे अनुचित न लगी। वे जैसे रूढ़िग्रस्त परिवार और समाज के अंग से आई थीं, वहां उस युग में आधुनिक व्यवहार के ज्ञान की आशा की ही नहीं जा सकती थी। यह दूसरी बात है कि उन्होंने शीघ्र ही असाधारण ग्राह्यता का परिचय दिया। केवल दो मास बाद ही वे दिल्ली की नई बम फैक्टरी में न केवल बम का मसाला बनाने के काम में सहयोग देने लगीं, फैक्टरी का भीतरी प्रबन्ध भी उन्हीं के हाथ में था और साथी उन्हें मज़ाक में 'कामरेड सुपरिन्टेन्डेन्ट' पुकारते थे।

उसी संध्या या अगले दिन भगवती भाई ने किला गुज्जरसिंह के मकान से आकर बात की—"भइ, दुर्गा के साथ बंगले में दीदी भी रहेंगी। वो नहीं मानतीं। चलो जी, एक के बजाय दो होने से बंगला अधिक भरा पूरा भी लगेगा। बाद में साथियों को इधर-उधर करते समय वे उनके लिए परदे का काम भी दे सकेंगी।"—दीदी का तकाज़ा था कि घटना के बाद भगतसिंह को बचा कर ले जाने का काम भाभी एक बार पहले कर चुकी हैं। उन्हें भी तो कुछ करने का अवसर मिलना चाहिए! भगवती भाई ने दीदी के बंगले में आकर सहयोग दने के बारे में जो उपयोगिता बताई, वह तो ठीक थी परन्तु दीदी की लगन और सादगी का जो वर्णन उन्हों ने किया, वह मुझे अवश्य कुछ अद्भुत लगा। दीदी लाहौर में कुछ दिन रह चुकी थीं। इसलिये रास्ते में पहिचाने जाने की आशंका से उन्होंने घूंघट निकाल लिया था। अभ्यास न होने के कारण

घूंघट निकाल कर चलने में जो असुविधा उन्हें हुई उसका वर्णन करते हुये भगवती भाई ने गद्गद् स्वर में कहा—"She is so simple, कितनी भोली है।....घूंघट निकाल कर उनसे चलते ही नहीं बनता।"

प्रकट में तो मैं भगवती भाई के विचार से सुशीला जी की सादगी और भोलेपन के अनुमोदन में मुस्कराया परन्तु दूसरा कारण था, एक ही व्यवहार को दो भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओं में देख कर परस्पर-विरोधी परिणामों पर पहुँचना ! प्रकाशवती से सुशीलाजी की उम्र प्रायः नौ-दस वर्ष अधिक रही होगी। उन की शिक्षा और जीवन का अनुभव भी कहीं अधिक व्यापक था। उनका घूंघट न सम्भाल सकना भगवती भाई को विश्वास और आदर उत्पन्न करने वाली सादगी और भोलापन जान पड़ा और अनुभवहीन प्रकाशवती का घूँघट ठीक से न निकाल सकना, केवल फूहड़पन। अस्तु, सुशीलाजी भी बंगले में आगईं।

उस दिन या अगले दिन मैं फिर दिल्ली गया। इस बार प्रयोजन था भगवती भाई के निर्णय के अनुसार प्रकाशवती को दिल्ली लौटा कर शस्त्रों और साथियों सहित भैया के लाहौर पहुँचने का समय और ढङ्ग निश्चित कर आने का। इस बार प्रकाशवती को दिल्ली में महाशय कृष्णजी के मकान पर पहुंचा कर लौटने से पहिले मैंने यह बता देना आवश्यक समझा कि—"तुम मुझसे आखिरी बार मिल रही हो। हम लोग जेल पर आक्रमण करने जा रहे हैं। मेरा विश्वास है, हममें से कोई भी बचकर न लौटेगा। शायद भगवती भाई को पीछे छोड़ दिया जाय। उस अवस्था में वे जैसा कहें, करना। शायद वे भी न बचें। हम लोगों के मारे जाने का समाचार तुम्हें २ या ३ जून को अखबारों से मिल जायगा। उस हालत में तुम ख्यालीराम गुप्ता से दिल्ली दल के नेता कैलाशपति का पता पा लेना।"—प्रकाशवती मेरी बात सुन कर सुन्न रह गईं। कुछ बोल न सकीं। मैंने पूछा—"घबरा गई हो ?" वह बोल तो न सकीं परन्तु सिर हिलाकर इनकार किया।

मैंने समझाना चाहा—"इस मार्ग में तो यही होता है। सम्भव है, महीने, दो महीने में तुम्हारे मर जाने का भी दिन आ जाय। पकड़ी मत जाना।"—मैंने एक बहुत छोटा पिस्तौल उन्हें आशंका का सामना करने के लिये दे दिया। यह बात दोपहर के समय हुई थी। सोचा, हम लोगों की उदासी या चुप्पी देख कृष्णजी या उन की पत्नी को कुछ संदेह न हो इसलिए हम दोनों किसी बहाने से बाहर चले गये। मैं निश्चित मृत्यु

के लिए तैयार था परन्तु नये 'प्रेम' को छोड़ कर लौटना अच्छा न लग रहा था। उसी भावना में मैंने बिदा होते समय पूछ लिया—"क्या तुम मेरी याद रक्खोगी ?" उन्हों ने गर्दन झुका हामी भर उत्तर दिया— "मैं जल्दी ही आ मिलूंगी।" कुछ कह न सका। उत्तर से मुझे सन्तोष तो हुआ परन्तु कुछ दूर जाकर पश्चाताप होने लगा कि स्वयं मरने जाने से पहले दूसरे के लिए दुख का कारण बन जाने से क्या लाभ? इससे मैं क्या पाऊंगा? मेरी यह भावना बहुत कुछ वैसी ही थी जैसे किसी युग में लोग मरते समय इस आश्वासन से संतोष पाते थे कि उन की मृत्यु के बाद उनकी स्त्री भी उन की चिता पर सती हो जायगी; या मिश्र के राजाओं की कब्र में उन की एक-दो जीवित पत्नियों को भी दफ़ना दिया जाना उन के गौरव का चिन्ह माना जाता था। यह पत्नी को सम्पति के रूप में प्यार करने की भावना का यात्मक रूप है।

बंगले में दुर्गा भाबी, सुशीला जी, बच्चन, मैं और आक्रमण में भाग लेने के लिये भैया द्वारा भेजे हुए एक साथी मास्टर छैलबिहारी थे। भगवती भाई और सुखदेवगाज किला गुज्जरसिंह के मकान में थे। छैलबिहारी हमारे बैरे के रूप में काम कर रहा था, अर्थात् बंगले के बावर्ची खाने से खाना उठा कर ले आना या बरामदे में घूम कर जब-तब मेज़ कुर्सियों को झाड़-पोंछ देना। यह तो तय हो चुका था कि जेल पर बम, राइफ़ल और पिस्तौलों से आक्रमण किया जायगा लेकिन अब भी दो महत्वपूर्ण बातें निश्चय न हो पाई थीं। मेरी योजना अनुसार आक्रमण भगतसिंह के बोर्स्टल जेल जाने के लिये सेन्ट्रल जेल के फाटक से निकलते समय किया जाना चाहिये था। सेन्ट्रल जेल का फ़ाटक मुख्य सड़क पर, सड़क से केवल आठ-दस गज़ एक ओर है। दूसरी योजना भगतसिंह की थी, इसके अनुसार उन के बोर्स्टल जेल से वापिस निकलते समय आक्रमण होना चाहिये था। बोर्स्टल-जेल का फाटक मुख्य सड़क से लगभग सौ क़दम पर है। दोनों में से कौनसी योजना काम में लाई जाय, यह बात भैया पर छोड़ दी गई थी। दूसरा प्रश्न था, भैया द्वारा साथ लाये हुए तीन आदमियों के अतिरिक्त लाहौर से कौन चार व्यक्ति आक्रमण में भाग लेंगे? मुख्य प्रश्न भगवती भाई के बारे में ही था। वे इस काम में भाग लेने के लिये जिद कर रहे थे। मेरा आग्रह था कि जब आज़ाद और मैं दोनों भाग ले रहे हैं तो उन्हें पीछे रहना चाहिए।

सुखदेवराज के बारे में भी प्रश्न था। भगवती भाई उसे खूब साहसी और चतुर समझ कर आक्रमण मे रखना चाहते थे। मुझे इस विषय में शंका थी। मेरा आग्रह था कि इस काम में केवल उन्ही लोगों को भेजा जाय जो किसी भी हालत मे पीठ न दिखायें। मैंने उन्हें सुखदेव के नील को मारने न जाकर यों ही लौट झूठ बोल देने की बात बताई। इन्द्रपाल का अनुभव भी बताया कि यदि चालाकी से भय से बच सकने की आशा होगी तो सुखदेवराज खूब साहस दिखायेगा और जब भय से बचने का रास्ता न होगा तो पीठ दिखा जायगा। उसका साहस चोर का है, सैनिक का नहीं। यह शिकायत भी की कि वह दल के दूसरे लोगों से ऐसी बातें करता है जिनका परिणाम दल में फूट और खास कर मेरे प्रति अविश्वास पैदा करना होगा।

भगवती भाई को मेरी बात से बहुत दुख हुआ। कुछ सोच कर बोले—"आपस में ऐसा संदेह अनुचित है।" और झिझकते हुये बताया—"तुम्हें मालूम है, तुम्हारे बारे में उसका क्या खयाल है?" उन्हों ने सुखदेवराज की शिकायत बताई कि उस समय नील को मार सकने का बहुत अच्छा मौका था लेकिन उसके सुझाव देने पर मै उसकी सहायता के लिये नहीं गया बल्कि प्रकाशवती के साथ पीछे बैठा रहा। प्रकाश को मैंने केवल अपने शौक के लिये ही उसका घर छुडवा दिया है। उस ने यह भी शिकायत की कि प्रकाशवती को किला गुज्जरसिंह के मकान मे रहने के लिये भेज दिया गया था और मैं बिना किसी से पूछे उसे दिल्ली ले गया।

मुझे क्रोध आ गया मैंने कहा—"उसकी यह शिकायतें चुपचाप सुनकर तुमने उसे अनुशासन की अवहेलना के लिए उत्साहित किया है। यहां इन्चार्ज मैं हूँ। उसे यदि मेरे व्यवहार के लिए शिकायत थी तो पहले मुझे कहना चाहिए था। क्या तुम ने उससे पूछा है कि मेरा इन बातों के लिए क्या उत्तर है?" यह बात लगभग २७ मई को हुई थी। भगवती बोले—"इस नाजुक समय में मुकद्दमेबाज़ी का अवसर नहीं है। मैंने उसे कुछ उत्तर नही दिया है केवल सुन भर लिया है। एक सप्ताह की ही तो बात है। इसके बाद सब कुछ देख लिया जायेगा।"

मैंने उन्हें सुखदेव के नील को न मारने जाकर यों ही लौट आने और आकर झूठ बोलने का प्रमाण देना चाहा—"प्रकाशवती को मैंने यह तो नही बताया कि सुखदेव कहाँ गया था परन्तु उसके जाते ही मै

उसे यह कह कर गया था, मेरे आने में बहुत देर हो जाये तो भी घबराना नहीं। इन्द्रपाल लौट आये तो उसे संध्या तक कहीं न जाने के लिए कह देना। मैं यहाँ हूँ। तुम अभी दिल्ली किसी को भेज कर सच्ची बात जान सकते हो! सुखदेवराज, इन्द्रपाल और दूसरे लोगों से मेरे विषय में क्या कहता फिरता है, इसकी चिन्ता मैंने केवल इसलिए नहीं की कि मुझे तुम पर और भैया पर भरोसा था। प्रकाशवती के घर से आने के विषय में तुम भाबी और प्रेम से पूछ सकते हो कि उसके घर छोड़ने से पहले मैंने उस से केवल एक दिन आध घण्टे बात की थी और वह भी प्रेम के सामने। उसके आने के दिन जो बात हुई थी मैंने तुम्हें तभी बता दी थी और जो कुछ किया तुम्हारी राय से! उस के आ जाने के बाद दूसरी बात है। भाबी से कह चुका हूं कि मैं उससे विवाह कर लूंगा बल्कि भाबी ने स्वयं ही सुझाया था। मैंने पंजाब के इंचार्ज की हैसियत से उसे दिल्ली पहुंचा दिया था। इसका खास कारण था प्रकाश की शिकायत सुखदेव के व्यवहार के लिये।"

"खैर, यह तो हुआ लेकिन हम लोगों के जीवन की अस्थिरता और जिम्मेवारी में इन बातों के लिये जगह कहां है? तुम प्रेम की बात सोचोगे या दल के काम की?"—भगवती भाई ने अंग्रेजी में प्रश्न किया।

"सोचने की बात ही क्या है? यह तो बिना सोचे, दमन करने पर भी हो गया। बाकी रही निर्बलता आने की बात? उस के लिये तुम्हें इन्द्रपाल का लखनऊ में दिया उत्तर याद होगा। उससे साफ बात मैं और क्या कह सकता हूं; जब १८ या २० रुपया माहवार के लिये सेना में भरती होने वाली सिपाही घर में स्त्री, बाल-बच्चे होते हुए भी तोपों के सामने सीना देने का कर्तव्य पूरा करते नहीं झिझकते तो क्या सब कमजोरी हमी लोगों के लिये है? हम में तो कर्तव्य की भावना उन से बहुत अधिक होनी चाहिये……"

भगवती भाई ने मेरा हाथ पकड़ मुस्करा कर कहा—"लेकिन यह बात तुमने मुझसे क्यों नहीं कही?"

मैंने जिद भी की कि यह बातें अभी भैया के सामने साफ होनी चाहियें। मैं तो आक्रमण में मर जाऊंगा और यह कलंक मेरे सिर रह जायगा!

बहुत गम्भीर होकर वे बोले—"मेरा विश्वास करो, सुखदेव ऐसा आदमी नहीं है। आज़ाद से इस बारे में कुछ मत कहना, खबरदार! राज कुछ न कर सकने से खिन्न है, ऊपपटांग हरकतें उससे हो रही हैं। दिल का बुरा नही है। एक घटना में भाग लेकर वह स्थिर हो जायगा।"

भैया, भगवती भाई और मुझे बैठाकर बहुत देर तक विचार करते रहे कि जेल पर आक्रमण भगतसिंह की योजना से या मेरी योजना से किया जाये? मेरी योजना सेन्ट्रल जेल के फ़ाटक पर उस समय आक्रमण करने की थी जब भगतसिंह दत्त को कचहरी में या रविवार के दिन बोर्स्टल जेल में बन्द साथियों से मुकद्मे के सम्बन्ध में कानूनी सलाह के लिये लेजाया जा रहा हो। भगतसिंह की योजना थी कि आक्रमण उनके बोर्स्टल जेल से निकलते समय, जब वे फाटक से निकाल कर लारी में बैठाये जाने वाले हों किया जाये। भैया ने मेरी योजना की भूल सुझाई, सेन्ट्रल जेल के फाटक पर जेल की गारद अधिक है और शेरदिल पुलिस की एक छोलदारी भी है। बोर्स्टल जेल के दरवाजे पर केवल छः सशस्त्र सिपाही रहते हैं।

मुझे बोर्स्टल जेल के विषय में यह आपत्ति थी कि जेल का फाटक सड़क से लगभग सौ गज़ दूर है। हमारी मोटर जेल के फाटक की ओर घूमते ही पहरे के सिपाही सतर्क हो जायंगे। भगतसिंह, दत्त को जिस समय लारी में लेजाया या लाया जायगा पुलिस के छः सशस्त्र सिपाही इसके साथ होंगे। भगत और दत्त को घेरे हुए सिपाहियों पर हमें दूर से गोली चलानी पड़ेगी! गोली भगत और दत्त को भी लग सकती है। बोर्स्टल जेल पर पिस्तौल या बम की आहट होते ही सेन्ट्रल जेल के फाटक पर तैनात शेरदिल पुलिस की गारद इस ओर दौड़ पड़ेगी! सेन्ट्रल जेल के फाटक पर आक्रमण करते समय, भगत और दत्त के जेल फाटक से निकलते ही एक बम जेल गारद पर और दूसरा बम शेरदिलों की छोलदारी पर फेंक दिया जाये। भगतसिंह, दत्त हमारी कार की ओर दौड़ आयें। बमों के एक साथ चलने से भगदड़ मच जायगी। यदि कोई सिपाही भगत, दत्त का पीछा करेगा तो हमारे पांच आदमी उन्हें पिस्तौलों से रोक सकेंगे। शायद हमें सफलता हो जाये! सेन्ट्रल जेल बिल्कुल सड़क पर है, वहां से दिन भर में सैकड़ों मोटरें और सवारियां गुज़रती हैं। हमें फाटक की ओर घूमना न पड़ेगा। हमारे समीप आने मे जेल वाले सतर्क न होंगे।

भगवती भाई का विचार था कि मैं सेन्ट्रल और बोर्स्टल जेलों की स्थिति को दूर से देखकर योजना बना रहा हूं। भगतसिंह उस अवस्था में से प्रतिदिन गुजरता है। इसलिये उसका विचार अधिक भरोसे के योग्य है। भगतसिंह की योजनानुसार ही चलना तय हुआ। फिर भगवती भाई के घटना में भाग लेने का प्रश्न आया। उन्होंने द्रवित स्वर में कहा—"मैं कोई तर्क नहीं कर सकता लेकिन चाहता हूं कि इस घटना में अवश्य भाग लूँ। यदि मैं मारा भी गया तो पंजाब में धन्वन्तरी, सुखदेवराज आदि कई योग्य साथी यहां का काम सम्भालने के लिये हैं। सोहन (यशपाल) घटना के बाद भैया के साथ रह सकता है। वह चन्द्र के आदमियों से भी परिचित है। मैं चाहता हूं सोहन इस बार घटना में न जाये।"

उस समय मैंने अनुरोध किया कि फैसला अगले दिन प्रातः तक स्थगित रखा जाय। जेल पर आक्रमण की तारीख १ जून रविवार निश्चित थी। एकान्त में मैंने भगवती भाई को समझाना चाहा—"इस अवसर पर मेरे आक्रमण में साथ न जाने का प्रभाव अच्छा नहीं होगा। तुमने कमला (प्रकाश) के सम्बन्ध में जैसी बातें सुनी है वे सुखदेव ने दूसरों से भी कही हैं। यही समझा जायगा कि मैं जान बचा कर पीछे रह गया हूं। दूसरा मतलब यह भी निकल सकता है कि मेरी योजना न मानी जाने के कारण मैंने सहयोग नहीं दिया।"

"What nonsense! (क्या बकवास है) उन्होंने कहा—और मेरे कन्धे पर हाथ रख कर उत्तर दिया—"इस प्रकार की बातों का उत्तर नहीं दिया जाता? मेरे लिये क्या नहीं कहा गया? मैं हर बार तुम्हारी बात मानता रहा हूं, इस बार मेरी बात मान जाओ!" कुछ कहते न बन पड़ा।

भगवती भाई की शहादत

२८ मई सुबह ही भगवती भाई ने मुझे कहा—"बमों को भर कर तैयार कर दो ताकि एक को आजमा लिया जाये।" रोहतक में तैयार किये मसाले में से अभी कुछ मसाला शेष था। भैया ने कानपुर में खोल ढलवा लिये थे और इस अवसर के लिये तीन खोल लेते आये थे। मैंने खोलों को जांच कर कहा—"इनमें से एक का ट्रिगर (घोड़ा) ढीला है। पेचकस लाकर ठीक करना होगा।"

बम के खोल में मसाला भरने से पहले उसे भीतर से साफ़ करके कोई गहरा रोगन लगा दिया जाता था ताकि पिक्रिक एसिड और लोहे का परस्पर स्पर्श होने से रासायनिक क्रिया न आरम्भ हो जाये! ऐसी रासायनिक क्रिया से उत्पन्न गरमी का परिणाम काफी देर बाद, चार पांच या दस दिन बाद भी, जब गरमी शनैः शनैः काफी बढ़ जाये, प्रकट हो सकता है। मैंने 'जापानब्लैक' रोगन खोलों के छेद से भर कर खोलों को सूख जाने के लिये रख दिया। मेरे विचार में खोलों को आठ-दस घण्टे में सूखना चाहिये था। तब तक पेचकस भी आ जाता। आठ-नौ बजे मैं साइकिल पर बहावलपुर रोड के बंगले से बाहर चला गया। अब सब काम दो-तीन दिन में ही पूरा करना और जांच लेना आवश्यक था। साथियों को छिपाने की जगहें, मोटर का ट्रायल, लेखराम और धन्वन्तरी द्वारा लाये गये दोनों ड्राइवरों में से कौन ठीक रहेगा आदि-आदि!

मैं दोपहर बाद तीन बजे, मई की तीखी धूप में जगह-जगह घूम फिर कर लौटा था। अपने लिये रखी ठंडी खिचड़ी खा रहा था। उस समय बंगले में भाबी, सुशीला जी, छैलबिहारी और मदनगोपाल ही थे। भैया धन्वन्तरी के साथ मोटर को स्वयं देख लेने के लिये गये थे। भगवती भाई, बच्चन और सुखदेव एक बम लेकर उसका परीक्षण करने रावी के किनारे चले गये थे।

"बम भरा किसने?....वह सूख भी गया था?"—मैंने विस्मय से पूछा। पता लगा कि बम को धूप में रखकर सुखा लिया गया था। भगवती भाई और सुखदेवराज ने मिलकर बम भर लिया था और ट्रिगर भी ठीक कर लिया था। बात हो ही रही थी, एक टाँगा बंगले में आया। उसमें सुखदेवराज दिखाई दिया। "मुझे टांगे से उतार लो"—उसने पीड़ा विकृत स्वर मे पुकारा। छैलबिहारी, मदनगोपाल और मैंने उसे सवारी से उतार लिया। उसके पाँव में लिपटे कपड़े में से जगह-जगह खून फूट रहा था। हम लोगों ने आशंका से चोट का कारण पूछा। पीड़ा से होंठ दबाते हुए उसने बताया—"बम को आजमाइश के लिए फेंकते समय बम हरी (भगवती) के हाथ में फट गया। वे बहुत जख्मी होकर गिर पड़े हैं। मेरे पाँव में सख्त चोट आई है। बच्चन पीछे था। उसे चोट नहीं आई। वह उनके पास है।"

मैंने मास्टर छैलबिहारी को साथ लिया और तुरन्त मालरोड पर

चार्गिंगक्राम की ओर दौड़ चले। हम लोग सड़क पर सचमुच दौड़ लगा रहे थे। वहाँ से एक टैक्सी किराये पर ले रावी किनारे के जंगल के जितना समीप पहुँच सकते थे गये और फिर रेतीले मैदान को पार कर घने जंगल में धंसे। भटक-भटक कर बच्चन को पुकारा। उसके उत्तर की पुकार के सहारे ढूंढ़ लिया। देखा—

भगवती भाई घुटने उठाये चित्त पड़े थे। उनकी दोनों बाहें कोहनियों से उठी हुई थीं। एक हाथ कलाई से उड़ गया था दूसरे की उंगलियाँ जड़ से कट गई थीं। चेहरे पर कई जगह गहरे घावों से खून बह रहा था। पेट में दाईं ओर बड़े-बड़े छेद होकर खून बह रहा था और बाईं ओर से पेट फट कर कुछ आंतें बाहर आ गई थीं। बच्चन एक कपड़ा भिगो लाया था और उनके मुँह में पानी की बूँदें निचोड़ रहा था।

हमें देख पहले वे ही बोले—"तुम आ गये, अच्छा हुआ। आज़ाद भी आ जाते तो देख लेता।"

"भैया इस समय घर पर न थे वर्ना जरूर आते।"

"कोई बात नहीं"—उन्होंने हमें परवाह न करने के लिये कहा।

हम सभी लोग स्काउटिंग की शिक्षा पाये हुए थे। आमने सामने से अपनी बाहों को जोड़ उन्हें उठाकर जंगल से बाहर गाड़ी तक ले जाने का यत्न किया। शरीर हिलते ही उनके मुख से चीख निकल गयी। उन्हें फिर लिटा दिया। सोचा एक खाट या स्ट्रेचर के बिना उनका शरीर नहीं उठाया जा सकेगा।

रुंधे हुए गले को वश में कर मैंने आश्वासन दिया—"हम अभी जा कर खाट लाते हैं। घबराना नहीं।"

"तुम समझते हो मैं डर रहा हूं? यही दुख है कि मैं भगतसिंह को छुड़ाने में सहयोग न दे सकूंगा। यह मृत्यु दो दिन बाद होती!" उन्हें उठाकर ले जाने के लिये आवश्यक सामान लेकर मेरे लौटने की बात के उत्तर में उन्हों ने कहा—"व्यर्थ है। ऐसा न करो। बम का धड़ाका बहुत जोर का हुआ था। यदि उस की आहट के सन्देह में पुलिस खोज करती आ जाय तो क्या फायदा? यदि हाथ रह जाते तो तुम एक रिवाल्वर दे जाते और पुलिस को मेरे यहां जख्मी होने की खबर दे दी जाती! भगतसिंह को छुड़ाने का यत्न नहीं रुकना चाहिये।" वे रुक-रुक कर अंग्रेजी में बात कर रहे थे। दिमाग़ इतना साफ था

कि उन्हों ने अपने बच सकने की निराशा के सम्बन्ध में यह अनुमान बताया कि पेशाब की हाजत होने पर भी पेशाब नहीं आ रहा। बम का कोई टुकडा गुर्दे में चला गया है। मृत्यु का यों साक्षात्कार करके भी भय को अस्वीकार करने वाले ऐसे क्रान्तिकारियों को ही गांधी जी ने वाइसराय इरविन के प्रति सहानुभूति के अपने प्रस्ताव में 'कायर' और 'जघन्य' काम करने वाले बताया था।

छैलबिहारी को उनके पास छोड़ मैं बच्चन को लेकर लौटा। आवश्यक चीजें समेटने के लिये हम क्रिश्चियन कालेज के बोर्डिंग में पहुँचे। देवराज सेठी और सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन (अब अज्ञेय के नाम से प्रसिद्ध) से उन्हीं दिनों परिचय हुआ था। दोनों ही हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ शरीर थे। भगवती भाई को सुविधा से उठा सकने के लिये वे सहायक हो सकते थे। यहां से ही दो चादरें और खाट भी ले ली। रास्ते मे बरफ़ ले ली कि घावो पर लगा सकेंगे और चुसाते रहेंगे। इन्द्रपाल को भी साथ ले लिया और तुरन्त फिर उसी स्थान की ओर लौटे।

अन्धेरा घना हो चुका था। हम लोग टार्चें जलाकर घने जंगल में उन्हें खोज रहे थे। छैलबिहारी का नाम ले पुकारना शुरू किया। कोई उत्तर न मिला। हमारी टार्चों के प्रकाश से और चिल्लाहट से पेड़ों पर बसेरा करते पंछी डर-डर कर उड़ रहे थे परन्तु हमारी पुकार का कोई उत्तर न था। टहनियों से लटकती सफ़ेद कपड़े की धज्जियां दिखाई दीं। इन धज्जियों की दिशा में बढ़ते गये। टार्चों के प्रकाश में भगवती भाई का निश्प्राण शरीर हम लोगों के सामने पड़ा था। छैलबिहारी उनकी मृत्यु के बाद, शायद भयभीत हो उन्हें अकेला छोड़ कर चला गया था। हृदय उमड़ कर मुंह मे आ गया। होंठ काट कर अपने आप को वश किया। बच्चन विह्वल हो फूट फूट कर रो रहा था। अब क्या हो सकता था? शव को उठाकर ले जाने से उसे फिर बंगले के बाहर निकालने की समस्या बन जाती। दूसरे सब साथी खतरे में पड़ जाते। साथ लायी हुई एक चादर से हमने उनका शरीर ढंक दिया।

रुंधे हुए गले से मैंने आदेश दिया—"We must honour our Brave Leader and give him last Salute (अपने बहादुर नेता के सम्मान में अंतिम सलामी दी जानी चाहिये।) मेरे 'सैल्यूट'! कहने पर सब लोग शव के चारों ओर एक मिनिट तक सलामी में माथे पर हाथ छुआये खड़े रहे। हम लोग लौट आये। लौटते

समय मेरे घुटने और पूरा शरीर जर्जर हो रहा था। कदम न उठता था। मैं एक बार सुबह से रात एक बजे तक चौंसठ मील चलता रहा था परन्तु वैसी थकावट तब भी अनुभव न हुई थी।

मैं और बच्चन बंगले पर लौटे। सब लोग बीच के बड़े कमरे में इकट्ठे हो प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे संकट के समय मनुष्य और जीव सिमिट जाते हैं। हम लोगों को खाली हाथ देख सब लोगों ने धड़कते हृदय से लम्बा सांस लिया। उनकी आशंका और जिज्ञासा से फैली हुई आखें पूछ रही थीं, क्या हुआ ?

कुछ कहने का सामर्थ्य शेष न था। दोनों हाथ हिलाकर संकेत किया—"सर्वनाश !" बच्चन फिर रो पड़ा। भाभी जैसे बैठी थीं वैसे ही आंखें मूँद रह गईं। सुशीला ने सिर झुका दोनों हाथों से थाम लिया। भैया निश्चल फर्श की ओर देखते रह गये। मदनगोपाल भी पत्थर की मूर्ति की तरह सुन्न खड़ा था। उसी समय छैलबिहारी पहुँचा। पैदल आने के कारण वह पीछे रह गया था। उस पर आंख पड़ते ही मुझे क्रोध आ गया। धीमे स्वर में परन्तु क्रोध से फटकारा—'तुम छोड़ कर कैसे आ गये ?" उसने विवशता प्रकट की—"मृत्यु हो जाने के बाद मैं आया हूँ।"

"तुम्हें वहाँ रहने के लिए कहा था। हम लोग पुकारें लगाते रहे !"

"रास्ता दिखाने के लिए मैंने टहनियों से धज्जियाँ लटका दी थीं।"

"छोड़ आने के लिए तुम्हें किसने कहा था ?"—क्रोध से थिरकते होंठो से भैया ने पूछा परन्तु क्रोध व्यर्थ समझ चुप रह गये।

बहुत देर तक कोई भी कुछ न बोल सका। भैया सब से पहिले बोले—"अब कुछ नहीं हो सकता। आप लोग उठिये।" कठिनाई से निकलते शब्दों में उन्होंने भाभी को सम्बोधन किया—'तुम हम सब की माँ-बहिन हो। तुमने सर्वस्व पार्टी के लिए न्यौछावर किया है। हम सब तुम्हारे ऋणी हैं। तुम्हारे प्रति अपने कर्तव्य को कभी नहीं भूलेंगे।"—भैया और बच्चन भाभी को दोनों ओर से थाम कर एक पलंग की ओर ले गए और लिटा दिया। उनमें स्वयं कोई संज्ञा नहीं जान पड़ती थी। न आखों में आँसू, न होठों पर शब्द। हृदय फाड़ देने वाली चोट को सह सकने के लिए चीख या आँसू से सहायता ले लेने का भी अवसर न था। उनके आत्मदमन पर ही बंगले में इकट्ठे सब फरारों

और दल के नेता की सुरक्षा निर्भर थी। जैसे लिटा दिया लेट गईं। उसके बाद भैया ने दीदी को भी धैर्य रखने के समझा कर दूसरे पलंग पर लिटा दिया। लगभग रात के ग्यारह बज चुके थे। मैं अपने दुख में सब का दुख भूले, एक सोफे पर निश्चेष्ट आंखें मूँदे पड़ा था।

भैया ने स्वयं बंगले की बिजली बुझाई और मुझे बाहर ले जाकर पूछा—"शरीर किस अवस्था में छोड़ आए ?"—मैंने बताया कि अंधेरा घना होने और आस पास की जगह ठीक से मालूम न होने के कारण केवल एक चादर से ढांक आए हैं। उन्होंने सुझाया—"जंगली जानवर, गीदड़, लोमड़ी या लकड़बग्घा शरीर को खराब न करे। मैं भी एक बार देख आऊं। सुबह अंधेरा रहते चलेंगे और कुछ प्रबन्ध कर आयेंगे।" वे मुझसे भगवती भाई के लगे घावों की बाबत पूछते रहे। मैं यथाशक्ति बताता रहा।

"अब क्या करना होगा ?"—उन्होंने पूछा। "ऐक्शन किया जा सकेगा ? दो आदमी कम हो गए हैं।

एक्शन जरूर हो। यह उनका अंतिम अनुरोध था। "अब तो करना ही होगा जरूर।"—मैंने उत्तर दिया।

सुबह अंधेरा रहते भैया ने पुकारा—"उठो चलना है।" मैंने साइकिलें निकालीं। भैया भाभी और सुशीला जी को कहने गये कि हम लोग शव का प्रबन्ध करने जा रहे हैं। सुशीला जी ने आग्रह किया कि वे भी अंतिम दर्शन के लिये साथ चलेंगी। भैया ने मुझसे पूछा—"ले चलें ?" मैंने इन्कार कर दिया। सुशीलाजी ने बहुत अनुनय किया। भैया ने मेरी ओर देखा—"क्या हर्ज है ?" मैंने समझाया—"अभी सड़कों पर बिजली जल रही है। जगह-जगह पुलिस के सिपाही मिलेंगे। इस अंन्धेरे में किसी स्त्री को साइकिल के पीछे बैठा कर ले जाने से ही संदेह होगा।" उन दिनों लहौर में भी किसी स्त्री का साइकिल से पीछे बैठा कर आना-जाना लोगों की निगाह खींचता था। भाबी हम लोगों से मिलने के लिये कभी धर्मपाल या धन्वन्तरी के साथ साइकिल पर बैठ कर रात में आती थीं। यह उनके उच्छृंखल समझे लिये जाने का कारण था।

भाभी अब भी वैसे ही निश्चल पड़ी थीं। मैं, भैया और बच्चन तीनों रावी किनारे जंगल में पहुँचे। पौ फटने को हो रही थी। कहीं

कहीं कोई कौवा बोलने लगा था। उस जंगल में लाहौर भर के कौवे बसेरा लेते थे। हमारी आहट से ही कौवों की नींद खुली होगी। भगवती भाई का शरीर श्वेत चादर से ढका पड़ा था। किसी जानवर ने उसे छेड़ा न था। चादर के कोनों और किनारों को हम पत्थरों से जैसे दबा गये थे, वे वैसे ही दबे थे। केवल खूब बड़े-बड़े चेंटे, शायद रक्त की गंध से आकर्षित होकर चादर के ऊपर काफी संख्या में घूम रहे थे।

हम लोगों ने आस-पास जगह की जांच पड़ताल की। साथ फावड़ा ले गए होते तो वहाँ कब्र या समाधि के लिए जगह खोद सकते थे। घूम फिर कर चारों ओर देखा। लगभग पचास-साठ गज पर रावी नदी की एक शाखा थी। जल काफी गहरा था। हम लोग निरुपाय थे। रात जो चादर शव पर ओढ़ा आये थे उसी में शरीर को उंकड़ू बैठा कर अच्छी तरह बांधा। इस समय तक शरीर बिल्कुल ऐंठ गया था। बच्चन साथ एक कैंची ले गया था। शव के माथे पर से कुछ बाल काट लिए जो हम लोगों ने स्मृतिचिह्न रूप रख लिए थे। तीनों साथी मिलकर शव को जल तक उठा ले गए। शरीर की गठरी में कुछ बड़े-बड़े पत्थर भी डाल दिए ताके ऊपर तैर न आये और जल में समाधि दे दी।

बंगले में बिल्कुल मातम था। कोई किसी से बोल न पाता न खाने पीने की किसी को सुध थी। भैया कभी-कभी १ जून के ऐक्शन के बारे में बात करने लगते। मुझ से बोलते न बनता। मैं एक ही उत्तर देता—"ऐक्शन जरूर करना है। जैसे होगा, करेंगे।"

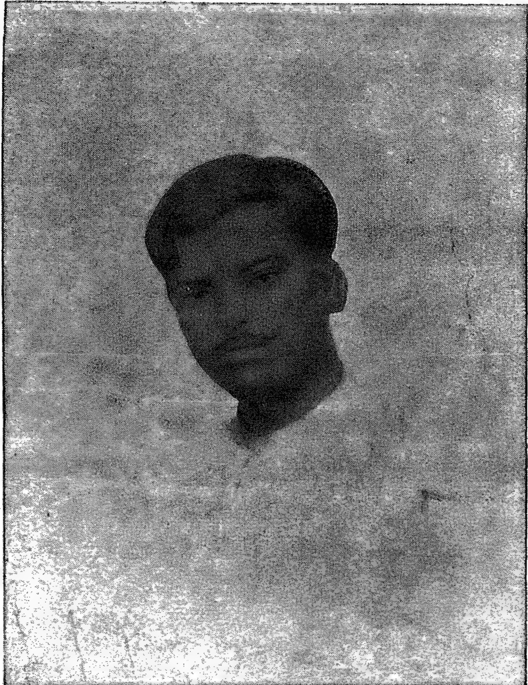
सुशीला जी अपनी आँखें पोछतीं हुई भाभी को सान्त्वना देने की चेष्टा करतीं परन्तु भाभी बिल्कुल निश्चल और निष्पलक, लकड़ी की तरह सीधी पड़ी रहतीं। भैया भी बारबार उन के पास बैठ दल पर उनके ऋण और उनके प्रति दल के कर्तव्य बात कह कर सान्त्वना देते। तब भी वे निरुत्तर और निश्चल रहतीं। अलबत्ता जब बच्चन उन्हें सान्त्वना देने के लिए उन के समीप जा कर फूट-फूट कर रोने लगता तो वे उसे सहारा देने के लिए उस के सिर पर हाथ रख देतीं। बच्चन को भैया आजाद और भगवती भाई दोनों के प्रति ही अगाध अनुरक्ति थी। रोते-रोते उस ने कहा—"भैया ने क्रान्ति की भावना की चिन्गारी मेरे हृदय में जगाई थी, बाबू भाई उसे अमर ज्वाला बना गये।"

हम लोगों ने बच्चन से घटना का ब्यौरा पूछा। मालूम हुआ, मैं जब बम के खोलों के भीतर रोगन लगा कर उन्हें सूखने के लिए रख गया था तो सुखदेवराज ने जल्दी मचाई कि इन्हें धूप में रख कर सुखा लिया जाय। वैसा ही किया गया। धूप में रखने से खोलों का रोगन दो तीन घन्टे में (उनके विचार से) सूख गया। उसके बाद उसने बम भरने का आग्रह किया। भगवती भाई ने बम भर दिया। मैंने याद दिलाया कि मैंने पहिले ही कहा था कि एक बम का ट्रिगर ढीला है। बच्चन ने कहा—"हम लोगों को उस समय ढीला नहीं मालुम हुआ। "बम भर लिये जाने पर वे तीनों बम की आजमाइश के लिए साइकिलों पर रावी की ओर चले गए। साइकिलें घाट पर छोड़ उन लोगों ने सनातनधर्म कालेज के मल्लाह से एक नाव ली और नाव पर चढ़ सूने जंगल की ओर चल गए। जंगल में जा एक स्थान चुन भगवती भाई बम को फेंकने के लिए तैयार हुए। बच्चन और राज के पीछे हट जाने पर बम का घोड़ा चढ़ाने से पहिले भगवती भाई ने कहा—"इस बम का ट्रिगर तो ढीला है, इसे रहने दिया जाय।" सुखदेवराज उन की ओर बढ़ गया और बोला—"तुम्हें डर लगता हो तो लाओ मुझे दो!"

"ऐसी क्या बात है?" भगवती भाई ने हंस कर कहा—"जो मेरे लिए है वही तुम्हारे लिए भी। तुम पीछे हट जाओ।" उन्हों ने हाथ फैला कर बम फेंका। बम उन के हाथ से छूटते-छूटते फट गया। भगवती भाई बम के टुकड़ों की चोट और विस्फोट के धक्के से गिर पड़े। यदि बम का ट्रिगर ठीक होता तो फेंक दिए जाने के बाद बम को जमीन पर गिरने की चोट से ही उसे फटना चाहिए था।

भगवती भाई के इस प्रकार असह्य पीड़ा में शहीद होने से मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे इसके लिए अपराधी मैं ही हूँ। जब मैंने देख लिया था कि ट्रिगर ढीला है तो मुझे उसी समय ठीक कर देना चाहिए था और बम को आज़माने के लिए वे गये ही क्यों? लेकिन यह सब मेरे लौट आने से पहले ही हो चुका था। मैं भाभी को सान्त्वना देने का भी साहस न कर सका। मुझे यह ख्याल भी न आया कि उनकी इस विपत्ति में हम लोग यही एक चीज उन के लिए कर सकते हैं और दल के सब लोगों में उनका सबसे पुराना परिचित मैं ही हूं। मैंने भगवती भाई की मृत्यु से अपनी चोट को भाबी के दुख से भी बड़ा समझ लिया। जैसे, मेरे अवसाद में मुझे उनसे भी अधिक

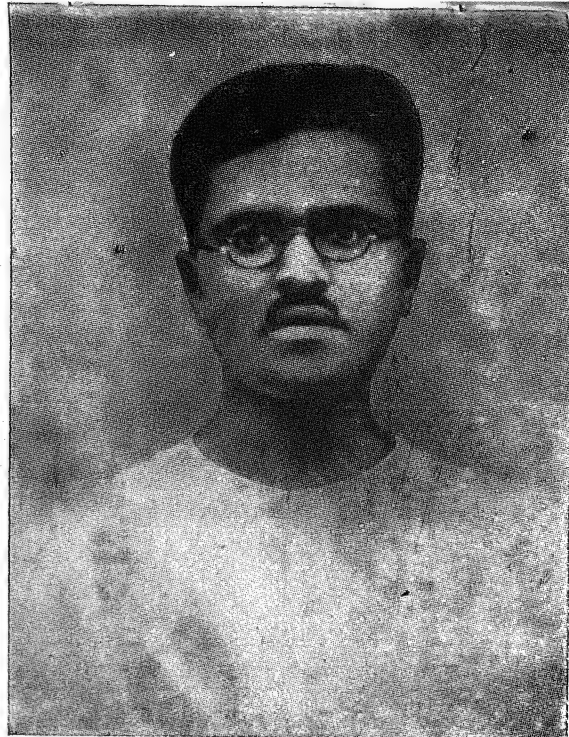
हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना के दो नेता



चन्द्रशेखर 'आज़ाद'
ब्रिटिश साम्राज्यशाही पुलिस से लड़ते हुए
२८ फरवरी १९३१ को एलफ्रेड पार्क इलाहाबाद में
शहीद हो गये



हि० स० प्र० स० की मोहर



भगवतीचरण
रावी नदी के किनारे एक बम का परीक्षण करते हुए २८
मई १९३० को आकस्मिक विस्फोट से शहीद हो गये ।

सांत्वना की आवश्यकता है। एक बार भी उनके पास जाकर सांत्वना का कोई शब्द न कह सका। बहुत दिन बाद मैं अपनी भूल जान पाया और बहुत ग्लानि भी अनुभव हुई। अपने सुख-दुख और दृष्टि-कोण की तुलना में दूसरों की अनुभूति को भूल जाना ही स्वार्थपरता का मूल है।

× × ×

३० या ३१ मई के दिन सोचा कि एक पत्र लिख कर प्रकाशवती को भगवती भाई की शहादत की सूचना दे दूं। खाना खाने के कमरे में कोई न था। वहीं बैठ कर पत्र लिखने लगा। पत्र आरम्भ करने से पहले सोचा कि पत्र किस पते पर भेजा जाय? प्रकाशवती कृष्ण जी के यहां थीं। उनके पते पर लिखते संकोच हुआ। उनकी अदमनीय कौतूहल की प्रवृत्ति जानता था और शंका थी कि वे पत्र को पहले स्वयं पढ़े बिना न रह सकेंगे इसलिये श्रीमती कृष्ण के भाई ध्रुवदेव जी के पते पर पत्र भेजना निश्चय किया। लिफ़ाफ़े पर पहले ही पता लिख लिया। पत्र का भाव लगभग ऐसा था—"बहुत ही अप्रत्याशित विस्फोट में भगवती भाई शहीद हो गये हैं। अपने बाद जिसके भरोसे तुम्हें छोड़ जाने का विश्वास था, वह मुझसे पहले ही चल दिया। भगवती भाई के बिना दल का एक हाथ टूट गया। भाबी की अवस्था समझ सकती हो। उसने सर्वस्व दल को दे दिया था। अप्रत्याशित घटना ने उससे भी बड़ी चीज़ उनसे छीन ली। आंख उठा कर उन की ओर देखने का साहस नहीं होता न कुछ कहने का ही। सांत्वना का एक शब्द भी मैं उन्हें नहीं कह पाया हूं। मेरे बाद भाबी के प्रति तुम जितना भी ऋण मानो, कम होगा। उनके लिये सभी प्रकार का सहारा बनना तुम्हारा कर्त्तव्य होगा.......।" पत्र समाप्त नहीं कर पाया था कि ज़रा जेल के सामने चक्कर लगा आने के लिये भैया ने पुकार लिया।

अध लिखा पत्र और पता लिखा लिफ़ाफ़ा जेब में लिये चलना उचित न जंचा। किसी समय भी सड़क पर पकड़ा या मारा जाना असम्भव न था। मेरी जेब में जिस व्यक्ति के पते पर लिखा पत्र मिलता, उसकी खैर न थी। पत्र और लिफ़ाफ़ा फाड़ दिये। ठीक याद नहीं छैल बिहारी या मदनगोपाल जो सामने दिखाई दिया, उसे पुकार कर काग़ज़ के टुकड़े उसके हाथ में दे दिये—"यह जला देना।"

काग़ज़ के वे टुकड़े जलाये न गये बल्कि उपेक्षा से बंगले या रसोई

में किसी स्थान पर फेंक दिये गए। जिस अवस्था में हमें बंगले से भाग जाना पड़ा, पुलिस ने सूराग ढूंढ़ने के लिए बंगले के कोने-कोने की तलाशी ली। वे काग़ज़ उनके हाथ पड़ गए। ध्रुवदेव तुरंत गिरफ्तार कर लिये गये। पुलिस ने उनसे भेद निकालने के लिये उन्हें खूब सताया। अपनी इस भूल के लिए मेरे मन में सदा ही कलख और घोर पछतावा बना रहा। लेकिन ध्रुव जी शरीर से जितने संक्षिप्त हैं, हृदय से उतने ही विशाल। छूट कर आये तो मेरी फ़रारी की अवस्था में फिर भी सहायता करते रहे। उन्हें मेरी नीयत पर इतना विश्वास था कि आज भी वह मित्रता कायम है।

ध्रुवजी बताते भी क्या? उन्हें यह मालूम ही न था कि हम लोग लाहौर में या बहावलपुर रोड पर थे। उनसे केवल 'कमला' के बारे में पूछा जा सकता था क्योंकि उन की मार्फत 'कमला' के लिये पत्र लिखा गया था। पुलिस ने ध्रुवजी के मकान के साथ ही उन के सम्बन्धी कृष्ण जी के मकान की भी तलाशी मकान को घेर कर सरगर्मी से ली। प्रकाशवती पकड़ी नहीं गईं। क्योंकि तलाशी से कुछ देर पहले जब खुफिया पुलिस अभी मकान की देख-देख कर रही थी, उन्हें कुछ शंका हुई और वे आशंका अनुभव कर कृष्ण जी से कुछ कहे बिना ख्याली-राम जी गुप्त के यहां चली गइ।

× × ×

रावी किनारे मल्लाह के पास छोड़ी हुई साइकिलों को वापिस लाने और सुखदेवराज के पांव के इलाज की व्यवस्था आदि कई काम थे। १ जून को जेल पर आक्रमण करना ही था। इसलिए हम लोग दिल पर पत्थर रख उस चिन्ता में व्यस्त हो गये। मैं और भइया दोनों बार-बार बोर्स्टल जेल और सेन्ट्रल जेल के सामने से जगह का निरीक्षण करते हुए गुजरते। भइया बार बार पूछते—"सोहन कहाँ ठीक रहेगा, सेन्ट्रल पर या बोर्स्टल पर?" मेरा एक ही उत्तर था—"फैसला तो हो चुका, बोर्स्टल पर।"

१ जून को सुबह ही भैया ने कहा—"आज पाँच बजे एक्शन करना है। बाबूभाई और राज की जगह किन दो को लिया जाय? दो आदमी हैं, छैलबिहारी और मदन। इनमें से जिसे चाहो चुन लो।"

इन दोनों को यह तो मालूम था कि किसी बहुत बड़े एक्शन की तैयारी है परन्तु एक्शन कहां और कैसे होगा; कौन लोग इसमें भाग

लेंगे; यह बातें मालूम न थीं। भैया ने मुझे ही कहा—"तुम इन में से जिसे उचित समझो उसे अलग ले जाकर बात कर लो और साइकिल पर ले जाकर स्थान दिखा, समझा आओ।"

भैया की यह बात भाबी के कान में पड़ी। उन्हों ने आग्रह किया—"आक्रमण मे 'उनकी' जगह जाने का अवसर मुझे दीजिए। सब से पहले यह मेरा अधिकार है।"

भैया ने मेरी ओर देखा। हम दोनों ने समझाया—"इस समय आप रहने दीजिए!"

"क्यों?"—भाबी ने जिद की।

"भैया ने आंसु पोंछ कर कहा—"ऐसा कोई भी कदम सोच विचार कर उठाना ठीक होगा। लड़के का भी प्रश्न है।"

"लड़का अब आप लोगों का है, आपके जिम्मे है।"

"भाबी अभी मान जाओ!"—भैया ने समझाया। सुशीलाजी ने भी आक्रमण में भाग लेने के लिये आग्रह किया परन्तु उन्हें भी इन्कार कर दिया गया।

मुझे छैलबिहारी जँचा। उसे एक ओर ले जा कर बात की—"हम भगतसिंह और दत्त को जेल से छुड़ाने के लिए आज जेल के फाटक पर आक्रमण करेंगे। यह निश्चय समझ लो कि वहां मारे जाने की ही अधिक सम्भावना है। गोली चलने पर भागने का कोई सवाल न होगा। ऐसी अवस्था में मैं या भैया भागने वाले को स्वयं गोली मार देंगे। यदि साहस नहीं है तो पहिले ही इनकार कर सकते हो।" छैलबिहारी ने उत्तर देने से पहले विचार करने के लिए समय चाहा। प्रायः आध घण्टे बाद आकर उसने उत्तर दिया—"मुझसे न हो सकेगा।"

अब मदनगोपाल को बुलाकर बात की। उसे भी पूरी स्थिति समझा कर पूछा कि साथ चलने को तैयार है या नहीं। मदनगोपाल कुछ देर खड़ा सोचता रहा और फिर उसने हामी भरली। मैंने उसे तैयार रहने के लिए कहा। कुछ मिनट बाद भैया ने मुझे दिखलाया कि वह एक सूने कमरे के कोने में आसन बिछाकर गीता का पाठ कर रहा था। भैया ने संकेत से उसके प्रति अपनी विरक्ति और निराशा प्रकट की—"यह गीता से पाया साहस कहीं ऐन वक्त पर ठसक न जाये!"

यह गीता पढ़ने वाला मदनगोपाल गिरफ्तारी के बाद मुखबिर बन

गया। उसने अपने बयान में पुलिस के सन्तोष के लिए बीसियों बेसिर पैर के झूठ बक डाले। आदमी मुखबिर प्राणों के भय से बनता है। जो एक बार डरा, पुलिस उससे जो चाहे कहला या करा सकती है। मदन गोपाल ने अपने बयान में अपनी वीरता प्रकट करने के लिए यह भी कहा कि छैलबिहारी के भय दिखाने पर आजाद ने क्रोध में कहा–"यदि एक्शन का सवाल सामने न होता तो उसे गोली मार देते।" यह बात झूठ है। किसी आदमी के अपने साहस की सीमा प्रकट कर देने पर गोली मार देने की बात हम लोग न करते थे अलबत्ता मदनगोपाल के मुखबिर बन जाने की बात मालूम होने पर उसे गोली मार देने की इच्छा भैया क्या, सभी लोगों की थी।

मदनगोपाल रिवाल्वर या पिस्तौल का उपयोग न जानता था। भैया ने एक खाली रिवाल्वर उसके हाथ में थमा कर निशाना साधना और रिवाल्वर चलाना सिखा दिया और गोलियाँ भरने का ढङ्ग भी बता दिया। भैया ने सबको ड्यूटियां बांटकर समझा दिया कि आक्रमण के समय किसे क्या करना होगा। हथियार बांटते समय मेरी और भैया की जेबों का सब रुपया सुशीला जी को सौंप दिया गया लेकिन कुछ सोच भैया ने पन्द्रह-पन्द्रह रुपये फिर सब को बांट दिये; यदि किसी हालत में जख्मी होकर बिखर ही जायें तो निरुपाय न रहें।

बोर्स्टल जेल के फाटक पर पुलिस की लारी के घूमने के लिये जगह तंग थी इसलिये लारी फाटक से पन्द्रह-बीस कदम दूर खड़ी होती थी। भगतसिंह की योजना थी कि हम लोग ठीक ऐसे समय बोर्स्टल जेल के फाटक की ओर मोटर ले आयें जब उन लोगों को लारी में बैठाने के लिये फाटक से निकाला जा रहा हो। हमें देख कर और हमारा संकेत पाकर वह और दत्त फाटक से निकल पुलिस की लारी के पास पहुँच हम लोगों की ओर दौड़ पड़ेंगे। उस समय उनके साथ की गारद पर और लारी पर आक्रमण करना होगा। भैया ने ड्यूटियां इस प्रकार बाँटीः–जगदीश और बच्चन एक बजे ही जेल के सामने की सड़क पर घूमते हुए भगतसिंह और दत्त के बोर्स्टल जेल की ओर जाने की प्रतीक्षा करने लगे। बच्चन ने ढाइ बजे बंगले पर आकर खबर दी कि पुलिस की लारी भगतसिंह और दत्त को सवा दो बजे बोर्स्टल जेल पहुँचाकर लौट गई है। भगतसिंह दत्त के अब पांच बजे वापिस लौटने की आशा थी। हम लोग चार बजे कार में अपने अपने निश्चित स्थानों पर बैठे ही

थे कि सुशीला जी ने पुकारा ठहरिए—वे कमरे से निकलीं। उनकी बांह से कुछ खून बह रहा था। खून में उगंली भर उन्होंने सब के माथे पर टीके लगा दिए। भाभी पत्थर की मूर्ति की तरह बराम्दे में सुन्न खड़ी देख रही थीं।

हम लोग बोर्स्टल और सेन्ट्रल जेल के सामने होते हुए दूर नहर की ओर चले गए। इस समय बच्चन हमारे साथ कार में आ गया था। अब जगदीश का काम था कि भगतसिंह दत्त को वापिस लाने के लिए लारी के बोर्स्टल जेल की ओर चलते ही हमें संकेत दे दे। हम कार का मुख जेल की ओर मोड़ प्रतीक्षा कर रहे थे। इंजन चालू था। सर्दार यों ही मोटर का ढक्कन खोल कुछ देख भाल कर मोटर को रोकने का बहाना कर रहा था। जगदीश का संकेत मिलते ही हम लोग लौट पड़े। हम बहुत तेजी से आ गये। पुलिस की लारी अभी बोर्स्टल जेल के फाटक पर पहुँच ही रही थी। हम बोर्स्टल जेल के लिये मुख्य सड़क से फटने वाली सड़क के मोड़ पर रुक गये। लारी आहिस्ता-आहिस्ता फाटक पर पहुंची। कुछ देर जेल के फाटक की ओर मुंह किये रुकी, जैसे सदा खड़ी होती थी परन्तु जाने क्यों, फाटक को तुरन्त खुलता न देख मुड़ जाने के लिए लौट पड़ी। लारी में कैदियों के बैठने का रास्ता पीछे से था। लारी के यों पहले से मुड़ जाने का अर्थ हुआ कि अब भगतसिंह और दत्त को फाटक से निकलते ही गाड़ी में बैठा दिया जायगा। गाड़ी फाटक से सट कर खड़ी हुई, जैसे पक्षी को एक पिंजरे से दूसरे पिंजरे में बदलने के लिए पिंजरों के मुंह सटा दिए जायें। भगतसिंह और दत्त को पन्द्रह-बीस कदम चल सकने या भाग सकने का अवसर न रहा।

हमारी कार मोड़ पर खड़ी खर खर कर रही थी। भैया ने जेल के फाटक की ओर देखते हुए मुझे सम्बोधन किया—"सोहन अब!"

"बढ़िये!"

"कैसे?"—विस्मय से भैया ने पूछा।

"जो भी हो!"

"हूँ"

भगतसिंह और दत्त बन्द जेल फाटक की सीखों के उस पार आते हुए दिखाई दिए। योजना के अनुसार पिछली सीट पर मैं बाईं

ओर, बच्चन दाईं ओर और बीच में मदनगोपाल बैठा था। भैया ने धीमे से निर्देश दिया—'सिगनल !"

बच्चन ने बांसुरी बजाना शुरू किया कि भगतसिंह, दत्त हमें देख कर सावधान हो जायें। यह सिगनल पूर्व निश्चित था। जेल के फाटक की खिड़की खुली। हमारी मोटर धीमी चाल से जेल की ओर बढ़ी। भगतसिंह से इशारा मिलते ही हमें जेल की ओर दौड़ पड़ना था। मेरा काम था बाईं ओर बेंच पर बैठे जेल के छः सशस्त्र सिपाहियों पर पहले बम फेंक कर उन पर गोली चला कर उन्हें समीप न आने देना। बच्चन का काम था लारी पर बम फेंक उसमें बैठे पुलिस के सिपाहियों को रोके रहना। मदनगोपाल को दौड़ कर अपनी ओर आते भगतसिंह और दत्त को एक एक रिवाल्वर दे देना था। भैया के पांव के पास बड़ा माउज़र पिस्तौल रखा था जिसे राइफल की तरह कंधे से टिका गोली चलाई जा सकती थी। वे जिस किसी को आगे बढ़ता देखते, गोली मार देते।

भगतसिंह और दत्त बाहर निकले! भगत ने माथा खुजाने का इशारा न किया। भैया ने पूछा—"कहो !"

"बढ़ो"—मैंने भगतसिंह की ओर देखते हुए भैया को उत्तर दिया। ड्राइवर ने इंजन तेज़ किया परन्तु भैया ने उसके हाथ पर हाथ रख रोक दिया—"ठहरो !" भगतसिंह ने हमारी ओर कदम न उठा लारी के दरवाजे की ओर ही कदम उठाया।

भैया ने धीमे से कहा—"लारी को आने दो !"—उनका अभिप्राय था, आ तो गये ही हैं, ऐसे नहीं तो दूसरे ढंग से सही। इस समय तक हमारी मोटर पर सन्देह हो जाना चाहिए था। बचकर बिना सन्देह पैदा किए लौट जाने की बात हमारे अनुमान से खतम हो चुकी थी। भगतसिंह और दत्त को लिए पुलिस की लारी हमारी बगल से गुजरी। उन दोनों ने हम लोगों की ओर देखा। आंखें मिलीं और बिछुड़ गईं। हम लोग निश्चल रह गये।

भैया ने ड्राइवर को तुरन्त लौट चलने के लिए कहा। गाड़ी तेजी से चली। हम लोगों ने दो-तीन सड़कों पर घूम-घूम कर पीछे देखा कि पीछा तो नहीं किया जा रहा ? एक सूनी जगह में फुरती से कार का नम्बर बदल बंगले पर लौट आए। गाड़ी की आहट पा भाबी और सुशीला

जी बराम्दे में दिखाई दीं। उन लोगों को देख मेरी आंखें झुक गईं। दूसरों पर क्या बीती, वे जानें। हम खून का टीका लगवा कर गए थे।

भैया ने मुझे सम्बोधन किया—"बताओ, क्या कर सकते थे? खामुखा बढ़ो! बढ़ो! कहे जा रहे थे तुम?" आज नहीं तो कल सही!"

मैंने स्वीकार किया—"तुमने बुद्धि से काम लिया। मैं भावुकता में बह गया था। सोचने का काम आप ही का था!"

× × ×

बहावलपुर रोड पर विस्फोट

रात काफ़ी देर तक बात होती रही। भैया ने कहा—"भगत और दत्त को छुड़ाने काम जरूर करना है परन्तु ऐसे नहीं। पच्चीस-तीस आदमियों को लेकर, जैसे 'चटगाँव' में किया गया है।" यह कहना व्यर्थ था कि मैं तो दो मास से यही बात कह रहा था। शरीर और मन ऐसे शिथिल जान पड़ रहे थे जैसे खूब जोर का ज्वर होकर उतर गया हो। हम दोनों बराम्दे में लेटे थे। भैया काफ़ी रात तक बात करते ही रहे। कुछ नींद ले सकने के लिए मैं भीतर चला गया।

ड्राइंगरूम के पिछवाड़े के बड़े कमरे में दाईं-बाईं दीवारों के साथ लोहे का स्प्रिंगदार पलंग लगे हुए थे। छत से बिजली का बड़ा पंखा लटका था। भाबी एक पलंग पर सोयी हुई थी। पंखा चल रहा था। मैं दूसरे पलंग पर बिना कुछ बिछाये जा लेटा और नींद आ गई।

आहट से नींद खुली। देखा, भाबी उठकर बाहर जा रही है। उनके उठने से लोहे के पलंग के स्प्रिंग चर्राने की आहट हुई थी। पौ फटने का समय था। मैं भी उठ गया। बाहर जाने से पहले पंखा बन्द कर दिया। ड्राइंग रूम लाँघ मैं बराम्दे में ही पहुँच पाया था कि भयंकर धड़ाके से बंगला हिल उठा। नींद से चौंक कर भैया ने पुकारा—"क्या बम फट गया?"

"हूँ"—मैं स्तब्ध सा रह गया था।

"एक दम बंगला खाली कर दो!"—उन्हों ने कहा। हम लोग झपट कर हथियारों को छोटे बेगों में सम्भालने लगे। इसी समय दूसरी बार धड़ाका हुआ। धड़ाके उसी कमरे में हुए थे जिसमे दो मिनिट पहले मैं और भाबी सो रहे थे। वहाँ आलमारी में वे दोनो बम रखे थे जो

पिछली संध्या जेल पर आक्रमण करने के लिए जाते समय मेरे और बच्चन के हाथ मे थे। तीन-चार मिनिट में हथियार और महत्वपूर्ण काग़ज समेट लिए। मोटर बंगले पर न थी। वह रात लौटा दी गई थी। मदनगोपाल और छैलबिहारी को एक एक रिवाल्वर देकर यूनिवर्सिटी ग्राउण्ड के मैदान में जाकर प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया। भैया ने हथियारों से भरे बेग उठाये। बच्चन और मैंने अपनी साइकिलों के पीछे दुर्गा भाबी और सुशीला जी को। सूनी सड़कों का चक्कर दे, कोई पीछा नहीं कर रहा यह आश्वासन पा, हम लोग इन्द्रपाल के मकान पर पहुँच गये।

इन्द्रपाल ने बंगले में बम फट जाने और हमारे भाग आने की बात सुन चिन्ता प्रकट की—"वहां तो मेरे घर का सभी सामान मौजूद है ? अगर पकड़ा गया ?" इन्द्रपाल की आशंका ठीक थी। कुछ ही दिन पहले विवाह होने पर दहेज में उसे जो सामान मिला था, हम लोग उठा ले गए थे। इनमें से कई चीज़ों पर उसका नाम और उपहार मिलने की तिथि भी लिखी हुई थी। मैंने कहा—"इतनी जल्दी पुलिस नहीं पहुँची होगी। देख आऊं अवसर हुआ तो सामान उठा लायेंगे।

भैया ने ताकीद की—"सम्भल कर ! बचपन न करना !" मैंने बंगले के सामने से घूम कर देखा अभी बिलकुल सुनसान था। भीतर गया और एक परदा उतार जितना सामान सम्भला एक गठरी बांध इन्द्रपाल के यहाँ लौट आया और बताया कि अभी तो वहाँ बहुत कुछ है ?

बच्चन को भाबी और सुशीलाजी के साथ सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया गया। मैं, भैया और इन्द्रपाल फिर साइकिलों पर लौटे। चौकस हो बंगले के भीतर झांक कर देख लिया। भैया ने सुझाया—"हम लोग बचपन कर रहे हैं। पड़ोसी इंजीनियर के यहां टेलीफोन है। वह जिम्मेवार सरकारी नौकर है। उसने अगर पुलिस को फोन कर दिया हो तो ?"

मैंने पड़ोसी इंजीनियर का दरवाज़ा खटखटाया। वे बाहर निकले। ने अंग्रेजी में बात की—"कोठी में विस्फोट हो गया है ?"

"घबराकर उन्हों ने स्वीकार किया—"हां"

"आपने पुलिस को फोन तो नहीं किया ?"

"अभी तो नहीं किया पर कर देना चाहिये ?"

"अभी न कीजिये ?"

"क्यों ?"

हम क्रान्तिकारी लोग हैं। विस्फोट आकस्मिक रूप से हो गया है। आप आध घंटे तक ठहर कर फोन कीजिये। इससे सरकार के प्रति कर्तव्य पालन भी हो जायगा और इतने समय में हम अपना प्रबन्ध भी कर लेंगे।" उन्होंने सज्जनता से मेरी बात स्वीकार कर ली और वैसा ही किया भी। हम लोगों ने केवल निरर्थक चीजें छोड़ बंगले से सब कुछ हटा लिया।

ध्रुव जी के फंसने के अतिरिक्त इन इंजीनियर साहब पर हम लोगों के कारण जो बीती, उसके लिये भी दुख है। जब मैं इंजीनियर से बात करने गया तो इन्द्रपाल मेरे साथ था। यह ठीक है कि इन्द्रपाल जान बचाने के लिये मुखबिर न बना था बल्कि मुखबिर बन जाने क लिये तैयार दूसरे लोगों से अपने साथियों को बचाने के लिये ही मुखबिर बना था। उसने बहुत से लोगों को पुलिस की लपेट में आने से बचाया भी परन्तु जाने क्यों, इन इंजीनियर साहब की बात उसने पुलिस से कह दी। इन्हें खूब परेशान भी किया गया और उनका ओहदा गिराकर सरकार ने इनसे बदला भी लिया। इंजीनियर साहब ने हम लोगों के प्रति जिस सद्भावना और सहानुभूति का परिचय दिया उसके लिये वातावरण पैदा करने वाली कुछ घटनायें पिछले दिनों हो चुकी थीं।

× × ×

जलगांव अदालत में मुखबिर पर गोली

फरवरी १६३० में एक और घटना से जनता में हमारे दल के प्रति आस्था बढ़ने में सहायता मिली। जलगाँव अदालत में साथी भगवानदास ने लाहौर षड़यन्त्र के मुखबिर जयगोपाल को गोली मार कर जख्मी कर दिया था। साथी भगवानदास लगभग अक्टूबर १६२६ मे साथी सदाशिव राव मल्कापुर के साथ गिरफ्तार हुए थे। इन लोगों के गिरफ्तार होने के समय जनता का व्यवहार और भगवानदास के अदालत में गोली चलाने पर जनता की प्रतिक्रिया क अन्तर से गत चार मास में क्रांतिकारियों के प्रयत्नों से जनता की भावना पर पड़े प्रभाव का बहुत अच्छा उदाहरण मिलता है।

अक्टूबर १६२६ में जब भैया आजाद ने भगवती भाई के प्रति अविश्वास के कारण हम लोगों से सम्पर्क करने से इन्कार कर दिया था

वे ग्वालियर में काफी कठिन अवस्था मे थे। वहाँ किसी प्रकार पाँव जमते न देख उन्हों ने भगवानदास और सदाशिव राव दोनों को बम बनाने का सामान और यन्त्र लेकर पूना जाने के लिए कह दिया। पूना में राजगुरू का जमाया हुआ दल का एक अड्डा था। पूना जाते समय भुसावल मे गाडी बदलनी पड़ती है। भुसावल में 'मादक द्रव्य नियंत्रक' (इक्साइज) पुलिस की बहुत चौकसी रहती थी। प्रायः ही मुसाफिरों के सामान की जाँच की जाती थी।

पुलिस ने भगवानदास और सदाशिव राव की गठड़ी और बक्से की भी जांच करनी चाही। सदाशिव के समझाने बुझाने का कोई परिणाम न हुआ। बक्सा खोल कर दिखाना ही पडा। उसमें तेजाब आदि की बोतलें देख पुलिस को सन्देह हुआ। भगवानदास ने इन बोतलों को अमूल्य औषधियां बता कर पुलिस को बहलाना चाहा परन्तु तलाशी में कारतूसों की एक बड़ी पुड़िया भी निकल आई। बक्स में कपड़े में लिपटा एक पिस्तौल भी था जिसे भगवानदास ने चातुरी से उठा कर पहिले बाहिर रख दिया था। पुलिस के बहकने की सम्भावना न देख भगवानदास ने सदाशिव को संकेत किया, उठाओ और भागो! सदाशिव ने केवल पिस्तौल न उठाकर पूरा बक्सा ही उठा कर भागना शुरू किया। दोनों प्लेटफार्म से सिगनल की ओर भाग चले। पुलिस के सिपाही उनके पीछे दौड़े। सिपाहियों ने भीड़ को सहायता के लिये पुकारा—"दौड़ो बम मारने वाले भागे जा रहे है!" भीड़ सिपाहियों के साथ दौड़ पड़ी। बक्सा उठाये सदाशिव का पांव सिगनल की एक तार मे उलझ गया और वह गिर पड़ा। उसे पुलिस के हाथ पड़ता देख भगवानदास ने जेब से पिस्तौल निकाल भीड़ की ओर मुंह कर हवा में गोली चला दी। इस पर भी भीड़ ने उन लोगों का पीछा न छोड़ा। वे दोनों रास्ता बदल, स्टेशन का जंगला कूद, सड़क लांघ बस्ती की ओर दौड़े। स्थान से अपरिचित थे। स्वयं ही पुलिस चौकी में पहुँच गये और गिरफ्तार हो गये।

बिना कुछ कर पाये गिरफ्तार हो जाने और दल का बहुमूल्य सामान खो देने की भगवानदास और सदाशिव को बहुत ग्लानि थी। मुखबिरों के बयानों से उनका सम्बन्ध लाहौर षड़यन्त्र से मालूम हो ही चुका था। दोनों को लाहौर लाकर पुलिस ने मुखबिर जयगोपाल और फणीन्द्र से पहचनवा लिया था परन्तु उनका मुकद्दमा जलगांव में ही

हो रहा था और वे धूलिया जेल में बन्द थे। इन लोगों ने अपने विश्वस्त, झाँसी के प्रसिद्ध वकील रा० वी० दुलेकर को परामर्श के लिये धूलिया बुलवा कर आजाद को संदेश भेजा कि उनके मुकद्दमे में दुबारा गवाही देने के लिये जयगोपाल और फणीन्द्र जलगांव अदालत में आयेंगे। यदि उन्हें एक पिस्तौल पहुंचा दिया जाये तो वे मुखबिरों को मार सकते हैं।

जनवरी १६३० में संदेश मिलने पर भैया ने भगवती भाई को उन दिनों की योजना समझने और परिस्थिति देखने के लिये भेजा। भगवती भाई झांसी के वकील की हैसियत से इन दोनों से जेल में मिले और भैया को अनुमति दे दी। २० फ़रवरी को शाम सदाशिव के भाई शंकरराव मल्कापुर दोनों अभियुक्तों के लिये भोजन लेकर जेल में गए तो भैया का दिया एक भरा हुआ पिस्तौल कटोरदान में साथ ले गए।

भगवानदास और सदाशिव ने अपनी योजना पूर्ण करने के लिए जेल वालों पर अपनी सज्जनता और नियमानुकूल रहने की धाक पहिले ही जमा ली थी। कभी कभी सिपाहियों को गात सुना कर उन का मनोरंजन भी करते रहते थे। २१ फरवरी को उन लोगों की जलगांव की सशन अदालत में पेशी थी। उसी दिन दोनों मुखबिर जयगोपाल और फणीन्द्र गवाही देने के लिए आने वाले थे। भगवानदास जेल से अदालत जाते समय पिस्तौल जेब मे लेते गए। अदालत में दोपहर के विराम के समय भगवानदास और सदाशिव के लिए शंकरराव खाना लेकर गए थे। दोनों अभियुक्तों के लिए बराम्दे के नीचे दो कुर्सियां डाल दी गईं। शंकरराव बराम्दे में उनके सामने उकड़ु बैठ उन्हें भोजन करा रहे थे। अभियुक्तों के पीछे अदालत के अहाते में एक छोलदारी में दोनों मुखबिरों और उनकी रक्षा के लिए तैनात पुलिस अफसरों के लिए मेज कुर्सियों पर भोजन की व्यवस्था की गई थी।

भोजन करने के लिए दोनों अभियुक्तों की हथकड़ियां दायें हाथों से खोल कर बायें हाथों में ही लगा दी गईं थीं। शंकरराव ने उन्हें बताया —"तुम्हारी पीठ पीछे छोलदारी में दोनों मुखबिर पुलिस वालों के साथ खाना खा रहे हैं।" भगवानदास और सदाशिव ने परामर्श किया— इससे अच्छा अवसर और क्या होगा। भगवानदास कुर्सी से उछल पिस्तौल निकाल छोलदारी की ओर लपका। छोलदारी के दरवाजे पर

खड़े लहीम शहीम सब इन्सपेक्टर नानकशाह ने रास्ता रोका। भगवान दास ने पहली गोली उसी पर चलाई। गोली नानकशाह की जांघ को छीलती हुई निकल गई और वह चिल्ला कर अपनी जान बचाने के लिये भागा।

भगवानदास ने छोलदारी का पर्दा उठाया। फणीन्द्र गोली की आहट सुन पहिले ही कुर्सी से खिसक मेज के नीचे घुस गया था। जयगोपाल हिम्मत कर भगवानदास की ओर झपटा। भगवानदास ने उसी पर गोली चलायी। गोली जयगोपाल के कंधे पर लगी और वह चिल्लाकर अदालत की ओर भागा। मुखबिरों के साथ भोजन के लिए बैठा पुलिस का इंचार्ज अफ़सर भी मेज के नीचे घुस गया था। भगवानदास ने झुक कर गोली चलाने का यत्न किया परन्तु पिस्तौल अड़ गया।

वह छोलदारी से अदालत के कमरे की ओर भागा ताकि उनके विरुद्ध गवाही के लिए रक्खा हुआ, उनके पास पकड़ा गया पिस्तौल उठा ले। सदाशिव उससे पहिले ही उस ओर दौड़ने के कारण पकड़ लिया गया था।

नानकशाह चोट खाकर पहिले ही उस ओर भागा था। भगवान-दास को अपनी ओर आते देख 'मरता क्या न करता' की अवस्था में वह भगवानदास पर टूट पड़ा और अपने बोझ से भगवानदास को नीचे गिरा कर दबा लिया। पुलिस के दूसरे आदमियों ने दौड़ कर उसे काबू कर लिया। इस अवसर पर जलगांव की बहुत सी जनता क्रांतिकारियों का मुकद्दमा देखने के लिये अदालत में घिर आई थी। क्रांतिकारियों और पुलिस की इस लड़ाई में जनता ने पुलिस का साथ न दिया बल्कि क्रान्तिकारियों के समर्थन में 'क्रांति जिन्दाबाद !' के नारे लगाने लगी।

अदालत की कार्यवाई स्थगित करके मुखबिरों को उसी समय एक लारी में सुरक्षित स्थान की ओर रवाना कर दिया गया। उस समय भीड़ 'गद्दार मुर्दाबाद !' के नारे लगा रही थी और लारी पर पत्थर फैंके जा रहे थे। नौ या दस आदमी गिरफ्तार हुए और जलगांव में दफा १४४ लग गई। चार महीनों में क्रांतिकारियों के प्रति जनता की भावना में इतना परिवर्तन आ गया था क्योंकि इस बीच वाइसराय की गाड़ी के नीचे बम विस्फोट, चटगांव में शस्त्रागार पर हमला, और

'फिलासफी आफ़ दी बम' के वितरण की घटनायें हो चुकी थीं। जनता जान चुकी थी, क्रान्तिकारी कौन हैं और उनका प्रयोजन क्या है ?

जनता ही नहीं पुलिस भी इस परिवर्तन से न बची थी। हवालात में पिस्तौल पहुँच जाने और अदालत में गोली चल जाने के कारण क्रांतिकारी अभियुक्तों पर चौकसी रखने वाले देशी सिपाहियों को अयोग्य समझा गया। उसी समय गोरे सार्जेन्ट बुलाकर पुराने सिपाहियों की बदली कर दी गई। इन सिपाहियों में से कुछ अपनी शिथिलता के कारण सज़ा पाने की आशंका से घबरा रहे थे। इन्हीं सिपाहियों में से दूसरों ने अपने साथियों को फटकार दिया—"क्यों मरे जा रहे हो ? नौकरी चली जायगी ?.........बहुत होगा चार-छः महीने की जेल हो जायगी। मां के इन लालों को देखो, देस और कौम के लिये जान दे रहे हैं !"

वाइसराय की गाड़ी के नीचे विस्फोट हुए दो मास हो चुके थे। उस घटना की तहकीकात करने के लिये खास लण्डन से स्काउटलैंड-यार्ड के जासूस बुलाये गये थे। वे भी कुछ न कर पाये थे। अब अदालत में ही मुखबिरों पर गोली चल गई थी इसलिये जनता क्रांतिकारियों को सहानुभूति के योग्य समझने लगी थी। हम अनुभव कर रहे थे कि जनता का साहस और चरित्र बढ़ रहा था लेकिन साहस और चरित्र के लिये भौतिक कारण या परिस्थितियां ही उसे बढ़ा रही थीं।

जिन चीज़ों को कम महत्वपूर्ण समझ मैं बंगले में छोड़ आया था उनमें मेरे हाथ के हिन्दी में लिखे बहुत से कागज थे। इन्द्रपाल के मकान पर या बंगले में जब भी मुझे कुछ समय मिल जाता, मैं आस्करवाइल्ड के प्रसिद्ध नाटक "वीरा दी निहिलिस्ट" (अराजक वीरा) का अनुवाद किया करता था। इन कागजों को कहां सम्भालता फिरूंगा ? यह सोच कर वहां ही छोड़ दिए। यह कागज पुलिस के हाथ पड़ने पर उन्हें मालूम हो गया कि यशपाल बंगले में ज़रूर था। मेरे पुलिस को बार-बार चकमा दे देने के कारण पुलिस मुझ से बहुत नाराज थी। जनता से क्रान्तिकारियों को जो सहानुभूति मिलती थी उसी के बल पर हम पुलिस के हाथ न पड़ उससे लड़ सकते थे। पुलिस जनता में क्रान्तिकारियों के विरुद्ध घृणा फैलाने की तिकड़म करती रहती थी इसलिए मुखबिरों से क्रान्तिकारियों के चरित्र के बारे में भी छींटे कसवाये जाते थे। मुखबिर बन जाने पर मदनगोपाल ने बयान दिया

कि बहावलपुर रोड के बंगले में बम विस्फोट हो जाने के कारण भगत-सिंह को छुड़ाने की योजना पूरी न हो सकी। विस्फोट का कारण यह था कि जिस आलमारी में बम रखे थे उसके पास खड़ा होकर यशपाल भाबी से छेड़खानी कर रहा था। आलमारी हिल जाने से बम फट गया। यशपाल सुशीला दीदी से भी छेड़खानी किया करता था। इससे आजाद नाराज रहते थे।

उपरोक्त बयान दिलाते समय पुलिस ने या मदनगोपाल ने यह न सोचा कि बम विस्फोट से आलमारी के किवाड़ उड़ गये थे और बम के टुकड़ों ने सामने की दीवार को जगह जगह छेद कर उसका पलस्तर उड़ा दिया था। ऐसी अवस्था में समीप खड़े यशपाल की क्या हालत होती? छेड़खानी भी उस स्त्री से, तीन दिन पूर्व ही जिसका पति बम से घायल हो कर मर गया हो! जिसे घायल अवस्था में यशपाल ने स्वयं देखा हो! यशपाल तो बम के प्रभाव को जानता ही नहीं था या उसे घायल होने और मर जाने का कुछ खयाल ही न था।

सुशीला जी और भाबी को धन्वन्तरी ने सुरक्षित स्थानों में पहुँचा दिया। मदनगोपाल को मैंने उसी रोज मोटर से पालमपुर पहाड़ की सैर के लिए जाते, दल से सहानुभूति रखने वाले केवलकृष्ण के एक मित्र की कार में लाहौर से निरापद बाहर भिजवा दिया। गरमी का मौसम था एक परिवार शिमला जा रहा था। उन के साथ छैलबिहारी को भिजवा दिया। बचपन में बहुत समय तक रही संग्रहणी के प्रभाव से मेरा पेट बार बार खराब हो जाता था। भगवती भाई की मृत्यु और दूसरी घटनाओं का तनाव भी मुझ पर काफी पड़ा था। भैया से मैंने कहा, मैं दो-तीन सप्ताह विश्राम चाहता हूं। वे मान गये और तय हुआ कि मैं जुलाई के पहले सप्ताह मे दिल्ली पहुंच जाऊं।

मैंने हाकी का मैच खेलने वाले खिलाड़ी की पोशाक पहनी और वैसी ही पोशाक पहने केवलकृष्ण के साथ उस की मोटरसाइकिल पर अमृतसर पहुंच गया। वहाँ से दिल्ली। मेरा विचार देवराज और वात्स्यायन के साथ कुछ दिन पहाड़ में रह आने का था। दिल्ली से मैं प्रकाशवती को भी साथ ले गया। मेरा यह काम भी मेरे अपराधों की सूचि में खास तौर पर गिना गया।

दस

दिल्ली में बड़ी बम-फैक्टरी

भगतसिंह और दत्त को जेल से छुड़ाने के लिए विराट आयोजन मुख्यत: भगवती भाई द्वारा दुर्गा भाबी से दिलाये पांच-छः हज़ार और सुशीला जी द्वारा अपनी कलकत्ते की नौकरी की कमाई से दिए दो-ढ़ाई हज़ार रुपये से ही हुआ था। इसके बाद आर्थिक कठिनाई बहुत बढ़ गई। भैया आजाद ने जुलाई १९३० के पहले सप्ताह में दिल्ली, चांदनी चौक में घण्टा घर के पास दोपहर के समय 'गडोदिया स्टोर' में डाका डाल दिया। भैया, विद्याभूषण और काशीराम पिस्तौल लिये ऊपर की मंजिल में गडोदिया की गद्दी पर पहुंचे। स्टोर में काम करने वाला साथी विश्वम्भरदयाल वहां पहले से मौजूद था। उसने आने के लिये ठीक समय पहले से बता दिया था। धन्वन्तरी और भवानीसिंह गली में जीने के सामने पिस्तौल लिये खड़े रहे ताकि चीख पुकार होने पर कोई ऊपर न जा सके और हमारे साथी घिर न जायें। गद्दी पर केवल पिस्तौल दिखाकर ही काम चल गया। लगभग १७२०० रुपये वे लोग तीन चार मिनिट में ले आये। जीने से बाहर निकलने पर कुछ आदमियों ने शोर मचाना चाहा। उस समय एक गोली भैया को और एक विद्याभूषण को चलानी पड़ी। कुछ ही कदम पर टातन हाल के हाते में लेखराम मोटर लिये खड़ा था। इन लोगों के मोटर में बैठते ही मोटर चल दी। रुपया न्यू हिन्दू होस्टल मे प्रो० निगम के पास रख दिया गया और फिर शनै शनैः जगह-जगह बांट दिया गया। डकैती मेरे दिल्ली पहुँचने से पहले ही हो चुकी थी।

डकैती में पाई गई रकम का अच्छा बड़ा भाग दिल्ली में कैलाशपति और कानपुर में वीरभद्र तिवारी को इस उद्देश्य से दिया गया कि दिल्ली में बम का मसाला बनाने का और कानपुर में बम के खोल ढालने

और खरादने के लिए कारखाने बनाये जावें। अभिप्राय था कि बम इतनी संख्या में बन सकें कि हमारे प्रयत्न इक्के-दुक्के आतंकवादी कार्यों तक ही सीमित न रहें बल्कि गोरिल्ला दालों का रूप ले सकें। प्रत्येक प्रान्त के संगठन कर्ता को प्रचार द्वारा सार्वजनिक सम्पर्क बढ़ाने के लिए एक एक साइक्लोस्टाइल खरीदने का भी निर्देष दिया गया। पंजाब के भाग में दो हजार रुपए विशेषकर इस प्रयोजन से रखे गए थे कि सीमान्तप्रदेश में ब्रिटिश विरोधी बादशाह गुल से सम्पर्क स्थापित कर उस प्रदेश में अपने दृष्टिकोण से राजनैतिक प्रचार किया जाये।

मैं दिल्ली आकर भैया से मिला। लाहौर लौटकर अपने काम में लग जाना चाहता था परन्तु भैया ने पहले दिल्ली में बम का मसाला बनाने का कारखाना जमा देने के लिए कहा। दल में मेरे अतिरिक्त कोई व्यक्ति यह काम न जानता था। मुझे कहा गया—यह काम सभी प्रान्तों की दृष्टि से आवश्यक है। पंजाब में धन्वन्तरी घर छोड़ कर मेरी जगह काम सम्भाल रहा है।

विमलप्रसाद जैन ने 'झन्डेवाला' में एक खूब बड़ा मकान इस प्रयोजन के लिए चुनकर मुझे दिखाया। मकान में खूबी यह थी कि मकान के चारों ओर खुली जगह थी। पड़ोसियों के भीतर झांकने या गन्ध सूंघने की आशंका न थी। हवादार कमरे खुली छतें। मकान ले लिया गया। दल की ओर से आदेश था कि इस बार फैक्टरी ऐसे पर्दे और ढङ्ग से जमाई जाए कि स्थायी रूप से चलती रहे। भीतर बम का मसाला निरापद रूप से बनाने के लिए बाहरी रूप-रंग भी कुछ होना चाहिए था। यह सोचकर कि पिक्रिक एसिड धोने के कारण निरन्तर तेजाबी पानी बहेगा हम लोगों ने फैक्टरी को साबुन के कारखाने का आवरण देना निश्चय किया। ऊपर के सब इन्तज़ाम विमल के सुपुर्द थे। उसने एक अच्छा साइनबोर्ड "हिमालयन टायलेट्स" के नाम से बनवा लिया।

हमारे इन कामों में और पिक्रिड एसिड आदि बनाने में भी रसायन (कैमिस्ट्री) पढ़ा आदमी बहुत सहायक हो सकता था। इस लिए लाहौर से सच्चिदानन्द, हीरानन्द वात्स्यायन को बुला लिया। वात्स्यायन ने पिछले अप्रैल, मई मास में ही कालिज छोड़ दल का काम आरम्भ कर दिया था। कैलाशपति को मैंने आवश्यक सामान की सूचियाँ बना दीं। सामान आ गया। हमने जीने से ऊपर पहुँचते

ही सामने पड़ने वाले कमरे में फैक्टरी का दफ्तर या 'शो रूम' बना लिया। वात्स्यायन ने नुसखों की किताब ले कुछ मुंह पर मलने की क्रीम और कुछ सुगन्धित तेल बना लिया। इन सब पर हमने अपने कारखाने के नाम के लेबल छपवा कर लगा लिये। कला की ओर प्रवृत्ति रखने वाले दो आदमी यानि वात्स्यायन (अज्ञेय) और मैं मिल गये थे; हमारे कारखाने की चीज़ों के नाम भी कलापूर्ण ही रखे गए अर्थात 'बसन्तपराग हेयर आइल' 'बसन्त पराग क्रीम' 'बसन्त पराग सोप'। साबुन हम लोग न बना सके परन्तु शोरूम में तो साबुन होना ही चाहिये था। विमल साबुन के सांचे बनवा लाया और हम ने कुछ टिकियां बाजार से साबुन की ले उन पर बसन्त पराग सोप के सांचे लगा दिये। तेल, साबुन और क्रीम बनाने में तो वात्स्यायन ने ही मुख्यतः सहायता दी परन्तु पिक्रिक ऐसिड का कोई अनुभव न होने से और उसका विषाक्त वाष्प उसके कोमल शरीर और स्वाभाव को सह्य न होने से इस काम का बोझ न सम्भाल सका। मेरा विचार यही था कि वह इस काम को सम्भाल लेगा तो मुझे लाहौर जाने का अवकाश शीघ्र ही मिल जायगा।

पिक्रिक बनाने के काम में मेरे साथ वात्स्यायन, विमलप्रसाद जैन, प्रकाशवती और गिरवरसिंह सहयोग दे रहे थे। कैलाशपति ने भी आरम्भ में यह काम सीख लेने की उमंग प्रकट की परन्तु तेजाबों के दम घोंटने वाले वाष्प से घबरा कर छोड़ बैठा। पिक्रिक एसिड की धोवन का पीला पानी मकान से लगातार बहने से पड़ोसियों को सन्देह न हो इसलिए उसमें कुछ सोडा मिला दूसरा कोई रंग छोड़ दिया जाता था।

पिछले छः मास में कैलाशपति के व्यवहार और वेश-भूषा में काफ़ी परिवर्तन आ गया था। अब उसके बाल और चेहरा सदा चिकनाई से चमकते रहते। बाल खूब ढङ्ग से कढ़े हुए और चेहरे से क्रीम की सुगन्ध आती रहती। खूब इस्त्री किया हुआ कमीज़, बुर्राक महीन धोती और नई चप्पल। चलता तो बंगाली बाबुओं की तरह धोती का छोर हाथ में थामे, मानो सभी लोगों की निगाहें उसी की ओर लगी हों। उसके प्रति मेरी आरम्भिक सहानुभूति गायब होकर कुछ दूसरी तरह की भावना होने लगी थी। कैलाशपति के इस परिवर्तन की ओर मैंने कई बार भैया का ध्यान दिलाया—"ठंडी का जवानी चढ़ रही है।" कैलाशपती का एक उपनाम 'ठंडीप्रसाद' भी था। यह परिवर्तन भैया को भी दीखता था

परन्तु उतना न खटकता जितना मुझे। कैलाशपति के व्यवहार में यह परिवर्तन आ जाने का कारण मेरे अनुमान में यह था कि अब उसके हाथों में दल का हजारों रुपया रहता और सैकड़ों खर्च होता था। दल के लिए पचास या सौ रुपये का तेजाब खरीदते समय आठ आने की पांड क्रीम की शीशी अपने चेहरे के लिए खरीदते उसे झिझक न होती होगी। कैलाशपति की इस आत्मरति और अपने आप को आकर्षक बनाने के प्रयत्नों का वास्तविक कारण हमें उसकी गिरफ्तारी के बाद ही पता लगा।

दिल्ली बम-फैक्टरी में रोहतक के कच्चे मकान की बम-फैक्टरी की सी अवस्था न थी। मकान तो बढ़िया हवादार था ही इसके अतिरिक्त काम करते समय तेजाब के वाष्प का असर शरीर पर न हो, इस विचार से मसाला बनाने वाले लोगों के लिए खास वर्दियां बनवा ली गयी थीं। यह वर्दी खूब मोटी जीन की थी। वर्दी का नमूना शायद मैंने और वात्स्यायन ने सोचा था। उस समय 'बुशशर्ट' का रिवाज न था। यह भारत को दूसरे महायुद्ध में यहां आये अमरीकनों की ही देन है परन्तु हम लोगों ने अपनी सुविधा के विचार से तभी अपनी वर्दी बुशशर्ट और पतलून बनाई थी। विमल, वात्स्यायन, प्रकाशवती और मैं इसी पोशाक में दिन भर काम करते थे। दिल्ली में हम लोगों ने रोहतक से दूने परिमाण पर काम शुरू किया अर्थात् एक साथ दो-दो स्टोव चलाते थे। मकान तो अच्छा था परन्तु वाष्प भी दूनी मात्रा में उठते थे। संध्या तक हम लोगों का हाल बहुत बुरा हो जाता। पिक्रिक एसिड और गनकाटन बनाने के बाद हम लोगों ने डाइनामाइट का मसाला और नाइट्रोग्लेसरीन भी बनाई। यह बहुत ही भयंकर विस्फोटक पदार्थ था। एक दिन तेजाब की बोतल में जिसमें शायद बूंद भर तेजाब रह गया था वात्स्यायन ने लगभग आधा औंस 'नाइट्रोग्लेसरीन' डाल दी। गनीमत यह थी कि कार्क ढीला था। वह जाकर छत से टकराया। वर्ना बोतल फटकर हम लोग जख्मी हो जाते।

कैलाशपति टांगों और ठेलों पर तेजाब लाता रहता और हम लोग मसाला बनाते रहते। प्रायः ही संध्या समय यह हाल हो जाता कि सिर दर्द के कारण हम में से कोई भी खिचड़ी बना लेने योग्य भी न रहता। हाथ पिक्रिक एसिड से इतने रच गये थे कि जिस चीज में लग जाते, कड़वी हो जाती। ऐसी अवस्था में हम लोग कभी 'मानसरोवर'

या दूसरे होटल में जाकर कुछ खाने के लिये मजबूर हो जाते। कभी सिर दरद के कारण ताजी हवा में जाने की इच्छा होती। विमल का एक बढ़िया टांगे वाले से, परिचय था। उसके टांगे पर चार-पांच मील घूम लेते। जैसे मुझे कैलाशपति का नया व्यवहार अखर रहा था, वैसे उसे हम लोगों का यह व्यवहार अखरता। हमारा होटल में खाना खाना और टांगे की सैर उसे असह्य ऐयाशी जान पड़ती। वह भैया से जाकर शिकायत करता कि मैं दल का रुपया बरबाद कर रहा हूँ। फैक्टरी में ऐसा कोई खर्च न था जो मुझ अकेले के लिए ही होता परन्तु फैक्टरी की मुख्य जिम्मेवारी मुझ पर थी और समझा जाता था कि मैं ही अपने मजे के लिए रुपया बरबाद कर रहा हूं।

× × ×

यशपाल को प्राणदण्ड

तीस-चालीस पौंड पिक्रिक ऐसिड, काफ़ी गनकाटन, नाइट्रोग्लेसरीन आदि तैयार हो गये। साधारणतः इतने मसाले से पांच छः सौ बम बन सकते थे। मसाला बनाने वालों का स्वास्थ्य भी काफ़ी खराब हो चुका था। इसलिए कुछ दिन के लिए काम बन्द कर दिया गया। एक दिन दोपहर के समय कैलाशपति ने मुझे सूचना दी—"कल कानपुर में केन्द्रीय समिति की बैठक है। आज रात की गाड़ी से चले जाओ। आगे राह बताने वाला साथी कानपुर स्टेशन पर मिल जायेगा।

"क्यों ? क्या नहीं जाओगे ?"—मैंने सुझाया—"जब जाओ मुझे भी साथ लेकर चलना !"

"मैं भी चलूंगा"—कैलाशपति ने स्वीकार किया परन्तु मुझे जरूरी काम है। यदि पहली गाड़ी से न चल सका तो दूसरी से आ जाऊंगा। तुम पहली गाड़ी से ही जाना। आदमी स्टेशन पर प्रतीक्षा कर रहा होगा ?"

इन दिनों मैं कैलाशपति की हर बात काट देता था। "तुम यदि दूसरी गाड़ी से जाओगे तो उसमें क्या मेरे लिए जगह नहीं होगी ?"—मैंने उसे चिढ़ाने के लिये पूछा।

"तुम्हारे पहुँच जाने से भैया निश्चिंत हो जायंगे। मैं तो वहां से ही आ रहा हूं। तुम से कुछ बातचीत बैठक से पहले करना आवश्यक

होगा। हो सकेगा तो मैं भी उसी गाड़ी से चलूंगा पर मेरी प्रतीक्षा में रह न जाना।"—कैलाशपति ने समझाया।

स्टेशन पर तैनात खुफिया पुलिस की दृष्टि में न पड़ने के लिये मैं प्रायः गाडी चलने के समय ही पहुँचता था। दिल्ली स्टेशन पर मैंने कैलाशपति को खोजने का यत्न न किया। कानपुर पहुँच कर स्वयं भीड़ में घिर कर आंख दौड़ा-दौड़ा कर प्लेटफार्म पर देखा। वह दिखाई न दिया। मेरे लिए स्टेशन पर प्रतीक्षा करने वाले दल के साथी मुझे पहचानते तो अवश्य थे परन्तु मैं जानबूझ कर भीड में घिर गया था। मैंने उन्हें इसलिए न पहचाना कि मेरी आंखें तो कैलाशपति को खोज रही थीं या यह केवल अवसर की बात थी।

केन्द्रीय समिति की बैठक के लिए या भैया को ढूंढने के लिए कहां जाना चाहिये यह मुझे मालूम न था। मुझे कैलाशपति पर खीझ उठ रही थी कि नालायक बाल काढ़ने या धोती में चुन्नट डालने में रह गया होगा, गाड़ी पर न पहुँच सका। भैया का पता लगाने के लिए स्थिर पते अर्थात वीरभद्र तिवारी के ही मकान पर पहुंचा।

वीरभद्र तिवारी तब कानपुर के 'श्रद्धानन्द पार्क' में कांग्रेस दफ्तर के समीप ही रहता था। मैं जीना चढ़ा कर ऊपर पहुँचा तो सामने वही फर्श पर बिछे बिस्तर पर पाल्थी मारे बैठा दिखाई दिया। मुझे देख जैसे विस्मय से तिवारी की आंखें फैल गई उससे मैं समझ गया कि मुझे देख वह चौंक गया है। मेरे यों सहसा वहां आ जाने की उसे आशा न थी। एक फरार को अपने जीने पर सहसा धड़धड़ाते चढ़ते आते देख घबराहट और विस्मय से वीरभद्र की आंखें फैल जाना स्वाभाविक ही था। विशेष कर जब कि साथ के मकान मे क्रान्तिकारी फ़रारों की खोज के लिये तैनात खुफिया पुलिस के इन्सपेक्टर शम्भुनाथ रहते थे।

बिना सूचना दिये वीरभद्र के मकान पर पहुँच जाने की सफ़ाई में मैंने विवशता प्रकट की—"केन्द्रीय समिति की बैठक के लिये मुझे बुलाया गया है। कैलाशपति वायदा करके भी साथ न आया और उसके वायदे के अनुसार मुझे स्टेशन पर भी कोई साथी राह दिखाने वाला न मिला। मुझे कोई दूसरा स्थान यहां मालूम नहीं इसलिये यहां आने के लिये विवश था।"

तिवारी ने अपने बिस्तर पर हाथ रख मुझे समीप बैठने का संकेत किया। मैं बैठ गया। शरत बाबू का एक उपन्यास "अरक्षणीया" मेरे हाथ में था। वीरभद्र ने पुस्तक मेरे हाथ से ले ली और पुस्तक के शीर्षक का 'अ' अक्षर उंगली से छिपा कर मुझे दिखाया। उसका कुछ अभिप्राय न समझ मैं बोला—"रास्ते में पढ़ कर समय काट रहा था।"

"हां, 'अरक्षणीया' नहीं 'रक्षणीया' होना चाहिये !"—बहुत गम्भीरता से वीरभद्र बोला।

अब मुझे उस उपन्यास की कहानी और विषय याद नहीं। उस समय भी मैं पुस्तक पूरी नहीं पढ़ पाया था। समझा कि बात उपन्यास के नाम की सार्थकता के सम्बन्ध में हो रही है। उत्तर दिया—"कह नहीं सकता। पूरी पुस्तक पढ़कर ही कुछ कहा जा सकता है।"

"लेकिन मैं सब कुछ समझ कर ही कह रहा हूँ।"—वीरभद्र ने उसी गम्भीरता से उत्तर दिया।

"हो सकता है"—मैंने मुस्कराकर उत्तर दिया—"मैं भी पूरी पुस्तक पढ़ लूं।"—मेरी कल्पना साहित्यिक प्रसंग में ही उलझी हुई थी।

"यह अच्छा हुआ कि कैलाशपति साथ नहीं आया। यह भी अच्छा हुआ कि तुम्हें रिसीव करने (लेने) के लिये स्टेशन पर भेजा गया साथी तुम्हें देख न सका और तुम यहां आ गए !"

मैंने अनुमान किया तिवारी केन्द्रीय समिति से पहले मुझ से कुछ बात कर लेना चाहते हैं। सम्भव है भैया से इसका कुछ मतभेद हो। मैंने प्रश्न किया—"कहिए, अच्छा ही संयोग हुआ। बात क्या है ?"

"बहुत ही अच्छा संयोग हुआ !"—वीरभद्र ने मेरी आंखों में निगाह डाल संतोष का लम्बा श्वास लिया !

"मैं उनकी बात की प्रतीक्षा उत्सुकता से कर रहा था। वह बोला —"आज दिन भर यहाँ ही रहो। बाहर न जाना। रात की गाड़ी से लौट जाओ !"—वह मुझसे आँखे मिलाये था।

"मैं तो केन्द्रीय समिति की बैठक के लिए आया हूं !"

"केन्द्रीय समिति की बैठक हो चुकी।"

"क्या मतलब ?"—अत्यन्त विस्मय से मैंने पूछा।

वीरभद्र ने प्रश्न किया, मेरे लिए सबसे सुरक्षित स्थान कौन है ?

मैंने उत्तर दिया—"सभी स्थान एक जैसे हैं। जहाँ भी काम करना हो! दिल्ली में मेरा काम समाप्त हो चुका है। पंजाब ही लौटना होगा।" उसने बताया कि पंजाब मेरे लिए सुरक्षित नहीं है। मेरा विस्मय बढ़ा। अनुमान किया शायद वहां कुछ गिरफ्तारियाँ हो गयी हों जिनका पता मुझे समाचारपत्रों से न लग सका हो और वीरभद्र ने अपने विशेष सूत्र से जान लिया हो?—"पंजाब में क्या हुआ"—मैंने उत्सुकता से प्रश्न किया।

वीरभद्र ने समझा कि मैं उसकी बात समझ नहीं पा रहा हूं। मेरे दोनों हाथ अपने दोनों हाथों में ले और निगाह मिलाये वह बोला—"बचन दो जो मैं कह रहा हूं किसी से न कहोगे?"

"पार्टी सीक्रेट (दल का रहस्य) किसी से कहने का प्रश्न ही क्या है? ऐसी आशंका मुझसे तुम्हें हो कैसे सकती है?"—असुविधा अनुभव करते हुए मैंने प्रश्न किया।

"यह बात पार्टी सीक्रेट से भी अधिक सीक्रेट है!"—वीरभद्र ने आग्रह किया—"जो मैं कह रहा हूँ वह पार्टी के भी किसी आदमी को न बताने का वचन दो! आजाद को भी नहीं!"

"मैं पार्टी के हित के विरुद्ध कोई बात नहीं करूँगा।"—मैंने दृढ़ता से कहा—"मैं भी पार्टी के हित की ही बात कह रहा हूं। मेरी तुम्हारी कोई विशेष मित्रता नहीं है। तीन-चार बार ही तुम्हें मिला हूं लेकिन तुम्हरे विषय में जो पहले सुना था और अब सुना है उसके आधार पर ही पार्टी के हित में यह बचन चाहता हूं।"

"यदि पार्टी के हित में यह सीक्रेट रखना आवश्यक है तो मैं वचन देता हूँ कि कभी किसी से यह बात न कहूँगा"—मैंने हाथ मिला कर आश्वासन दिया।

"केन्द्रीय समिति की बैठक हो चुकी है"—वीरभद्र ने बताया और उसमें निर्णय हुआ है कि तुम्हें यहां बुलाकर शूट कर दिया जाये!"

"क्यों, किस बात के लिये?"—मुझ पर मानो नीले आकाश से बिजली गिर पड़ी।

"यह अनुमान है कि तुममें कायरता और विलासिता आ गई है। और तुम काम और खतरे से बचना चाहते हो। तुम किसी भी समय दल के साथ विश्वासघात कर सकते हो!"

घोर अपमान अनुभव हुआ। मैंने पूछा—"इस सन्देह का कारण और प्रमाण ? मेरा ऐसा क्या व्यवहार देखा गया ? कौन यह बात कहता है ?"

"वह बात जाने दो !—" वीरभद्र ने मेरा हाथ थामे समझाया—"तुम्हें गोली मार देना मैं पार्टी के हित में नहीं समझता। तभी तुम्हारे हाथ में "अरक्षणीया" का 'अ' दबा कर मैंने कहा था "रक्षणीया" होना चाहिये। इसीलिये मैंने कहा था कि अच्छा हुआ तुम यहां आ गये और खबरदार हो गये ! किसी को यह पता लगने का अर्थ कि मैंने केन्द्रीय समिति का निर्णय पूर्ण नहीं होने दिया, यह होगा कि मुझे गोली मार दी जाय !"

मैं बहुत विक्षिप्त हो गया। बार बार आग्रह किया कि गोली मुझे मार दी जाने के निर्णय का कारण मुझे बताया जाये ! यदि मेरा अपराध प्रमाणित होता है तो मुझे गोली मारदी जाये, मैं आपत्ति न करूंगा। वीरभद्र ने समझाया यह नहीं हो सकता। किसी भी आदमी को यह पता लग जाने पर कि उसे किसी कारण से गोली मार देने का विचार है, वह व्यक्ति पुलिस को सूचना देकर खुद बच सकता है और दूसरे सब साथियों को फंसा दे सकता है।

"इस का मतलब यह है कि मुझ पर यह संदेह किया जा रहा है कि मैं अब पुलिस के पास जा कर अपनी रक्षा करूंगा और दूसरों को फंसा दूंगा"

"यह मेरा संदेह और अनुमान नहीं है।"—वीरभद्र ने मुस्करा कर उत्तर दिया—"परन्तु यह दूसरों का अनुमान है। मुझे ऐसा संदेह होता तो मैं यह बात तुम से कहता ही क्यों ! मुझे तो पूरा विश्वास है कि तुम ऐसा नहीं कर सकते इसीलिये मैंने तुमसे यह बात कह दी और अपने आप को तुम्हारे हाथ में दो तरफ से खतरे में दे दिया है। जिस रोज भी तुम रहस्य खोल दो मैं सबसे अधिक खतरे में हूं लेकिन मेरा यह विश्वास है कि यह पार्टी की भूल है इसलिये मैं पार्टी के हित के लिये यह खतरा सिर ले रहा हूँ।"

अपने प्रति ऐसे अपमानजनक संदेह की घृणा से मेरा मन जल उठा। बहुत देर अवाक ही बैठा रहा। अपना अपराध जानने के लिये कई बार फिर वीरभद्र से अनुरोध किया और कहा—"मुझे आजाद से मिला दो। मैं उन लोगों से बात करना चाहता हूँ। वह मेरा अपराध

बतायें और प्रमाणित करें। किसी को अपराध बताये या प्रमाणित किये बिना सजा दे देना क्या न्याय है ?"

वीरभद्र ने समझाया—"केन्द्रीय समिति तो निश्चय कर चुका है कि तुम से कोई बात किये बिना तुम्हें गोली मार दी जाये। अब यदि तुम जाकर आज़ाद से इस विषय में बात करोगे तो पहिला प्रश्न यही होगा कि तुम्हें रहस्य पता कैसे लगा ? इसका मतलब होगा मुझे गोली मार दिया जाना।"

चुप रह जाना पड़ा। कुछ देर सोचकर मैंने फिर प्रश्न किया—"ऐसी अवस्था में मैं कर क्या सकता हूं ?"

"कम से कम अपनी और प्रकाशवती की रक्षा कर सकते हो। तुम्हें गोली मार देने के बाद दल उसे भी गोली मार देगा। यदि तुम अपनी रक्षा करते हुए अपने सूत्रों से कोई ऐसा एक्शन कर सको जिस से दल को यह मान लेना पड़े कि तुम विलासिता में फंस कर केवल अपनी जान ही नहीं बचाते फिर रहे हो या तुम से विश्वासघात की आशंका नहीं की जानी चाहिए तो मुझे पूरा विश्वास है कि दल को अपना निर्णय बदल देना पड़ेगा और तुम पर अपराध लगाने वाले झूठे प्रमाणित हो जावेंगे। मुझे भरोसा है कि तुम दोनों में से एक या दोनों ही बातें कर सकते हो इसलिए मैं दल के हित में खतरा सिर ले रहा हूं।" मैंने जानना चाहा कि केन्द्रीय समिति में कौन लोग मौजूद थे ? पंजाब का प्रतिनिधि कौन था। पूर्व निश्चय से तो मैं ही पंजाब का प्रतिनिधि हूँ। वीरभद्र ने और कुछ बताने से इनकार कर दिया।

मैं मन और मस्तिष्क की विकट परेशानी में दिन भर गुम-सुम पड़ा सोचता रहा कि मैं क्या कर सकता हूँ ? अब तक केवल पुलिस का ही भय था। इन दिनों सब स्टेशनों, डाकखानों और सार्वजनिक स्थानों में बहुत बड़े बड़े इश्तहार लाहौर षड़यंत्र और वाइसराय की गाड़ी के नीचे विस्फोट करने वाले क्रान्तिकारी फरारों की गिरफ्तारी के लिए लगे हुए थे। इन लोगों को गिरफ्तार करा देने के लिए बड़े बड़े इनामों की घोषणा थी। इन इश्तहारों में मेरा चित्र प्रायः सब से ऊपर रहता था और इनाम भी आजाद और मेरे लिये ही सबसे अधिक था। इस आशंका के ऊपर दूसरी आशंका, उससे भी बड़ी, आ पड़ी कि मेरे क्रान्तिकारी साथी जहां भी मुझे देखेंगे, गोली मार देंगे। पुलिस मेरे नये स्थान और रंग-ढंग नहीं जानती थी परन्तु क्रान्तिकारी साथी

तो यह सब भी जानते थे। अब तक विदेशी सरकार और उसकी पुलिस के हाथों जिन्हें मैं शत्रु समझता था, प्राणों की आशंका थी। इस के लिये मैं गौरव अनुभव करता था। अब अपने साथियों की दृष्टि में अपमानित होकर प्राणरक्षा के लिये और अपने आप को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए भागते फिरने का प्रश्न था ; यह परिस्थिति मुझे बहुत ही अपमान की जान पड़ी। अब प्रश्न प्राणरक्षा का नहीं बल्कि अपने सम्मान की रक्षा का था।

साथियों की दृष्टि में पुनः सम्मान और विश्वास प्राप्त कर लेने के बहुत सीधे से तरीके की कल्पना की कि मैं अभी उठ कर सीधा डिप्टी कमिश्नर की कचहरी में या पुलिस सुपरिन्टेंडेंट के दफ्तर में चला जाऊं। हो सके तो डिप्टी कमिश्नर या पुलिस सुपरिन्टेंडेंट को या दूसरे किसी बड़े अफ़सर को गोली मार कर लड़ता हुआ मारा जाऊं और चिल्ला-चिल्ला कर यह कह दूं कि मेरे साथियों ने मुझे कायर और विश्वास के अयोग्य समझ लिया है। मैं अपनी जान देकर उनका भ्रम दूर कर रहा हूँ, मैं न कायर हूं न विश्वास के अयोग्य ! इस प्रकार की दुस्साहस-पूर्ण और बावली कल्पनाओं से मैंने जबरदस्ती छीन लिए गये सम्मान को पुनः पा लेने के कई एक्शन सोच डाले। बहुत सम्भव है कि आत्महत्या से मिलता जुलता कोई ऐसा एक्शन मैं कर ही डालता परन्तु प्रकाशवती के प्रति अपनी जिम्मेवारी का ध्यान आया कि इस प्रकार की आत्महत्या उन के प्रति अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार होगा। दूसरा ढङ्ग सोचना शुरू किया। अपना एक स्वतंत्र छोटा सा संगठन बना कर कोई ऐसा एक्शन कर दिखाऊँ जिससे दल को मेरे प्रति अविश्वास का दृष्टिकोण बदल देना पड़े। निश्चय किया कि पंजाब जा कर अच्छी तरह जाने पहचाने साथियों से मिलूँ और उन्हें साथ ले कम से कम तीन 'शेरदिलों' से हथियार छीनने का एक्शन कर दल को वह हथियार सौंप कर उन्हें अपने निर्णय पर दुबारा विचार करने के लिए मजबूर करूँ। उस समय मेरे हाथ में दो ही रिवाल्वर या पिस्तौल थे। सोचा, एक-एक शेरदिल को दो-दो हथियारों से विवश करने के बजाय एक पिस्तौल से काम ले लिया जाये या इस तरह का कोई दूसरा एक्शन लाहौर की स्थिति देख कर कर लूं। मैं केवल लाहौर के साथियों पर ही भरोसा कर सकता था।

रात की गाड़ी से मैं देहली के लिए लौट पड़ा। अब स्टेशन पर मैं

न केवल पुलिस से बल्कि अपने साथियों से भी सतर्क था। दिल्ली में सीधा बम-फैक्टरी में गया क्योंकि प्रकाशवती को वहीं छोड़ गया था। अभी सूर्योदय न हुआ था। यह निश्चय न था कि केन्द्रीय समिति का निर्णय अभी तक फैक्टरी के लोगों को मालूम हुआ है या नहीं। फैक्टरी से प्रकाशवती को ले जाना आवश्यक था। मैं दोनों ही तरह की परिस्थिति के लिये तैयार था। यदि साथी मेरा विरोध किये बिना प्रकाशवती को ले जाने दें या मेरा अपराध बता कर बात करना चाहें तो बिना झगड़े झंझट के बात कर उसे संकट से बाहिर ले जाऊं और यदि कोई हथियार चला दे तो हथियार का इस्तेमाल करना ही होगा। कैलाशपति का उस समय फैक्टरी में होना निश्चित था।

किवाड़ खटखटाने पर दरवाजा गिरिवरसिंह ने खोला। उसने जैसे मुस्करा कर बात की उस से अनुमान हुआ कि फैक्टरी में आशंकित होने की आवश्यकता नहीं। विमल और वात्स्यायन फैक्टरी में ही थे। मुझे याद है कि वात्स्यायन मुझे देख मौन रह गया था। उस मौन का विशेष अर्थ मैं न समझा। उसका कभ-कभी मौन रहना साधारण बात थी। भीतर जा प्रकाशवती को तुरंत अपना कपड़ा-लत्ता और तैयार पिक्रिक एसिड आदि संभाल कर साथ चलने के लिये कहा। उन्हों ने कोई विस्मय प्रकट न किया क्योंकि उस समय के जीवन में इस तरह स्थान बदल लेना साधारण सी बात थी। मैंने आशंका या घबराहट पैदा करने वाली कोई बात या व्यवहार भी न किया। विमल ने जरूर पूछा—"क्यों? कहां जा रहे हो, क्या बात है?"—उसे उत्तर दिया—"जान पड़ता है फैक्टरी पर पुलिस को संदेह हो गया है। तुम लोगों ने कोई बेपरवाही की होगी। मैं कमला को तुरंत दूसरी जगह पहुँचा रहा हूं। तुम लोग भी प्रबन्ध करो।"

इसी समय कैलाशपति आ पहुँचा। उसके चेहरे पर विस्मय स्पष्ट था। उसे मैंने फटकार कर प्रश्न किया—"यह है तुम्हारे कानपुर पहुँचने के वायदे का हाल?"—वह मुझे जीता-जागता सामने देख घबराहट में कुछ उत्तर न दे सका। मैंने उसके उत्तर की प्रतीक्षा भी न की। बाद में मुझे विमल से मालूम हुआ कि उसने तुरंत कैलाशपति से फैक्टरी पर हो गये सन्देह की बात कह कर आशंका प्रकट की। कैलाशपति ने उसे उत्तर दिया—"वह बात बना रहा है। केन्द्रीय समिति ने इसे शूट कर देने का निश्चय किया है। इसीलिये उसे

कानपुर बुलाया गया था। किसी तरह बच कर दिल्ली भाग आया है। अब कमला को लेकर भागा जा रहा है।"

विमल ने कैलाशपति से कहा—"अगर दल का ऐसा निर्णय है तो तुम यहां के इन्चार्ज हो, मुझे आर्डर और रिवाल्वर दो। मैं इसे अभी शूट कर देता हूँ।

कैलाशपति ने साहस की कमी से या अवसर ठीक न समझ विमल को मेरा पीछा कर यह पता लेने का ही आर्डर दिया कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। विमल को अपना पीछा करते हुए मैं न देख पाया। प्रकाशवती को मैंने 'जामा मस्जिद' के समीप अपने एक पुराने सहपाठी और केवल मुझसे ही सम्बन्धित वेदराज भल्ला के मकान पर पहुंचा दिया। इस समय भी मैंने प्रकाशवती को फैक्टरी से इस प्रकार लाकर नयी जगह रख देने का कारण या अपने विरुद्ध दल के निर्णय की बात न कही। मेरा अभिप्राय उन्हें घबराहट और परेशानी से बचाये रख कर परिस्थिति का उपाय करना था। उस समय जैसे एक्शन की योजना मैंने सोची थी वह ऐसी न थी कि वे उसमें भाग ले सकतीं। मैं उसी दिन संध्या लाहौर के लिए चल दिया।

बहुत सा पिक्रिक ऐसिड, नाइट्रोग्लिसरीन आदि चीजें सुरक्षित रूप से लाहौर ले जाने के लिए मैंने वात्स्यायन को भी साथ चलने के लिए कहा। उस समय मुझे मालूम न था कि मुझे शूट कर देने का निर्णय उसे मेरे कानपुर से लौटने के पहले ही कैलाशपति द्वारा मालूम हो चुका था। यह मालूम हो जाने पर भी वात्स्यायन ने कैलाशपति के बजाय मेरा ही साथ दिया। वात्स्यायन को सन्देह से परे रखने के लिए साहब का वेश पहना सेकण्ड क्लास का टिकट ले दिया। उसके सूटकेस में सब सामान रख दिया और स्वयं उसका चपरासी बन साथ ही सर्वेंट्स की गाड़ी में बैठा। भयंकर विस्फोटक पदार्थों से भरे सूटकेस को स्टेशन पर मैंने स्वयं ही उठाया और सेकण्ड क्लास की गाड़ी में झटक-धक्क से सुरक्षित जगह पर रख दिया। लाहौर पहुँच वात्स्यायन ने सब सामान मुझे सौंप दिया। इसी सामान के भरोसे मैं कुछ न कुछ कर सकने की आशा लिए था।

लाहौर पहुँच मैंने साथियों से मिल तुरन्त ही किसी एक्शन की योजना को पूर्ण कर सकने की चेष्टा आरम्भ की। लाहौर में साथी दो उपदलों में बँटे हुए थे। यह बँटवारा किसी राजनैतिक सिद्धान्त, कार्य-

क्रम अथवा संगठन के रूप में नहीं था केवल साथियों की शिक्षा, आर्थिक स्थिति और सामाजिक परिस्थितियों से स्वभाविक रूप में था। उदाहरणतः इन्द्रपाल और भागराम द्वारा मुझसे परिचित गुलाबसिंह जहांगीरीलाल आदि साथी निम्न-मध्यम श्रेणी के स्वयं अपनी जीविका कमाने वाले और साधारण शिक्षा (केवल हिन्दी-उर्दू) पाये हुए लोग थे। दूसरी ओर वात्स्यायन, देवराज सेठी, केवलकृष्ण, सुखदेवराज, दुर्गादास, रणवीर और धन्वन्तरी आदि मध्यम श्रेणी के युनिवर्सिटी में ऊंची कक्षाओं से आये हुए विद्यार्थी थे जो प्रायः अपने निर्वाह के लिए अपने परिवारों पर निर्भर करते थे। इस प्रकार के अधिकांश साथियों का परिचय दल से धन्वन्तरी और सुखदेवराज द्वारा हुआ था। मेरे लाहौर से बाहर रहते समय यह लोग संगठनात्मक रूप से भी धन्वन्तरी और सुखदेवराज को ही दल का स्थानीय नेता या उत्तरदायी व्यक्ति समझ रहे थे।

कानपुर में मुझे यह आभास मिल चुका था कि मेरे विरुद्ध निर्णय करने वाली केन्द्रीय समिति में पंजाब के प्रतिनिधि के रूप में धन्वन्तरी या सुखदेवराज रहे होंगे। लाहौर छोड़ने से पूर्व, बहावलपुर रोड के बंगले में विस्फोट होने के समय तक लाहौर में दल के काम के लिए मैं मुख्यतः धन्वन्तरी पर निर्भर करता था। नौजवान सभा के संगठनकर्ता के रूप में काम करते रहने के कारण उसके परिचय और प्रभाव का क्षेत्र विस्तृत था और संगठन की योग्यता भी। सुखदेवराज का तो मैं किसी प्रकार विश्वास करने के लिये तैयार न था परन्तु धन्वन्तरी के पुराने अनुभव के आधार पर यह अनुमान और धारणा थी कि यदि मैं दल का प्रभाव बढ़ाने वाला कोई एक्शन करने की चेष्टा करूँगा तो वह नैतिक रूप से मेरी सहायता करने के लिए बाध्य हो जायगा।

विद्यार्थियों के क्षेत्र में वात्स्यायन का प्रभाव और प्रतिष्ठा थी वह उस समय भी अंग्रेजी और हिन्दी में कविता कहानी आदि लिखा करता था और बौद्धिक व्यक्ति या कलाकार माना जाता था। कोई भी काम कर सकने के लिये रुपये और साथियों की आवश्यकता थी ही। गडोदिया स्टोर की डकैती के बाद दल आथिक कठिनाई मे न था परन्तु स्वतंत्र रूप से काम कर सकने के लिये मैं दल से धन न पा सकता था। आवश्यक धन अच्छी पारिवारिक स्थिति के साथियों से ही मिल सकता था। बौद्धिक और सैद्धान्तिक रूप से भी यही लोग अधिक

सचेत थे या स्वयं इसी क्षेत्र का जीव होने के कारण मेरा आकर्षण उसी ओर हुआ। मैंने वात्स्यायन की मार्फत इस क्षेत्र के साथियों से सम्पर्क और सहायता का यत्न किया। वात्स्यायन मेरी योजना सुन कर चुप ही रह गया। उसने विरोध किया न सहायता का उत्साह प्रकट किया। जिन दूसरे साथियों से मैं मिला उन का भी प्रायः यही व्यवहार रहा। इस पर भी मैं यह न समझा कि मुझे शूट कर दिये जाने का निर्णय यहां पहुँच चुका है। यही अनुमान किया कि मेरी अनुपस्थिति में पंजाब का नेता और उत्तरदायी व्यक्ति धन्वन्तरी और सुखदेवराज को मान कर यह लोग मेरी योजनानुसार चलने के लिये झिझक रहे हैं। मैंने धन्वन्तरी को साथियों के सामने बुलवाकर बात करने का यत्न किया परन्तु उसका कुछ परिणाम न हुआ।

विद्यार्थियों के क्षेत्र से निराश होकर मैंने दूसरे क्षेत्र अर्थात इन्द्रपाल, भागराम, जहांगीरीलाल आदि के क्षेत्र में यत्न आरम्भ किया। दिल्ली से लाया हुआ पिक्रिक एसिड इन्द्रपाल को सौंप यह बता दिया जा चुका था कि पंजाब का नेता अब मैं नहीं बल्कि सुखदेवराज और धन्वन्तरी हैं। मैंने इन्द्रपाल को शेरदिलों पर आक्रमण कर उन के हथियार छीन लेने और दल का प्रभाव बढ़ाने की योजना समझाकर उसे धन्वन्तरी को इस काम में सहायता देने के लिये प्रेरित करने के लिये कहा। अपने विरुद्ध निर्णय की बात उसे न बता कर समझाया कि प्रायः तीन महीने मेरे लाहौर से बाहर रहने के कारण मेरे सम्बन्ध यहां टूट चुके हैं। धन्वन्तरी और सुखदेवराज पीछे काम करते रहे हैं इसलिये उन का सहयोग आवश्यक है। अपने विरुद्ध निर्णय की बात न बताने का कारण था कि मैं अपने साथियों की दृष्टि में अपना सम्मान खो देना और दल में फूट की बात बता कर उनमें दल के प्रति अश्रद्धा पैदा न कर देना चाहता था।

इन्द्रपाल द्वारा भेजे गये सन्देशों के उत्तर में मुझे सुनसान स्थान में मिलने का उत्तर मिलता। मैं आग्रह करता कि बातचीत दो-चार ऐसे साथियों के सामने हो जिन्हें मैं भी जानता हूं। मैं आग्रह करता कि वे लोग या तो इन्द्रपाल के मकान पर आ जायें या किसी और साथी के मकान पर, जहां हम लोग पहले मिलते रहते थे। ऐसा अनुरोध न माना गया। यह समझ लेना कुछ भी कठिन न था कि मुझे एकान्त में अकेले बुलाने का प्रयोजन दूर से छिप कर गोली मार देना ही था।

मुझे एकान्त स्थान मे अकेले जाने से इनकार करते देख इन्द्रपाल को विस्मय हुआ। उसके कारण पूछने पर मैंने बता दिया कि सुखदेवराज और धन्वन्तरी मुझे चुपचाप शूट कर देना चाहते हैं। मुझे मेरा अपराध भी नही बताया गया और न सफाई देने का कोई अवसर दिया गया है। इन्द्रपाल विस्मय और क्रोध से स्तब्ध रह गया। उसने आज़ाद के सामने मामला रखने का परामर्श दिया। मैंने बताया कि यह लोग मुझे आज़ाद का पता नहीं बता रहे है। उसे मेरे विरुद्ध जाने क्या-क्या कहा गया है। अपने साथियों से कह रहे है कि आज़ाद ने और केन्द्रीय समिति ने मुझे शूट करने का फैसला किया है। मैं चाहता हूँ मुझे अपराध बताया जाये और केन्द्रीय समिति और आज़ाद के सामने मेरी बात सुनी जाये। यदि बहुमत को मेरी बात पर विश्वास न हो तो बेशक गोली मार दी जाये लेकिन यह लोग अपना झूठ प्रकट होने के भय से ऐसा अवसर नही देना चाहते। इन्द्रपाल का क्रोध और बढ़ा। वह पिस्तौल लेकर मेरे साथ चलने के लिए तैयार हो गया और भागराम को भी साथ ले चलने लिए बुला लाया।

धन्वन्तरी ने इन्द्रपाल की मार्फत मुझे पौ फटने के समय डी० ए० वी० कालिज बोर्डिङ्ग के पीछे एक छोटे से सूने पड़े बोर्डिङ्ग-हाउस मे बुलाया था। पंजाब मे गरमी की छुट्टियां यू० पी० की अपेक्षा पिछड़ कर होती है और स्कूल कालिज विलम्ब से ही खुलते भी है। इस भाग में प्राय: ऐसे विद्यार्थी रहते थे जिन्हें कालिजों के बोर्डिङ्ग मे स्थान न मिलता, जो किफ़ायत से रहना चाहते या निजी तौर पर परीक्षाओं की तैयारी कर रहे थे। यह चारों ओर कमरों से घिरा एक बड़ा पर्देदार मकान था जिसे बोर्डिङ्ग बना लिया गया था। छुट्टियों के कारण बोर्डिङ्ग और पास पड़ोस भी बिलकुल सूना पडा था। हम लोग जब बोर्डिङ्ग में पहुँचे, धन्वन्तरी आंगन के बीचोंबीच खाट पर बैठा था। चारों ओर के कमरे सूने थे परन्तु दरवाजों की आड़ मे दो-तीन व्यक्तियों के होने की पूरी शंका थी। मुझे दो साथियों के साथ आता देख धन्वन्तरी की साधारणत: बनी रहने वाली मुस्कराहट लोप होकर चेहरा क्रोध से गम्भीर हो गया। उसके क्रोध का कारण समझ कर भी मैंने मुस्कराहट से आत्मीयता के स्वर में पूछा—"कहो भई, तुमसे मिलन के लिए कब से परेशान हूँ।"

"मैंने तुम्हें अकेले बुलाया था ?"—सख्त अफसराना ढङ्ग से वह बोला—"यह लोग क्यों आये है ?"

"हम लोग शहर से एक साथ आ रहे थे। ऐसी क्या बात है ? आओ, हम दोनों उधर बात कर लें !" —धन्वन्तरी इसके लिये तैयार न हुआ। जो वह चाहता था उसके लिये मैं कैसे तैयार हो जाता ? अब तक मुझे भरोसा था कि सुखदेवराज को छोड़ कर जिस किसी से भी मुझे बात करने का अवसर मिलेगा, मैं अपनी बात समझाकर आज़ाद तक अपना संदेश पहुँचा सकूंगा। सबसे अधिक आशा धन्वन्तरी से ही थी परन्तु वह बात के लिये तैयार ही न हुआ। इस घटना से मैं निराश हो गया। अब तक मैंने दिल्ली और लाहौर में इन्द्रपाल के अतिरिक्त अपने विरुद्ध निर्णय की बात किसी को न बताई थी। दल के साथियों का विचार था कि कानपुर स्टेशन पर मुझे लेने भेजे गये साथियों की बेपरवाही के कारण मैं झुंझलाकर दिल्ली लौट गया और अनुशासन की चिन्ता न कर अवारागर्दी कर रहा हूँ। धन्वन्तरी के अकेला बुलाने पर भी मैं दो आदमी साथ ले गया, इसे धन्वन्तरी ने मेरी ओर से अनुशासन की कमी समझा या भय को भांप जाना। इस विषय में उससे कभी बात नहीं हुई। उस समय दल से पा लिए निर्णय के अनुसार मुझे गोली न मार सकने की विफलता उसका अपमान बनी हुई थी और अपने विचार में, वह मेरे दल को हानि पहुँचा सकने का अवसर पा सकने से पहले ही जल्दी गोली मार देना ही अपना कर्तव्य समझे हुआ था।

धन्वन्तरी अथवा दल से सहयोग और सहायता मिलना सम्भव न देखकर मैं काफ़ी रिवाल्वर-पिस्तौल और बम के खोलों के बिना ही इन्द्रपाल, भागराम के साथ कोई बड़ा एक्शन कर डालने की योजना बनाने लगा। दिल्ली से साथ लाया हुआ पिक्रिक एसिड और नाइट्रोग्लेसरीन आदि विस्फोटक पदार्थ मेरे पास काफ़ी मात्रा में थे। हमने मालरोड के समीप पुलिस लाइन की बारकें उड़ा देने की तदबीर सोचनी आरम्भ की। इन्द्रपाल और भागराम को मैंने चिकें या सिरकी बना कर बेचने वाले लोगों के वेश में वहां घूम-घूम कर भेद लेने की सलाह दी। साधनों के अभाव में हम लोगों ने यहां ऐसे बम लगा देने की बात सोची जो खास स्थानों पर रख दिए जाने के बाद अनिश्चित समय पर आकस्मिक रूप से फट जाते। हमारी इस उतावली योजना की मूल प्रेरणा शीघ्र ही कुछ करके धन्वन्तरी और सुखदेवराज को अपनी अपेक्षा अयोग्य और अकर्मण्य प्रमाणित कर देना था।

अतिशीचक्कर

बहावलपुर रोड पर दुर्घटना के बाद लाहौर छोड़ते समय मैं भैया से सलाह किये बिना इन्द्रपाल से कह गया था कि तुमने दल में काफ़ी दिन जिम्मेवारी से काम किया है। इस समय मेरा यहां रहना सम्भव नहीं। मेरी अनुपस्थिति में तुम पंजाब के संगठनकर्ता की स्थिति से काम करते रहना। इन्द्रपाल ने अपनी समझ के अनुसार उत्साह से अपने क्षेत्र में काम आरम्भ कर दिया था और अपने छोटे संगठन का नाम "आतिशीचक्कर" रख लिया था। उसके प्रयत्न स्वरूप १६ जुलाई १६३० को पंजाब में छः स्थानों लाहौर, अमृतसर, रावलपिण्डी, शेखुपुरा, गुजरांवाला, लायलपुर में बम विस्फोट किया गया था। इन्द्रपाल ने यह सब काम स्वतंत्र स्थिति में किया था उसके साथ देने वाले जहांगीरीलाल, कुन्दनलाल, भागाराम, जयप्रकाश, दयानतराय, हंसराज आदि थे। शिक्षित समझे जाने वाले लोगों का उस से कोई सम्पर्क न था। धन्वन्तरी और सुखदेवराज के अपने आप को दल का संगठनकर्त्ता बताने पर उसे अच्छा न लग रहा था। वह मेरे अतिरिक्त किसी दूसरे का नेतृत्व और अधिकार मानने के लिए तैयार न था।

इन्द्रपाल के पास पिक्रिक एसिड या बमों के खोल नहीं थे। धन्वन्तरी से कोई सहायता न पा कर उसने गुलाबसिंह और हंसराज की सहायता से आतिशबाजी में काम आने वाले मसालों से सिगरेट के डिब्बों में यह बम बना लिये थे। बमों को स्वयं निश्चित समय पर चला देने की योजना बना लेने में हंसराज ने उसे सहायता दी थी। योजना बहुत साधारण थी। मोमबत्ती की जड़ में आग पकड़ने वाले मसाले में सनी रस्सी चिपका कर बम से लगा दी गई थी। मोमबत्ती को जला कर छोड़ दिया गया। पांच छः घन्टे में मोमबत्ती समाप्त होने पर मसाला सनी रस्सी ने आग पकड़ ली और बम फट गया। इन बमों के धड़ाके से जब पुलिस ने जाकर ऐसे घटनास्थल पर तालाशी ली तो वहां रक्खी चीज़ों में छिपे हुए बम हिलने पर फट गये। इस घटना से एक जगह सबइंस्पेक्टर और दो जगह सिपाही मारे गये।

इन्द्रपाल ने यह विस्फोट केवल जनता में पैदा हो जाने वाली घबराहट का तमाशा देखने के लिये ही नहीं किया था। वह सरकार पर आक्रमण और सर्वसाधारण से सम्पर्क स्थापित करने के महत्व

को भी समझना था। अपने बहुत परिमित क्षेत्र में केवल अपने साथियों के परिवारों का पेट काटकर जमा किये रुपये से इन लोगों ने उर्दू में छपाई करने लिये एक हैन्ड प्रेस भी खरीद लिया था। विस्फोट सुबह सुबह हुआ था और उससे पहली रात इन लोगों ने अपना घोषणा पत्र भी बांट दिया था। दूसरे लाहौर षडयंत्र के मुकद्दमे में यह घोषणा पत्र पुलिस ने ब्रिटिश सम्राट के विरुद्ध युद्ध घोषणा के प्रमाण स्वरूप पेश किया था। इसका नम्बर E. X. P. I A. E. था। घोषणापत्र उर्दू में था उसकी हिन्दी प्रतिलिपि इस प्रकार है :—

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन

"भारत माता की इज्जत के रखने वाले ! आजादी के अलमबरदार पंजाबियो !

ग़ैरमुल्की हुकूमत का बोझ और गुलामी के कलंक का टीका अब ज्यादा देर तक बरदाश्त नामुमकिन है। मादरे हिन्द के पुरतबस्सम१ चेहरे पर लगे हुए इस कलंक को तुमने अपने बेशकीमती खून को पानी की तरह बहा कर धो डालने का पाक और मुसम्मिम२ इरादा कर लिया है। तुम जिन्दगी की बाजी लगा कर मैदाने जंग में उतर आये हो। जो तुम्हारे इस पाक इरादे मे दखलअन्दाज होता है, वो गद्दार और काफ़िर है। कुदरत की हुकूमत में हर एक जानदार खुदमुख्त्यार है। दुनिया के मैदानेजंग में वही लोग जिन्दा रह सकते हैं जो अपनी जिन्दगी की बाजी लगाकर जिन्दा रहने के हकूक हासिल कर लेंगे।

जीना है तो मरना सीखो !

दुश्मन का मुकाबिला करने के लिए हमको जंग ही करनी पड़ेगी। बेकसूर और नन्ही दुनिया का खूँख्वार, बहथियार दुश्मन के हाथों खून गिरवाना और सैकड़ों जिन्दगियों को तबाह कर देना जंग नहीं कहलाता। यह खुदकुशी है ! पबलिक शान्तमयी सत्याग्रह के गुमराह-कुन३ उसूलों का काफ़ी तजरुबा कर चुकी है। हजारों हमवतनों के जेल में सड़ने, करोड़ों रुपये के फिजूल खर्च और सैकड़ों जिन्दगियों के भेंट चढ़ा चुकने के बाद शांतमयी सत्याग्रह की लड़ाई में हमको सिर्फ नाकामयाबी ही हासिल हुई है। हमारी पिछली पन्द्रह बरस की तारीख इस बात की गवाह है। बेकसूर और मजलूम४ लोगों का

१. सुन्दर, २ पवित्र और दृढ़, ३ भटकाने वाले, ४ पीड़ित।

खून बहाने से, बेइनसाफ़ी और जुल्म का खात्मा नहीं हो सकता। खुद अपना ही खून बहा कर और अपनी ताकत घटा कर हम को आज़ादी हासिल न होगी। आज़ादी हासिल करने के लिए गुलामी की जन्जीरों को तोड़ना निहायत जरूरी है जुल्म और नाइनसाफ़ी पर मबनी१ ग़ैरहुकूमत को उखाड़ फेंकना निहायत जरूरी है।

जंग में फ़तह हासिल करने के लिए हमको एक ताकतवर फौज की सूरत में मुनज्जमर२ हो कर दुश्मन का मुकाबिला करना होगा। बग़ैर निज़ाम के इस बिखरी हुई हालत में दुश्मन का मुकाबिला करने से कोई फायदा नहीं है। इस में हमारा अपना ही नुकसान है। पेशावर में करीब ढ़ाई सौ हिन्दुस्तानियों का खून गिरा कर हमें क्या मिला? हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी ने चटगांव की मिसाल से आप को रास्ता दिखा दिया है। मुनासिब तौर पर मुसल्ला३ और मुनज्ज़म होकर दुश्मन का मुकाबिला कितनी अच्छी तरह किया जा सकता है, यह नुमायाँ४ हो चुका है।

ग़ैरमुल्की हुकूमत के नुमाइन्दा वाइसराय हिन्दुस्तान की हमदर्दी का ढोंग रच कर अब अपनी असली सूरत दिखा रहा है। आपकी जवांमर्दी और हिम्मत के इम्तहान का वक्त अब आ गया है। दुश्मन को खबर देकर उस पर वार करना जंग के उसूलों के खिलाफ़ है। जगह-जगह पर फौजी शक्ल में मुनज्ज़म हो कर तैयार होना होगा। ताकत और हथियारों को इकट्ठा करने और हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन (H. S. R. A.) आपको फतह के रास्ते पर ले जायगी।

यह जंग फैसलाकुन५ होगी! आज़ादी या मौत!"

इन्द्रपाल और उसके साथियों द्वारा प्रकाशित घोषणा में विदेशी सरकार के विरुद्ध क्रान्ति के लिये दृढ़ निश्चय और बलिदान की भावना की कमी नहीं है परन्तु 'फिलासफ़ी आफ़ दी बम' की तुलना में यह निस्सन्देह भिन्न स्तर की शिक्षा और राजनैतिक परिस्थिति का ज्ञान रखने वाले लोगों की लिखी हुई चीज है। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि धन्वन्तरी और सुखदेवराज इन लोगों का मार्ग निर्देशन नहीं कर रहे थे। हिन्दुस्तान साशलिस्ट रिपब्लिकन ऐसोसियेशन के नाम पर

---

१ नींव पर बनी, २ संगठित, ३ सशस्त्र, ४ स्पष्ट, ५ निश्चात्मक।

बलिदान हो जाने के लिए तैयार लोगों में परस्पर सहयोग की कमी के दोनों ही कारण थे। दल की ओर से नियत संगठनकर्ता का इन लोगों की उपेक्षा करना और इन लोगों का उस पर अविश्वास ! इस कारण अपने इन साथियों का बलिदान मुझे व्यर्थ ही जंचा। जिसका कारण संगठन का शैथिल्य था।

इन्द्रपाल को इस घटना से स्वयं भी संतोष न हुआ था। वह अब कोई अच्छा एक्शन करने की फिक्र कर रहा था। हंसराज ने इन बमों को स्वयं चलाने का तरीका तो बता दिया परन्तु स्वयं अलग हो गया। उसने फिर विश्वास दिलाया कि कुछ दिन में 'मूर्छा गैस' बना देगा। इन्द्रपाल ने अपने गरीब साथियों से माँग-ताग कर हंसराज को इस काम के खर्च के लिये लगभग दो सौ रुपया भी दिया था। हंसराज गैस बना देने में हीले-बहाने करता जा रहा था। इन्द्रपाल बहुत चिढ़ गया। यह सोच कर कि हंसराज आशंका में फँसने के भय से जान बूझ कर काम नहीं कर रहा, उसने हंसराज को मजबूर कर देना चाहा। उपाय यह किया कि एक सूटकेस में कुछ विस्फोटक पदार्थ तेजाब के साथ इस तरह रख दिये कि सूटकेस को पट रख देने पर कुछ देर बाद विस्फोट हो जाय। इस सूटकेस में उसने कुछ कागज भी रख दिये जिनमें कुछ काल्पनिक पतों पर लिखी हुई चिट्ठियों के साथ हंस-राज का वास्तविक पता भी था। वह सूटकेस को साथ लिए बाजार गया। एक दुकान पर सूटकेस रख दही की लस्सी पीने लगा और सूटकेस को छोड़ आगे चल दिया। कुछ देर बाद सूटकेस मामूली धड़ाके से बिना किसी को चोट पहुँचाये फट गया। पुलिस तहकीकात करने पहुँच गई।

इन्द्रपाल ने हंसराज को संदेश भेज दिया कि तुम पर पुलिस को संदेह हो गया है। तुरन्त घर छोड़ कर हमारे पास आ जाओ। तुम्हारी रक्षा का प्रबन्ध कर देंगे। तीसरे-चौथे दिन वास्तव में ही लायलपुर में हंसराज के मकान की तलाशी हो गई। हंसराज घर छोड़ चुका था इसलिये गिरफ्तार नहीं हुआ। अब इन्द्रपाल को आशा थी कि हंसराज 'मरता क्या न करता' की अवस्था में उनकी सहायता करेगा ही परन्तु हंसराज अब भी हीले-बहाने कर अपनी रक्षा के प्रबन्ध की ही मांग कर रहा था। वह कभी सुखदेवराज के दल में हो जाने की बात करता कभी इन्द्रपाल के दल में। इसके अतिरिक्त हंसराज को यह भी ख्याल था

कि वह इन्द्रपाल और इस उपदल के दूसरे साथियों की अपेक्षा अधिक शिक्षित है और दल के काम को चलाने के साधन मूर्छा गैस, वायरलेस आदि उसी के हाथ में हैं इसलिये इन लोगों को उसका नेतृत्व मानना चाहिये। वह बहुत ग़रीबी में निर्वाह करने की कठिनाई की शिकायत करता रहता। इन्द्रपाल और उसके साथी अपनी सब जमा पूंजी आतिशीचक्कर या बम चलाने, प्रेस खरीदने और हंसराज से मूर्छा गैस बनवाने में खर्च कर चुके थे। अवसरवश इन लोगों की 'शेरे खालसा' अखबार से नौकरियां भी छूट गई थीं। यह लोग भैया, मेरे, धन्वन्तरी या सुखदेवराज की तरह अपनी बातचीत से परिचितों को प्रभावित कर रुपया भी इक्ट्ठा न कर सकते थे इसलिये इस समय बहुत ही कठिन अवस्था में थे। हंसराज वायरलेस का आविष्कारक समझे जाने के कारण थोड़ा बहुत पैसा इक्ट्ठा कर लाता था जो वह दल के दूसरे साथियों को न देता। हंसराज पैसा मांगते समय लोगों पर प्रभाव डालने के लिये प्रायः अपना परिचय वाइसराय की ट्रेन के नीचे वायरलेस से बम विस्फोट करने वाले क्रान्तिकारी के रूप में देता था। इस समय तक किसी मुकद्दमे में यह रहस्य प्रकट नहीं हुआ था इसलिये लोग उस की बात पर इतबार भी कर लेते थे। हंसराज की इस करतूत का एक प्रमाण अभी कुछ ही दिन पूर्व पंजाब के बटवारे के बाद लखनऊ आये एक सज्जन से भी मिला। इन्द्रपाल के नये-नये उत्साही साथियों की असावधानी के कारण स्वयं उस पर भी पुलिस को संदेह हो गया था। संकट में होने पर भी वह अन्याय के विरुद्ध मेरी सहायता में लड़ जाने पर तैयार था।

× × ×

कुछ दिन बाद मुझे दुर्गादास खन्ना का संदेश मिलने के लिए मिला। लाहौर के साथियों में वही सबसे चतुर और गहरा था। शायद मुझे किसी तरह घेर लेने की सुविधा न देख उस की सहायता ली गई थी। सतर्कता के विचार से खन्ना को पहले समय बताये बिना मैं उसके घर पर ही मिलने चला गया। इससे पूर्व खन्ना से मेरा बहुत संक्षिप्त सा परिचय था। मेरे लाहौर से जाने के पहले एक बार वह रात के समय 'गोल बाग' में मुझे मिला था। उस समय उसने संक्षेप में प्रकाशवती के सम्बन्ध में पूछा था। खन्ना की इस जिज्ञासा का कारण मैंने उसका लाहौर की ऊंची खत्री बिरादरी से सम्बन्ध होना समझा था। उस समय

भी उसने साफ़ बात की थी—"प्रकाश दल का कुछ काम कर सकेगी या तुम उसे वेसे चाहते हो ?"—मैंने भी साफ़ ही उत्तर दिया था—"पहले बिलकुल नहीं जानता था, केवल सुना था लेकिन अब खूब जान गया हूं। Now I respect and love her. (अब उसका आदर और उस से प्रेम भी करता हूं) वह सभी कुछ कर सकेगी। उसमें साहस और बुद्धि दोनों हैं।" दुर्गादास ने नसीहत दी थी कि प्रकाशवती के परिवार के लोग इस घटना से बहुत अपमान अनुभव कर बदला लेने की फ़िक्र में हैं। वे जाने क्या कर डालें! सावधान रहना ! उसे लाहौर से बाहर ही भेज दो !

इस बार मिलने पर भी खन्ना ने प्रकाशवती के सम्बन्ध में याद दिला कर पूछा—"तुमने कहा था तुम उसका आदर करते हो। मैंने उस के सम्बन्ध में कुछ बदनामी की बात सुनी है।" मुझे बुरा लगा। मैंने कहा—"मैं उसके आदर के लिये जिम्मेवार हूँ। जिसे कुछ कहना हो, मेरे सामने कहे !"—बातचीत अंग्रेजी में हो रही थी। उसने पूछा—"क्या तुमने विवाह कर लिया है ?"—मैंने हामी भरी।

खन्ना ने सन्देश दिया, धन्वन्तरी मुझ से मिलना चाहता है। "बहुत अच्छी बात है। मैं स्वयं उस से मिलना चाहता हूं। तुम मुझे ले चलो !"—मैंने उत्तर दिया।

"एक बात कहना चाहता हूं यदि किसी से न कहो !"—दुर्गादास सोच कर बोला—"बचन दो, किसी से न कहोगे !"—मेरे स्वीकार कर लेने पर उसने कहा—"घबराना नहीं"

"मैं घबराता नहीं हूं।"

"केन्द्रीय समिति ने तुम्हें गोली मार देने का निर्णय किया है। तुम्हें इसी बात के लिये बुलाया जा रहा है।"

"यह मैं जानता हूँ। यह खबर मुझे मिलने की जिम्मेवारी तुम पर नहीं है, निश्चिन्त रहो। मुझे लाहौर आने से पहले और लाहौर में भी यह खबर मिल चुकी है।"—मैंने खबर का असली स्रोत छिपाने के लिये झूठ बोला—"मैं इसके लिये सतर्क हूँ। इसीलिये मैंने तुम्हें साथ 'ले चलने' के लिये कहा है। तुम धन्वन्तरी से कह दो कि मुझे उन लोगों के षडयंत्र की सूचना कई दिन पहले से मिल चुकी है। उसे समझ लेना चाहिये वह कितने पानी में है और दल के लोग किसके

साथ हैं ? इस पर भी मैं आज़ाद और केन्द्रीय समिति के सामने बात करने और अपने सामने किये गये निर्णय को मानने के लिये तैयार हूँ। वह झूठ बकता है। कोई निर्णय नहीं हुआ। प्रमाण क्या है ? यदि वह लड़ाई चाहता है, मैं उसके लिये तैयार हूँ ?"

"यह बड़े अफ़सोस की बात है ? अगर ऐसा फैसला हुआ भी है तो क्यों और कैसे किया गया ?"—दुर्गादास ने दुख प्रकट किया।

"मुझे मेरा कोई अपराध नहीं बताया गया। सफ़ाई देने का कोई अवसर नहीं दिया गया। यह धन्वन्तरी और सुखदेवराज की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और ईर्षा है, केन्द्रीय समिति का निर्णय नहीं। मेरे विरुद्ध कोई आरोप हैं तो मेरे सामने केन्द्रीय समिति में मेरा मामला पेश हो या यहां के कुछ साथी मिल कर इस पर विचार करें। आरोप लगाने वाले अपनी बात कहें, मैं अपनी बात कहूं। जो निर्णय होगा, स्वीकार करूंगा परन्तु यों खामुखा बकरे की मौत मर जाने के लिये तैयार नहीं हूँ। मेरे साथ भी छः सशस्त्र आदमी हैं। गोली लग जाने पर भी मैं पिस्तौल की पूरी गोलियां चला कर ही छोड़ूंगा; चाहे धन्वन्तरी सामने आये, चाहे आज़ाद ! यदि मैं अपनी सफ़ाई का अवसर दिये बिना मारा जाता हूं तो क्रान्तिकारियों के इतिहास में मेरे नाम कलंक का धब्बा बना रहेगा। सामर्थ्य रहते मैं यह न होने दूंगा। यदि यह लोग मुझे चुपचाप, कहीं बेखबरी में गोली मार भी देंगे तो इनका यह काम दल को ले डूबेगा। मेरे साथी अन्याय का बदला लिये बिना न रहेंगे। मुझे बचाने के लिये खबर देने वाले भी ईमानदार साथी हैं परन्तु वे कैसे मान लें कि यह दल का निर्णय है ? या तो आज़ाद के नाम पर धोखा दिया जा रहा है या उसे मूर्ख बनाया जा रहा है। ऐसे आदमी की बुद्धि पर क्या भरोसा किया जाये ?"—क्रोध और खिन्नता तो थी ही इसके अतिरिक्त खन्ना की मार्फ़त धन्वन्तरी को धमकाने और डराने के लिये कूटनीति से काम लेने में भी कसर न छोड़ी। इसके लिये मैंने कभी ग्लानि भी अनुभव नहीं की क्योंकि यह सब मैं निरंकुशता के विरुद्ध न्यायोचित अधिकार के लिये कर रहा था।

दुर्गादास ने मुझे आश्वासन दिया—"तुम्हें सफ़ाई का अवसर न दिया जाना तो असह्य अन्याय है ही पर मैंने जो आरोप सुने हैं, मुझे बिलकुल निरर्थक और अस्पष्ट जान पड़े हैं।"

मैंने खन्ना से पूछा—"आखिर आरोप हैं क्या ? मुझे तो कुछ भी

बताया नहीं गया।" उसने बताया—"तुम्हारे विरुद्ध आरोप है कि तुम ने प्रकाश को केवल अपनी विलासिता के लिए भगा कर दल पर कलक लगाया है। तुमने दल में प्रकाशवती का आदर बढ़ाने क लिए प्रेम पर झूठा दोष लगाया कि उसने प्रकाश के भेजे दो हज़ार रुपये गुम कर दिए। तुम भगवतीचरण से ईर्षा करते थे। तुमने जान-बूझकर ऐसा बम बनाया जो फेंकते समय ही फट जाये। इससे राज का पाँव जख्मी हुआ और भगवती की जान गई। भगवती की जान बचाई जा सकती थी परन्तु तुम ने जानबूझ कर समय पर सहायता न पहुँचाई। तुम भगतसिंह को जेल से छुड़ाने के विरुद्ध थे क्यों कि अब अपनी जान बचाकर प्रकाश के साथ भाग जाना चाहते हो। बहावलपुर रोड के बंगले में विस्फोट तुम्हारी ही शरारत से हुआ ताकि वह एक्शन हो ही न सके। तुम जब तक उस कमरे में रहे, बम नहीं फटे। तुम्हारे बाहर निकलते ही फट गये। तुम्हारे व्यवहार के कारण सभी को सन्देह है कि आराम से रह सकने के लोभ में किसी भी समय जा कर पुलिस में भेद दे सब को पकड़वा कर खुद बच जाओगे!"

इन आरोपों को सुन कर मैं कुछ देर चुप ही रह गया और फिर बड़े दुख से उत्तर दिया—यह आरोप ईर्षा के आधार पर कल्पना मात्र हैं। इनका प्रयोजन साथियों को कुछ बताये बिना मुझे रास्ते से हटा देना है। जितनी घटनाओं का जिक्र इन आरोपों में है, उनमें से प्रत्येक घटना में कोई न कोई व्यक्ति सदा मेरे साथ रहा है। क्या उन व्यक्तियों से इस विषय में प्रश्न किए गये हैं? प्रकाशवती को घर से आने की अनुमति मैंने आज़ाद और भगवतीचरण से परामर्श किए बिना नहीं दी थी।* उसके आने पर मेरा क्या व्यवहार था, यह

*पहले इस प्रसग में इस बात की चर्चा करना भूल गया हूँ। प्रकाशवती के प्रेम के साथ पहली बार मिलने आने और घर छोड़ कर आ जाने के बीच मैं दिल्ली गया था और आज़ाद से भगवती भाई के सामने इस सम्बन्ध में बात हुई थी। आज़ाद ने स्वीकार किया था कि मकान आदि किराये पर लेने के लिये दल में स्त्रियां सहायक तो अवश्य होंगी परन्तु तुम लोग सोच लो, औरत होती है झगड़े की जड़। मैं उसे जानना भी नहीं। भगवती भाई और मैं भी प्रकाशवती को जानते न थे परन्तु प्रकाशवती को दल में ले लिया जाने का समर्थन बहिन प्रेमवती ने किया था इसलिये भगवती भाई इस कदम के पक्ष में थे।

इन्द्रपाल जानता है। यदि वह मेरे बुलाने या मेरे प्रोत्साहन पर आती तो पहले दुर्गा भाबी के यहाँ न जाती। प्रेम ने जिस समय आँसू बहाते हुए दो हजार रुपया खो जाने की बात बताई थी, इन्द्रपाल मौजूद था। भगवतीचरण के प्रति मेरे व्यवहार के लिए वह और आज़ाद भी साक्षी हैं। भगवतीचरण के हाथ में जो बम फटा था, वह मेरा तैयार किया हुआ नहीं बल्कि भगवतीचरण और सुखदेवराज ने ही तैयार किया था। मुझे यह भी मालूम न था कि वे लोग बम की आजमाइश करने गये कब? भगवती के जख्मी हो जाने पर सहायता पहुँचाने का प्रबन्ध करते समय पहले छैलबिहारी, फिर बच्चन और इन्द्रपाल मेरे साथ थे। वे क्या कहते हैं? बम जिस कमरे में फटे मैं स्वयं उसमें सो रहा था। यह अवसर की बात है कि मेरे और भाबी के उठ आने पर वे दो और पांच मिनिट के अंतर से फटे। बम दो मिनिट पहले भी फट सकते थे। मैं भाबी के कमरे से निकलने कुछ सैकण्ड बाद ही बाहर आ गया था। अगर इसमें मेरी शरारत है तो समझाया तो जाय कि वह शरारत क्या हो सकती थी? मैंने यह भी कहा कि यह सब सुखदेवराज का कूट षडयंत्र है। इस प्रकार की कुछ बात उसने भगवतीचरण से भी की थी परन्तु वह समय झगड़े का नहीं था।

"इन लोगों को सन्देह है कि मैं विलासिता में फंस गया हूँ। किसी दिन भेद पुलिस को भेद दे कर सर्वनाश कर सकता हूँ। मैं पन्द्रह दिन से जानता हूँ कि यह लोग मुझे अन्याय से कत्ल कर देना चाहते हैं। मैं इसे दल के कुछ लोगों का विश्वासघात समझता हूँ। यदि मैं क्रोध या भय से पागल हो जाता तो कभी का पुलिस की शरण चला गया होता। मैं आज भी दल के सामने मामला रखने और दल को मान्यता देने के लिए तैयार हूँ। इन लोगों में से किसने मेरी तरह निष्ठा, साहस और सचाई दिखाई है?" मैंने बहुत क्रोध और खिन्नता के स्वर में पूछा। खन्ना का स्वर द्रवित हो गया—"यही तुम्हारे विश्वासपात्र होने का सबसे बड़ा प्रमाण है। तुम मेरे साथ धन्वन्तरी के यहाँ चलो। हम लोग इस बात पर जोर देंगे कि आरोपों की जाँच होनी चाहिए।"

संध्या आठ बजे का समय था। "कहां चलना होगा?"—मैंने खन्ना से पूछा—"मिंटो पार्क में"—उसने उत्तर दिया। उस समय मिंटो पार्क बिलकुल सूना हो जाता था। "मैं चलने को तैयार हूं"—मैंने कहा—"परन्तु जिम्मेवारी तुम्हारी है। मुझे कोई भी शंकाजनक

व्यवहार दिखाई दिया तो मैं पहले गोली चला दूंगा और अंधेरे में कहीं से गोली चली तो मैं तुम्हें गोली मार दूंगा।"

"विश्वास रखो!"—खन्ना ने आश्वासन दिया—"इस निर्णय को अन्याय समझने के अतिरिक्त, तुम्हें मालूम नहीं कि प्रकाशवती से मेरा पारिवारिक सम्बंध भी है। बुलाया तो तुम्हें वहां इसीलिये गया है लेकिन मेरे साथ रहने तक कुछ न हो सकेगा। मैं तुम्हें छोड़ कर अलग न होऊंगा। मैं चाहता हूं, कि बात साफ़ हो। इस आपसी फूट से दल बरबाद हो रहा है।"

हम दोनों साइकिलों पर मिंटो पार्क की ओर चले। पार्क के समीप पहुँचने पर मैंने एक हाथ से साइकिल को थामा और दूसरे हाथ से जेब में पड़ा पिस्तौल। तब तक खन्ना पर भी मुझे पूरा विश्वास न था। सड़क पर तो रोशनी थी परन्तु पार्क में कुछ ही कदम भीतर गहरा अंधेरा। हम दोनों साइकिलें हाथ में ले पैदल चलने लगे। खन्ना ने टार्च जला ली थी। कुछ कदम दूर एक बेंच और उस पर बैठा एक व्यक्ति दिखाई दिया। खन्ना ने अपने हाथ की टार्च को हिलाया। आदमी को पहचाना, यह धन्वन्तरी था। मैं और भी सतर्क हो खन्ना के बहुत समीप हो गया और पिस्तौल जेब से बाहर निकाल लिया। धन्वन्तरी निश्चल बैठा रहा।

खन्ना ने धन्वन्तरी को बात सुनने के लिये कहा। धन्वन्तरी ने अपने हाथ के टार्च की रोशनी आकाश की ओर कर कुछ संकेत किया। वे दोनों मेरे सामने पांच-छः कदम पर खड़े आपस में बहुत धीमे स्वर में बात कर रहे थे। खन्ना मेरी ओर लौट आया। धन्वन्तरी ने फिर टार्च से संकेत किया। खन्ना ने मुझे लौट चलने के लिये कहा। मैंने सतर्कता के विचार से कहा—"सड़क तक धन्वन्तरी भी साथ चले।" सड़क तक हम साथ-साथ आये। धन्वन्तरी मुझ से कुछ न बोला।

खन्ना ने बीच में पड़ कर यह तय कराया कि मैं और धन्वन्तरी दिल्ली जायं और मामले पर मेरी उपस्थिति में विचार करने का प्रस्ताव आज़ाद के सामने रखा जाय। लाहौर में यह दिन मैंने नित्य नये स्थान पर इन्द्रपाल, जहांगीरीलाल आदि के घरों में गुजारे। दिल्ली लौटने के समय इन्द्रपाल सावधानी के विचार से मुझे स्टेशन तक छोड़ने गया। लाहौर में तो मैं बहुत साधारण मैले-कुचैले पंजाबी वेश में रहता था परन्तु स्टेशन पर सूट पहन कर गया। विचार था सेकण्ड

क्लास में सफ़र करूंगा। मन में अब भी धोखे का खटका था। सेकण्ड क्लास में एक बार खिड़कियां और दरवाज़े भीतर से बंद कर लेने पर मेरे सोये रहते कोई गाड़ी में नहीं आ सकता था।

सावधानी के लिए घबराहट में एक असावधानी हो गई। बहुत सतर्क रहने के लिये मैं भरा हुआ पिस्तौल कोट की जेब मे डाले रहता और काफी कारतूस भी खुले पड़े रहते थे। टिकट लेने की खिड़की पर पहुँच मैंने टिकट के दाम निकाले। भीतर की जेब से नोट और फुटकर पैसे बाहर की जेब में हाथ डाल कर खिड़की की सिल पर रख दिये। फुटकर पैसों के साथ ही पिस्तौल के दो कारतूस सिल पर आ गए। कनखियों से आस पास देखा। खिड़की के समीप खड़ा तुर्रेदार पगड़ी बांधे खुफिया पुलिस का आदमी मेरी ओर देख रहा था। अब कारतूसों को छिपाने या घबराहट दिखाने का अर्थ था निश्चित रूप से फंस जाना। कारतूसों को जेब में डालने के बजाय मैं उन्हें हाथ में लिये उछालने लगा और ज़रा ऊंचे बिगड़ैल स्वर में, अंग्रेज़ी में फर्स्ट क्लास का टिकट मांगा।

"सर, फर्स्ट क्लास में जगह नहीं है। सब रिज़र्व है!"—बाबू ने अंग्रेज़ी में उत्तर दिया।

मैं बिगड़ उठा—"क्या बक्वास? तीन बजे फोन पर तुम बोला हमारा जगह रिजर्व किया अब बोलता, जगा नइ।"—मैंने उलट कर इन्द्रपाल पर क्रोध दिखाया—"मुन्शी, तुम तीन बजे फोन किया?"

"हां हुजूर"—इन्द्रपाल ने भय और विनय से हामी भरी।

"क्या बोलता?"—क्रोध मे मैंने बाबू को सम्बोधन किया—"मैं छः बजे से ड्यूटी पर आया हूँ। मुझे कुछ मालूम नही"—बाबू ने सफाई दी।

"हम रिपोर्ट करेगा। अबी सैकण्ड क्लास में दो!"—मैं अब भी कारतूसों को हाथ में उछालता जा रहा था। बाबू टिकट बना रहा था इन्द्रपाल की ओर देख फिर मैंने क्रोध प्रकट किया—"क्या देखता? सैकण्ड क्लास में जगा है। जल्दी सामान लगाओ!"

इन्द्रपाल मेरा संक्षिप्त सा बिस्तर और सूटकेस ले प्लेटफार्म पर चला गया। उसके पीछे पीछे मैं चला। खुफिया पुलिस का आदमी कुछ कदम पर साथ ही चल रहा था। मैं कनखियों से उसकी ओर देखता

जा रहा था। प्लेटफार्म पर पहुँच कर मैंने इन्द्रपाल को फिर डांटा—"क्या देखता ? गार्ड को जगा पूछो !"–गार्ड सामने ही था। इन्द्रपाल के 'जंट साहब * के लिये जगह पूछने पर गार्ड ने समीप की गाड़ी में जगह दिखा दी। वह बिस्तर लगाने लगा। मैं एक हाथ से पिस्तौल को कोट की जेब में थामे हाथ से कारतूसों को उछालता हुआ उड़ती-उड़ती नजर खुफिया पुलिस के आदमी के व्यवहार पर रखे था। उसे यह समझाना चाहता था कि मेरे हाथ में कारतूस देखे जाने से मुझे कोई आशंका नहीं। वह अब कुछ दूर हो गया था और मेरी ओर अब उतनी तीव्रता से न देख रहा था परन्तु था तो मैं उस के सामने ही। गाड़ी का समय हो चुका था परन्तु चल न रही थी। मैंने पुलिस वाले को सुना कर गार्ड को फिर पुकारा—"गार्ड !"

"यस सर" –गार्ड मेरी ओर आ गया। जेब से एक पांच या दस का नोट निकाल उस की ओर बढ़ा मैंने अंग्रेजी में कहा—"एक टीन ब्लैक एण्ड ह्वाइट सिगरेट ला दो !"

गार्ड लपक कर कुछ दूर स्टाल से सिगरेट का डिब्बा ले आया। सिगरेट का डिब्बा ले मैंने शेष दाम लेने से पहले मुंह फेर लिया। गार्ड ने दाम गाड़ी की सीट पर रख दिये और तुरन्त सीटी बजाता हुआ लौट गया। यह सब नाटक करके भी मेरा दिल धड़क रहा था,खुफिया पुलिस का आदमी क्या करता है ? गाड़ी चल दी तब सांस लिया परन्तु निश्चिंत न हुआ। अनुमान किया यहां से फोन कर दिया जायगा और पांच मील परे, छावनी के स्टेशन पर पुलिस काफी संख्या में तलाशी के लिए आ सकती है। छावनी का स्टेशन 'मियांमीर' भी निरापद गुजर गया। तब भी मन न माना। यह गाड़ी 'फ्रन्टियरमेल' थी। प्रायः एक घण्टे की दौड़ के बाद 'कसूर' स्टेशन पर ठहरती थी। मैं बहुत सतर्कता से प्रतीक्षा कर रहा था। कसूर भी निरापद निकल गया परन्तु मैं फिरोजपुर का स्टेशन भी गुजर जाने तक आहट की प्रतीक्षा करता रहा। दिल्ली स्टेशन पर भी निश्चिन्त न था। वहाँ तो अपने साथियों और खुफिया पुलिस दोनों का ही भय था। जब भी ऐसा विकट तनाव सहना पड़ता, उसका प्रभाव शरीर और मेदे पर बहुत पड़ता था। ऐसी अवस्था में दूसरे लोग क्या अनुभव करते हैं, कह नहीं सकता लेकिन मुझे मुख

---

* अनपढ़ पंजाबी ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट को जंट साहब ही कहते थे।

में एक तरह की कड़वाहट, जिसे वैद्य लोग पित्त की अधिकता कहते हैं, अनुभव होने लगती थी।

प्रकाशवती को जामा मस्जिद के समीप वैद्राज भल्ला के यहां छोड़ गया था। दिल्ली लौट मैं सीधा वहां ही पहुंचा। प्रकाशवती को वहीं न देख मैं हैरान रह गया। भल्ला से मालूम हुआ कि प्रकाशवती एक सप्ताह पूर्व अपने साथियों से मिलने गई थी तब से लौटी नहीं। यह सुन घबराहट बढ़ी। लाहौर जाते समय मैं उन्हें कहीं न जाने या साथियों से न मिलने की बात इसीलिए नहीं कह गया था कि वे घबरा न जायें। साथियों को मिलने जा कर उनके इतने दिन तक न लौटने से सन्देह हुआ कि अपनी इच्छा और सुविधा से वहां रहतीं तो सामान भी ले जातीं। अवश्य कहीं कैद हो गई हैं। मैं स्वयं ही घबरा गया। उल्टे पांव जीना उतरा और फैक्टरी में पहुंचा।

अभी सूर्योदय हुए देर न हुई थी। धन्वन्तरी मुझ से एक गाड़ी पहले ही आजाद से मुलाकात निश्चित करने के लिये दिल्ली आ गया था। वह और सुखदेवराज फैक्टरी में हो सकते थे। जीने में घुसने पर ऊपर के किवाड़ खुले ही दिखाई दिये। मैंने जेब से पिस्तौल निकाल हाथ में ले लिया। इससे पूर्व ऐसे अवसरों पर मैंने इतनी जल्दबाजी न की थी परन्तु इस समय प्रकाशवती के खतरे में होने की आशंका से मेरा मस्तिष्क चकरा गया था।

दफ्तर और बीच के कमरे में कोई दिखाई न दिया। दूसरी हाथ की खुली छत पर गया। देखा, धन्वन्तरी खाट पर बिना कुछ बिछाये एक चादर ओढ़े पड़ा था। मेरी आहट से उसकी नींद खुली। उससे कुछ बात न कर मैं लौट पड़ा। धन्वन्तरी ने आंख खुलते ही मुझे हाथ मे पिस्तौल थामे अपनी चारपाई से लौटते देखा। वह वैसे ही बैठा रहा। उसने कोई घबराहट या उजलत न दिखाई परन्तु क्रोध जरूर स्पष्ट था। मेरे व्यवहार से अपमान अनुभव करना स्वाभाविक था परन्तु मेरे सिर इस आशंका से खून सवार था कि जाने प्रकाशवती के साथ क्या हुआ या किसी कोने से मुझे गोली लग जा सकती है। दुबारा कमरे में लौटने पर गिरवरसिंह नहाकर गीले शरीर पर धोती पहने दिखाई दिया। मैंने उस से प्रकाशवती के विषय में पूछा। मेरी आवाज सुनकर प्रकाशवती समीप के कमरे से निकल आई। पहली नजर में ही मैं उनके चेहरे पर सूखे आंसू और परेशानी पहचान

गया। कोई बात न कर मैंने उन्हें तुरन्त अपने साथ चलने के लिये कहा। उन्हें आगे कर मैं पीछे नजर किये जीने तक पहुँचा था कि सुशीलाजी स्वाभाविक स्वर में पुकार कर आती दिखाई दीं—"कब आये ? कहां जा रहे हो ? क्या बात है ?"—"अभी जल्दी है। फिर आऊंगा"—उत्तर दे मैं जीने से उतर गया।

वेदराज भल्ला के यहां पहुंचने पर प्रकाशवती ने बताया कि मेरे उन्हें वहां छोड़ जाने के चौथे या पांचवें दिन वे साथियों से मिल आने के लिये फैक्टरी चली गई थीं। वहां विमलप्रसाद ने उन्हें रोक लिया। बाद में भैया, धन्वन्तरी आदि भी आये। भैया बारबार उनसे पूछते थे, मैं कहां गया हूँ ? मैं प्रकाशवती को अपने जाने का स्थान और प्रयोजन बताकर नहीं गया था इसलिये उन्हें यही कहना पड़ा कि वे नहीं जानतीं। आज़ाद ने समझा कि वह चालबाज़ी कर रही हैं और धमकाना शुरू किया—"तुम सब जानती हो ! अगर बताओगी नहीं तो अच्छा नहीं होगा।" दूसरा प्रश्न उनसे पूछा गया—"तुम्हारा यशपाल से क्या सम्बन्ध है ?" आजाद का ऐसा व्यवहार उन्होंने कभी देखा न था। धमकियों के कारण वह पहले ही खिन्न हो चुकी थीं। वास्तविक स्थिति या प्रश्न का प्रयोजन कुछ मालूम न था। बिगड़ कर औरअपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिये उन्हों ने उत्तर दिया—"जैसा होना चाहिये वैसा है ! आपका मतलब ?"

भैया से हम सभी लोग आदर से बात करते थे। उनके व्यक्तिगत विहार में ऐसी कोई बात थी भी नहीं जो खटकती। बिना आत्मीयता के वे कभी 'तू' का व्यवहार न करते थे। क्रोध में सदा 'तुम' और 'आप' ! उन दिनों धन्वन्तरी, सुखदेवराज और कैलाशपति उनकी बहुत चापलूसी भीकर रहे थे। परस्पर स्पष्ट आलोचना का ढंग समाप्त हो चुका था। प्रकाशवती की बात से उन्हें कितना क्रोध आया होगा यह अनुमान कर लेना कठिन ही है। ऐसी अवस्था मे प्रकाशवती को चांटा न लगा देना उनके लिये स्वयं चांटा सह जाने के बराबर ही था।

मैंने प्रकाशवती को अपने विरुद्ध निर्णय और आजाद की परेशानी का कारण बता दिया। सुनकर उनका परेशान हो जाना स्वाभाविक था। यह जान कर कि मैं आजाद और दूसरे साथियों से मिलने जा रहा हूं उन्होंने भी पिस्तौल लेकर साथ चलने का आग्रह किया। मैंने भरोसा दिलाया कि इस बात की कोई आवश्यकता नहीं। मैं पिस्तौल

तक नौबत न आने दूंगा । मेरा प्रयोजन तो स्थिति को साफ़ करना है । इस समय भरोसा सचाई और बुद्धि का ही किया जा सकता है । यदि मैं इस समय स्थिति साफ न कर सका और मारा गया तो तुम्हारे बच रहने से कलंक को धो सकने का अवसर शेष रहेगा । यह उतावली और घबराहट उचित नहीं ।

भैया से मिलने से पहले मैं खयालीराम गुप्त से मिला और उन्हें सम्पूर्ण स्थिति बता दी । वे सुनकर हैरान रह गये । अपने विरुद्ध निर्णय सुनने के बाद पहले मेरा प्रयत्न इस लज्जाजनक बात को छिपाये रख कर स्थिति को सुलझा लेने का था । उसमें सफलता न हुई । अब मैंने समझा कि सचाई को प्रकट कर साथियों के जनमत के बल पर ही मैं न्याय की मांग कर सकता हूँ । गुप्त जी को स्थिति बताकर मैंने अपने साथ आजाद के सामने चलने का अनुरोध किया । वे इसके लिये आग्रह पूर्वक तैयार हो गये । इसके बाद मैं सुशीली जी से मिला और अपने विरुद्ध निर्णय की बात बताई । वे भी अवाक रह गईं । उनका विस्मय देख मैं समझ गया कि यह रहस्य इन्हें भी नहीं बताया गया था । प्रयत्न ऐसा ही था कि कम से कम साथियों को पता लगे और मुझे समाप्त कर दिया जाये । उन्हों ने विस्मय से मेरे विरुद्ध आरोप पूछे और सुनकर विस्मित रह गईं, कुछ बोल ही न सकीं ।

यशपाल की मुक्ति

आज़ाद कानपुर में थे । कलाशपति ने उन्हें तार देकर बु[illegible] हाथ—मैं खयालीराम गुप्त और सुशीलाजी को साथ ले [illegible] के समीप फैक्टरी में पहुँचा । आज़ाद धन्वन्तरी के साथ बैठे बात करते दिखाई दिये । हम लोगों को देखते ही आज़ाद के चेहरे और आंखों की लाली और धन्वन्तरी के गम्भीरता से लटक गये चेहरे से ही उन लोगों के क्रोध का अनुमान हो गया । उसकी उपेक्षा कर मैंने आज़ाद को सम्बोधन किया—"मैं अपने खिलाफ लगाये आरोप को जानना चाहता हूं और चाहता हूँ उनकी जांच हो !"

भैया की आंखें बिलकुल अंगारा हो गईं । होंठ क्रोध में फड़क उठे—"तुम अपने साथ आदमियों को लाकर मुझे डराना चाहते हो ? किसके हुक्म से तुम इसे यहां लाये ?"—उन्होंने खयालीराम गुप्त की ओर संकेत किया । सुशीलाजी तो वहां रहती ही आई थीं ।—"तुम मुझे धमकी देते हो कि छः आदमी लेकर मुझे शूट कर दोगे ? बुला लाओ

अपने साथियों को ! देख लूंगा किसने मां का दूध पिया है ?"—उनका हाथ मूंछ पर चला गया।

मैंने क्रोध दबा कर परन्तु कड़े स्वर में उत्तर दिया—"मुझे नहीं मालूम तुम्हारे सामने क्या-क्या झूठ बोले गये हैं। मैं तो न्याय और जांच की मांग करने आया हूँ। दल के लोग जिस बात को अन्याय समझते हैं, उसका विरोध क्यों न करें ? मुझे न्याय की मांग का भी अधिकार नहीं है ? तुम यदि मुझ से अकेले में बात करना चाहते हो, मैं उसके लिये तैयार हूँ।"

भया ने धन्वन्तरी, सुशीलाजी और खयालीराम गुप्त को हटा दिया। अकेले में मुझसे पहिला प्रश्न यही पूछा—"यह भेद तुम्हें किस ने बताया ?"

"भेद मुझे दिल्ली में ही मिल गया था। मैं कानपुर केवल इसलिये गया था कि तुम से बात कर सकूं। मुझे स्टेशन पर कोई न मिला। मैं तुम्हारा पता पूछने वीरभद्र के मकान पर गया। उसने मुझसे चालबाजी की—"सांझ तक मेरे यहां ठहरो। मैं ढूंढ़ कर पता लूंगा या रात में आठ बजे सरसैया घाट पर मिलना।" मैंने उससे कहा, सांझ से पहले पता क्यों नहीं लग सकता ? मैंने चार बजे तक तुम्हें उसी के यहां बुला लाने के लिये कहा। मैं चार बजे और फिर पांच बजे उसके यहां गया। वह मिला नहीं। मैं यहां लौट कर लाहौर चला गया। अभिप्राय था 'शेरदिलों' का एक्शन कर तुम्हारा या दूसरे लोगों का सन्देह दूर करूं। वहां मुझे जाते ही दो जगह से भेद मिला और इसका विरोध भी। वे लोग तो इस मे सुखदेवराज और धन्वन्तरी का कुचक्र समझ उन्हें ही शूट कर देना चाहते थे। मैंने उन्हें बड़ी कठिनाई से रोक कर तुम्हारे सामने बात रखने के लिये तैयार किया क्यों कि मुझे तुम पर भरोसा था। लोग कैसे मान लें कि यह दल का निर्णय है ?"

"मैं कहता हूँ दल का निर्णय है।"—भैया को और क्रोध आ गया।

"निर्णय करते समय मुझे आरोप बताया जाना चाहिये था"—मैंने जोर दिया।

"आरोप बताने की क्या बात है ?"—भैया ने मुझे डांटा—"तुम्हारा कमला से क्या सम्बन्ध है ?"

"पति पत्नि का सम्बन्ध है।"—मैंने भी उतने ही जोर से कहा।

"वह इनकार करती है उसने मेरी इन्सल्ट की। वह मुट्ठी भर की कम्बख्त लड़की कहती है, आप को मतलब ? तुम लोग पार्टी में गन्द फैलाते हो ?"

"गन्द का मतलब क्या है ?"—मुझे बहुत क्रोध आ गया। उत्तर दिया—"इस तरह का अपमान मैं नहीं सह सकता। ढङ्ग से बात करो तो मैं जवाब दूँगा। तुमने कमला से भी इसी ढङ्ग से बात की इसलिए उसने भी बेढङ्गा जवाब दिया।"

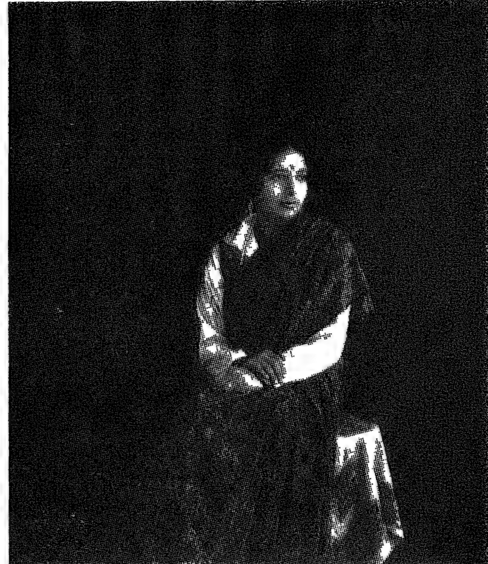
"तुमने किसकी इजाज़त से शादी की ? शादी करने से पहले मेम्बरों को पार्टी से इजाज़त लेनी चाहिए"—भैया ने धमकाया—"तुम प्रान्त के आर्गनाइज़र हो, तुम्हें पार्टी के रूल नहीं मालूम ?"

"मैंने इस बारे में भगवती भाई से बात कर ली थी। उन्हों ने तुम से बात नहीं की तो यह उनकी भूल थी मैंने कोई बात छिपा कर नहीं की। इस बारे में तुम भाबी से पूछो! यह उन्हीं का सुभाव था। भगवती भाई से इस सम्बन्ध में उनकी मृत्यु से दो दिन पहले बात हुई थी। उस समय भी सुखदेवराज ने मेरी ऐसी इंसल्ट की थी और मैं तुम्हारे सामने बात करना चाहता था परन्तु भगवती ने रोक दिया कि जेल का काम हो लेने दो। उनकी मृत्यु हो गई और हम लोग बहावलपुर रोड के बमकांड के बाद पिछड़ गये। दिल्ली लौटने पर उन बातों को मैंने महत्व न दिया। मैं समझता था कि हमारा व्यवहार दल के सामने है। किसी को ए[illegible] नहीं। यदि साथियों को मेरे चरित्र पर एतराज़ था तो मुझसे बात की जाती या चेतावनी दी जाती। आप लोग बात मन में छिपाये रहे। मेरे साथ जिस ढङ्ग से व्यवहार किया गया उसे मैं न्याय नहीं समझता ! मुझ पर आरोप लगाया जा रहा है कि मैंने प्रकाशवती को अपने शौक के लिए घर से भगाया। क्या भगवती भाई और तुम्हारे सामने बात नहीं हुई थी ? इन्द्रपाल, प्रेम और भाबी से इस विषय में क्यों बात नहीं की गई ? जो कुछ सुखदेवराज और धन्वन्तरी ने कह दिया, वही सच मान लिया गया। मेरा विचार दल को धोखा देने का या तुम्हारे प्रति विश्वासघात का होता तो बदला लेने और अपने प्राण बचाने के लिए पुलिस के पास चला जाता ? तुम लोग मेरी या प्रकाशवती की बोटी-बोटी काट डालो तब भी मैं पुलिस के पास नहीं जाऊँगा लेकिन एक दिन तुम्हारा अन्तरात्मा तुम्हें धिक्कारेगा"—यह लो मैंने अपना

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना के दो कार्यकर्ता



यशपाल



प्रकाशवती

रिवाल्वर निकालकर भैया के सामने रख दिया—"···अपराध बताये और प्रमाणित किए बिना साथियों को कत्ल कर देने से ही यदि क्रांति हो सकती है तो कर लो!"—मेरे आँसू न रुके। दुर्गादास से कह कर धन्वन्तरी की मार्फत जो कुछ मैंने कहलाया था, वह भी किसी न किसी रूप में उन तक पहुंच चुका था। भैया की आँखों से भी झरना सा झरने लगा।

आँखे पोंछे बिना भैया बोले—"जो होना था हो गया। तुम्हें यह बताना पड़ेगा कि भेद किसने दिया; नहीं तो पार्टी चल ही नहीं सकती!"

"इसके लिए मैं मजबूर हूँ। हो सकता है भेद देने वाले कभी स्वयं ही यह बात बता दें। उन्हें यह विश्वास है कि उन्हों ने पार्टी के हित में ऐसा किया है। मेरी उन लोगों से व्यक्तिगत मित्रता तो है नहीं परन्तु मैंने जो वचन दिया है, उसे न तोड़ूंगा। मैंने तुम्हारे साथ विश्वासघात नहीं किया, उन के साथ भी नहीं करूँगा। इस बात के लिए गोली मारना चाहो तो विवश हूँ। मुझे संतोष रहेगा, बात पर मर रहा हूँ।"

भैया दो-तीन मिनिट चुपचाप दोनों पन्जे जोर से बांधे सोचते रहे और बोले—"यह पार्टी चल नहीं सकेगी।"—आँखे पोंछ सुशीलाजी, धन्वन्तरी और कैलाशपति को बुला लिया और क्रोध में कहा—"मैं पार्टी-वार्टी कुछ नहीं रखूंगा। मुझे किसी पर विश्वास नहीं। मुझे [illegible] दिया। तुम सब लोग बड़े-बड़े विद्वान ऐसे, बिए हो। मुझे उल्लू बनाते हो! [illegible] बैठ कर कुछ फैसला किया जाता है और फैसला करने वाले ही धोखा देते हैं। अब जो हो गया···लेकिन यह बात पक्की है कि भेद कौन्सिल (केन्द्रीय समिति) से ही फूटा है। मेरा सिर चक्कर खा गया है कि ऐसे कौन बेइमान हैं। मैं ऐसी कौन्सिल के साथ काम नहीं करूँगा। मैं अकेला भला। मेरे लिए एक माउजर काफ़ी है। जब कोई रास्ता न होगा, बाज़ार में पुलिस से लड़ता हुआ मारा जाऊँगा। बस क्रान्ति हो चुकी। तुम लोग आपस मे हथियार बांट लो और अपनी-अपनी पार्टियां बना लो।"

सुशीला जी ने पार्टी तोड़ दी जाने का विरोध कर भैया से अनुरोध किया—"कुछ लोगों ने आपको धोखा दिया परन्तु ऐसे लोग भी तो हैं (उन्होंने मेरी ओर इशारा किया) जिन्हों ने अपने कत्ल का सही या

गलत प्रयत्न किया जाने पर भी आपको और दल को धोखा नहीं दिया। यदि ऐसा एक भी आदमी आपके साथ है तो पार्टी जीवित रहेगी। यह तो पार्टी की अग्नि परीक्षा हो गई। जिन्होंने धोखा दिया है, उन्हें पहचान कर अलग कीजिये········"

धन्वन्तरी ने इस पर भी सिर झुकाये और आंखों में आंसू भरे विरोध किया कि जिस आदमी ने भैया के अधिकार और नेतृत्व के विरुद्ध साथियों को भड़काया है, भैया को अयोग्य, अहम्मन्य और 'बैल बुद्धि' कहा है उसके साथ वह काम नहीं कर सकता। उसका अभिप्राय मुझ से ही था, लाहौर में मेरे विरुद्ध जैसे आरोपों का प्रचार किया गया था' उनके लिए वह अब लाहौर में क्या जवाब देता ? मेरे विरुद्ध निर्णय बदल जाने से पंजाब में उसके प्रतिनिधित्व के रूप में पार्टी की प्रतिष्ठा, अधिकार और शक्ति समाप्त हो जाती।

धन्वन्तरी की बात से भैया को फिर क्रोध आ गया—"ठीक है, जो लोग मुझे बेवकूफ समझते हैं मैं उनके साथ कैसे काम कर सकता हूँ ?"

मैंने स्वीकार किया—"अपने प्रति न्याय की माँग के लिए और अन्याय के विरुद्ध क्रोध के कारण मैंने बहुत सी बातें भैया के व्यक्तित्व के विरुद्ध कह डाली हैं। मैंने सदा यही कहा है कि भैया को धोखा दिया जा रहा है और वह धोखे को समझ नहीं पा रहे। 'बैल बुद्धि' भी मैंने कहा है। मैं इसके लिए क्षमा मांगने के लिये तैयार हूं लेकिन मेरे लिए कौन बुरा शब्द प्रयोग नहीं किया गया ? मैंने भैया को सम्बोधन किया— बीसियों बार मुझे "कौवा" या "बांगड़ूस" कहते रहे हो। बैल बुद्धि तुम्हें मैंने ही नहीं, सभी ने कहा है परन्तु निरादर की भावना से नहीं।"—मैंने बहावलपुर रोड पर विस्फोट से पहले की एक बातचीत की याद दिलाई जिसमें भगवती, मैं, सुखदेव, धन्वन्तरी, सुशीला जी और दुर्गा भाभी सभी आजाद की कुछ बातों पर हंस-हंस कर उसे 'बैल बुद्धि' कह रहे थे। हम लोग आजाद को प्रायः ही बैल बुद्धि कह लेते थे इस शब्द से समझ की कमी के तिरस्कार भाव नहीं बल्कि लगन की अधिकता और विश्वासपरता के कारण सन्देह की दृष्टि से छान-बीन करने की प्रवृति की कमी का ही अभिप्राय रहता था। मेरी हर बात पर सन्देह की प्रवृति और पुलिस को बार-बार धोखा दे देने के कारण मुझे प्रायः ही "कौवा" और बिना संवारे मुंह फट बात कह देने के कारण "बांगड़ूस" और खर्च के बारे में बेपरवाही और नफ़ासत के शौक के कारण "प्रिंस"

कह दिया जाता था। दूसरे साथियों के भी ऐसे कई नाम थे। दुर्गा भाबी तो हर किसी को कोई उपनाम दिये बिना मानती ही न थी। ऐसे नामों से कोई न चिड़ता लेकिन भैया प्रायः चिढ़ जाते। इसका मानसिक कारण उनके मन में बैठी यही धारणा थी कि उनके स्कूल-कालिज की शिक्षा न पाये होने के कारण हम लोग उन्हें अशिक्षित समझते हैं।

"नहीं नहीं, यह नहीं होगा।"—भैया ने धन्वन्तरी की बात का विरोध किया। मुझे सम्बोधन कर, आंख बचाते हुए उन्हों ने गम्भीर और कुछ आर्द्र स्वर में कहा—"खैर; जो हो गया, उसे भूल जाना ही ठीक है। मुझे अफसोस है कि हम पार्टी का बहुत ही मूल्यवान और भरोसे का साथी खो बैठते। अब हमें साथ मिल कर ही काम करना है। एक दूसरे ने जो कहा, उसे जाने दो।"

निश्चय हुआ कि प्रकाशवती को यशपाल की दल द्वारा स्वीकृत पत्नि और दल का पूरा सदस्य माना जाये। पंजाब का संगठन कर्ता धन्वन्तरी ही रहे और मैं आकर भैया के साथ काम करूं। धन्वन्तरी पंजाब जाकर मेरे सम्बन्ध में निर्णय बदल दिया जाने और सुलह-सफाई हो जाने की बात कह दे। मैं धन्वन्तरी के पंजाब का संगठनकर्ता होने की बात का समर्थन साथियों के सामने कर दूं, अपने कब्जे में रखा हुआ विस्फोटक सामान उसे सौंप दूं और लाहौर षड़यंत्र के लिये पुलिस के इंचार्ज खान बहादुर अब्दुल अजीज को शूट करने की योजना में धन्वन्तरी को सहायता दूं। भैया ने प्रकाशवती को भी फैक्टरी में बुलवाकर बात की—"तुम्हारे साथ जो व्यवहार हुआ उसके लिए हम सब को बहुत दुख है। मेरा तुम से कोई व्यक्तिगत झगड़ा नहीं। मैंने जो कुछ किया, दल के अनुशासन के विचार से किया। उन सब बातों को भूल जाओ!"

दल भंग

भैया और सुशीलाजी के प्रयत्न से दिल्ली में सुलह-सफाई हो गई परन्तु धन्वन्तरी को उससे सन्तोष न हुआ। इस सुलह-सफाई की क्रियात्मक कठिनाई को वह समझता था। लाहौर पहुंच कर मैंने विस्फोटक पदार्थ धन्वन्तरी को सौंप दिये। धन्वन्तरी के पंजाब का संगठनकर्त्ता होने की बात का भी समर्थन कर दिया। बात यहां ही समाप्त न हो गई। साथियों को मेरी स्थिति के बारे में जिज्ञासा थी। धन्वन्तरी ने कहा कि यशपाल ने अपना अपराध स्वीकार कर दल और आजाद से क्षमा मांग ली है इसलिये उसे क्षमा कर दिया गया है। पंजाब में दल

और दल के नेता के सम्मान की रक्षा और किसी बात से हो ही न सकती थी। परन्तु मैं ऐसी बात का समर्थन करने के लिये तैयार न था। मैंने विरोध किया—"मामला केन्द्रीय समिति के सामने न पहले रखा गया था न अब रखा गया। यदि पहला निर्णय केन्द्रीय समिति का था तो अकेला आजाद उसे कैसे बदल दे सकता है ? हां, आजाद ने पहले निर्णय की भूल स्वीकार कर ली है कि आरोप झूठे थे। क्षमा मैंने नहीं, आजाद और झूठा आरोप लगाने वालों ने मांगी है।" धन्वन्तरी को पंजाब का संगठनकर्ता केन्द्रीय समिति ने नहीं केवल आजाद ने नियत किया है क्योंकि वह आजाद की चापलूसी करता है। पंजाब का संगठनकर्ता यहां के साथियों को चुनना चाहिए। ऐसी अवस्था में मेरे प्रति विश्वास करने वाले साथी धन्वन्तरी का विश्वास कर उसे सहायता देने के लिए कैसे तैयार होते ?

दिल्ली में मेरे और प्रकाशवती के सम्बन्ध के अतिरिक्त किसी दूसरे आरोप पर बात ही न हुई थी। भैया से मैंने दूसरे आरोपों की चर्चा भी की तो उन्होंने खिन्न हो बात करने से ही इनकार कर दिया—"कौन कहता है ? क्या फायदा; हटाओ उस बकवास को !" केवल बहावलपुर रोड पर बमों के आकस्मिक रूप से फटने पर ही चिन्ता प्रकट की कि क्या कारण समझा जा सकता है ? इस विषय में मैं स्वयं बहुत माथापच्ची कर चुका था और लाहौर में देवदत्त से मिलकर भी बात की थी। हम लोगों ने यह कारण भाँपा था कि बमों को ठीक सूख जाने का अवसर न देकर बहुत जल्दी भर दिया गया। इसीलिये रोगन और पिक्रिक एसिड में रासायनिक क्रिया से गरमी पैदा होने लगी। रोगन में नमी कम होने के कारण रासायनिक क्रिया बहुत कम परिमाण में होती रही और पर्याप्त गरमी पैदा हो जाने में काफी समय लगा। जैसे किसी रोग की छूत बहुत कम परिमाण में लगने से शरीर में रोग का प्रकोप काफी समय बाद प्रकट होता है। दोनों बमों में मसाला भरने में जितना अन्तर रहा होगा, ठीक उतने ही अन्तर से वे फटे भी। इस उत्तर से भैया का भी समाधान हो गया।

इन दिनों इन्द्रपाल और उसके साथियों की अवस्था, उनके पास पैसा बिलकुल न रह जाने और हंसराज की पैंतरेबाजी के कारण बहुत ही शोचनीय हो गई थी। धन्वन्तरी और सुखदेवराज से उन्हें कोई सहायता न मिल रही थी। धन्वन्तरी की पूरी शक्ति और समय मेरे

कारण लाहौर में हो गयी गड़बड़ को सुलझाने में ही लग रहा था। दिल्ली में हो गई सुलह-सफ़ाई के बाद भी जब मैंने लाहौर में अपने लिए दल के जाने-माने साथियों में उचित स्थान न देखा तो फिर इन्द्रपाल के सहयोग से पृथक काम चलाने की बात सोची। २६ या २७ अगस्त, दोपहर के समय उसके मकान पर पहुंचा। मकान के भीतर जाने से पहले हाते में एक ओर निष्प्रोयन बैठे सन्दिग्ध से व्यक्ति पर निगाह पड़ी। हाते की दीवार की आड़ के कारण इस आदमी को सड़क से न देख सका था। लौट जाने के बजाय जोर से दरवाज़ा खटखटा कर निश्शंक रूप से भीतर गया। मैंने इन्द्रपाल को चेतावनी दी—"तुम्हारे यहाँ तो खुफिया पुलिस का पहरा सा जान पड़ता है। यहां तक आ गया था, भीतर आये बिना मुड़ जाता तो उसे सन्देह हो जाता। मैं तुरन्त जा रहा हूँ। कहीं बाहर आकर बात करो।"

मुझे देख उसे भी विस्मय और घबराहट हुई। दिल्ली से लौट मैं उसे न मिला सका था। सहसा मुझे देख उसने आश्चर्य प्रकट किया—"तुम यहां कैसे आ गये? यहां तो तीन दिन से सी० आई० डी० का पहरा है। यहां, ग्वालमण्डी की बैठक और जहांगीरी का मकान सब घिर चुके हैं। बड़ी गलती की तुमने। अब लौटोगे तो पीछा किया जायेगा।"

खड़े-खड़े ही मैंने पूछा—"मालूम हो गया था तो तुम लोग फरार क्यों नहीं हुए?"—उसने उत्तर दिया—"तीन दिन से खाने के लिए भी पैसा नहीं। तुम्हारे जाने के दो दिन बाद से पुलिस पीछे है। किसी से मिलना कैसे?"—उस के पास कुछ बम्ब के खोल थे। मैंने पूछा वे कहां हैं? उसने बताया, मास्टर नन्दलाल के यहां रख दिये हैं। जल्दी में मैंने कहा—"तुम भी बाहर निकलो। दोनों अलग-अलग दिशा मे जायंगे। पुलिस वाला एक का ही पीछा कर सकेगा।" उसने स्वीकार किया—"ठीक है, मेरा ही पीछा करेगा। मैं जहां जाता जाता हूँ पीछा करता है।" बाहर निकलते समय उसने पूछा—"कुछ पैसे हैं? एक बण्डल बीड़ी ले आने के बहाने से चलूँ।" मेरी जेब में उस समय डेढ़-दो रुपये से अधिक न था। उसे दे दिया और आश्वासन दिया कि रात साढ़े आठ बजे 'चौबुर्जी' के एकान्त में या कल सुबह रावी की सड़क पर बिना पीछा किए आये तो दस-पन्द्रह रुपये कहीं न कहीं से अवश्य ला दूँगा। हम लोग गवर्मेंण्ट कालिज की ओर से अनारकली की ओर चले। इन्द्रपाल एक दुकान पर लस्सी पीने के लिए खड़ा हो गया।

खुफिया पुलिस को देखने के लिए मैंने कुछ आगे बढ़ मुड़कर ओर से बात की—"अच्छा, शाम को आऊंगा। कहीं चले न जाना। अभी दुकान पर जा रहा हूँ।" खुफिया पुलिस का सिपाही इन्द्रपाल को आंख से ओझल न होने देने के लिए वहां ही ठहर गया था। इस पर भी मैं मेडिकल कालेज के भीतर घुस कुछ देर कम्पौण्डरों के क्वार्टरों में किसी काल्पनिक व्यक्ति को ढूंढ़ कर देखता रहा कि कोई पीछे तो नहीं है।

इन्द्रपाल अपने प्रति सन्देह का निश्चय हो जाने पर गिरफ्तारी की आशंका में हथियार और दूसरा सामान तो हटा चुका था परन्तु स्वयं न हटा। मुझे उसका यह व्यवहार बहुत ही घृणास्पद लगा। अपनी आर्थिक कठिनाई और साथियों के पारस्परिक व्यवहार से वह इतना निराश हो गया था कि फरार होकर कुछ कर सकना सम्भव न समझ रहा था। शायद उसे आशा थी कि गिरफ्तार हो जाने पर भी सुबूत के अभाव में कुछ दिन बाद छूट जायगा और फिर मेनहत कर शांत पारिवारिक जीवन बितायेगा। वह रात में 'चौबुर्जी' पर नहीं आया। सुबह रावी की सड़क पर भी नहीं आया। बाद में मालूम हुआ कि उस सन्ध्या से उसके मकान पर पहरा बढ़ गया था और दूसरे दिन सुबह पांच बजे से पहले ही वह और उसके दूसरे साथी अपनी अपनी जगहों पर गिरफ्तार हो गये। इन लोगों की गिरफ्तारी का प्रभाव मुझ पर भी गहरा पड़ा। उस समय मेरे भरोसे के साथी वे ही लोग थे।

मैंने एक बार फिर धन्वन्तरी से सब भेद भुला कर कोई एकशन कर डालने में सहयोग के लिए कहा। मेरा अस्तित्व अब इसी बात पर निर्भर करता था। धन्वन्तरी को मेरे ऐसे अनुरोध में मेरी अपनी स्थिति जमा लेने की भावना ही मुख्य जान पड़ती थी। यों वह लाहौर में अब्दुल अज़ीज पर चोट करने का पूरा यत्न कर रहा था परन्तु योजना जम न रही थी। मुझसे वह खुलकर बात न करता था। उसे सबसे अधिक भरोसा सुखदेवराज पर था। मुझे उसने जो कुछ बताया उस पर मेरी आपत्ति यह थी कि यों जान बचाकर दूसरे को मार लेने की योजना पूरी नहीं होगी। मेरे बोलने का ढङ्ग जरूर कड़वा था लेकिन बात ठीक थी। उन लोगों ने नहर के किनारे खानबहादुर की मोटर पर एक बार गोली चला भी दी लेकिन परिणाम सतर्कता बढ़ जाने के अतिरिक्त कुछ न हुआ। मैं बार-बार कहता था कि सुखदेवराज की योजना में कायरता से अपनी

जान बचाने की बात पहले है, वह कभी पूरी न होगी। धन्वन्तरी को सुखदेव की बुद्धि, साहस और निष्ठा पर वास्तव में गहरा विश्वास था और यह भ्रम दूर होने में अभी पूरे दो मास शेष थे।

दो-तीन दिन बाद धन्वन्तरी ने साफ-साफ बात की। हम लोग तुम्हारे साथ काम नहीं कर सकते। तुम्हारे पंजाब में रहते दल में एकता भी सम्भव नहीं। दोनों को ही परस्पर शिकायतें थीं। फिर एक बार केन्द्रीय समिति के सामने मामला पेश किया जाने का विचार हुआ। हम दोनों देहली आये। भैया को फिर बुलाया गया। कैलाशपति के बयान के अनुसार यह बैठक फैक्टरी में ४ सितम्बर को हुई थी। धन्वन्तरी ने फिर मुझ पर आरोप किया कि मैं अपनी प्रतिष्ठा जमाने के लिए दल में निरंकुशता और मनमानी किए जाने का दोष लगा रहा हूं। सभी को कायर बताता हूं और कहता हूं कि दल ने मुझसे माफी माँगी है। ऐसी अवस्था में उसके लिए काम कर सकना असम्भव हो गया है। उसने मुझे दल से पृथक कर देने पर जोर दिया। कैलाशपति ने उसका समर्थन किया।

मुझ पर आरोप लगाकर मुझे शूट कर देने का निर्णय दल के साथियों को बताने वाले जिम्मेवार साथी अब विकट परिस्थिति में थे। वे यही कह सकते थे कि यशपाल ने अपराध स्वीकार करके क्षमा माँग ली है। स्थिति को सम्हाल लेने के लिए किस प्रकार की बातें कही जाती थीं, इसका उदाहरण मुखबिर मदनगोपाल के अदालत में दिए बयान से लग सकता है। मदनगोपाल ने बयान में कैलाशपति की बतायी हुई बात इस प्रकार कही थी—"......मगर चूंकि यशपाल भेस बदलने में, बम का मसाला तैयार करने में और पार्टी के मेम्बरान को आर्गनाइज करने में माहिर है और पंजाब का सबसे बड़ा कारकुन है इसलिए उसकी कमजोरी को नजरअंदाज किया जा रहा है। अगर उसने अपने चाल-चलन की इसलाह न की तो फिर सैन्ट्रल कमेटी से इजाजत लेकर उसे मार दिया जायगा।" * मेरा कहना था कि मुझ पर लगाये गये आरोप क्षमा कर देने योग्य नहीं है। अपराध प्रमाणित हों तो मैं क्षमा दण्ड नहीं चाहता हूँ। मैं अपराध स्वीकृति और क्षमा मांग लेने की बात का विरोध करता था।

अपने सम्मान के विचार से मैंने बहुत आग्रह किया कि मामला

---

* लाहौर षडयंत्र के मुकद्दमे में मदनगोपाल का अक्षरशः बयान।

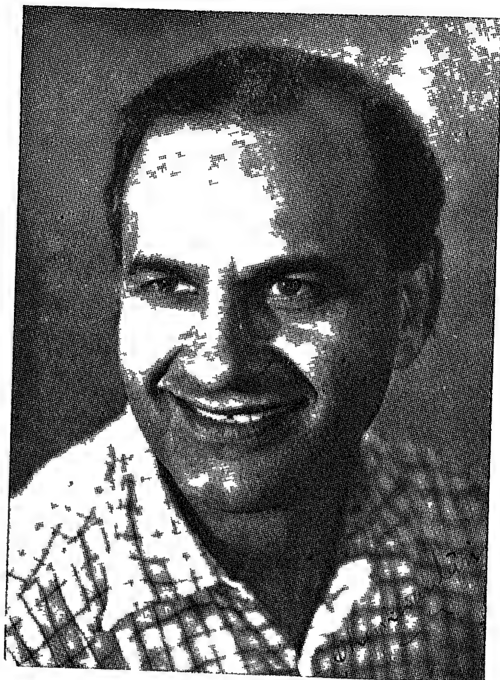
केन्द्रीय समिति के सामने रखा जाय, किसी एक व्यक्ति का निर्णय कुछ अर्थ नहीं रखता। भैया को इस बात पर बहुत क्रोध आ गया। झुंझला कर बोले—"कहां है केन्द्रीय समिति ? जब तक यह न पता चले कि केन्द्रीय समिति में विश्वासघात करने वाले कौन हैं, केन्द्रीय समिति को मैं मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। जिसे मुझ पर विश्वास नहीं, वह जो चाहे करे ?"—मुझे चुप रह जाना पड़ा।

धन्वन्तरी और कैलाशपति दोनों ही के मुझे दल से पृथक कर देने का आग्रह करने पर भैया ने दल को ही तोड़ दिया। इस बार धन्वन्तरी और कैलाशपति ने मुझे दल में रख कर काम करने के बजाय दल को तोड़ दिया जाना ही स्वीकार कर लिया। भैया ने बिहार, यू० पी०, पंजाब, दिल्ली और मध्यप्रान्त-महाराष्ट्र और मेरे लिए हथियार बराबर-बराबर बाँट दिये। मैं इस समय किसी प्रान्त का प्रतिनिधि न था परन्तु उन्हों ने अपने निर्णय से मुझे बराबर हिस्सा देने के बाद एक बहुत अच्छा रिवाल्वर और भी दिया और खिन्न स्वर में कहा—"सोहन को हथियार देना लोगों को अनुचित लगेगा परन्तु मैं जो उचित समझता हूँ, कर रहा हूँ। दूसरे लोग जाने हथियारों का क्या करेंगे लेकिन सोहन जरूर उनका उपयोग करेगा।"—धन्वन्तरी के मन में भैया के लिये इतना आदर और विश्वास था कि मेरे प्रति घृणा और वैमनस्य होने पर भी उसने कोई आपत्ति न की। दल टूट गया। मुझे बहुत ग्लानि थी कि इस दुर्भाग्य का प्रकट कारण मैं ही बन रहा हूँ परन्तु उपाय न था।

दल मे धन्वन्तरी और कैलाशपति के अतिरिक्त बच्चन, विमल आदि और लोग भी ऐसे थे जो मेरे आचरण से अप्रसन्न थे। मुझ पर लगाये गये अधिकांश आरोपों की चिन्ता न कर उनकी दृष्टि में मेरा एक ही अपराध, प्रकाशवती के साथ पत्नी का सम्बन्ध स्थापित कर लेना, काफी था। क्रान्ति का काम करने के लिए त्याग और संयम का जो आदर्श उनके मस्तिष्क मे था, उसके अनुसार मेरा व्यवहार उन्हें लज्जाजनक जंच रहा था। ऐसे ही व्यवहार या शायद इससे भी भयंकर अपराध, दल से सहानुभूति रखने वाले किसी व्यक्ति की स्त्री से अनुचित सम्बन्ध रखने के कारण तीन-चार वर्ष पूव दल का एक साथी आपटे लखनऊ में शूट भी कर दिया जा चुका था।

हि० स० प्र० स० के साथियों का दृष्टिकोण नारी और प्रेम के सम्बन्ध में अपने से पहले के क्रान्किारियों से बहुत कुछ बदल चुका

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के दो महत्वपूर्ण कार्यकर्ता



धन्वन्तरी काला पानी की सजा के बाद



इन्द्रपाल लकवे की बीमारी में जेल से रिहाई के बाद

था। यह लोग नारी को नरक का द्वार और उसके ध्यान और चर्चा को घृणा की वस्तु या पाप न समझते थे। विपरीत इसके नारी की दलित अवस्था के प्रति सहानुभूति और समाज पर उसके ऋण के कारण नारी को पूजा और आदर की ही वस्तु मानने लगे थे। यह व्यवहार बहुत कुछ रोमन कैथोलिक ईसाइ ब्रह्मचारियों जैसा था जो नारी की कल्पना मसीह की पवित्र कुमारी माता के रूप में कर पूजा की भावना स्थापित कर उसका आदर तो करते हैं परन्तु नारी-संग को अमार्जनीय या मौलिक पाप (ओरिजिनल सिन) मानते हैं। वे प्रेम को स्वार्थ से ऊंचा उठाने वाली स्वाभाविक प्रवृत्ति मानते थे परन्तु संयम का बन्धन सफल बनाये रखने के लिए प्रेम को अतीन्द्रिय रूप में अनुभव कर लेना ही संस्कृति और संयम समझ रहे थे। नारी के प्रति प्रेम या आकर्षण को जीवन के व्यवहार में आने देना इनकी दृष्टि में अपराध था। मेरा या मेरे जैसे कुछ साथियों का दृष्टिकोण इस विषय में भिन्न था। हम लोगों ने क्रान्ति के प्रयत्न को जीवन भर का कार्यक्रम मान लिया था। उस काम को करते हुए जीवन की स्वाभाविक अनुभूतियों या अवश्यकताओं को भी, यदि वे मार्ग में अड़चन न बनें तो उनसे घबराते न थे। जिनकी भावना इस प्रकार की न थी, उन्हें मेरा व्यवहार दल के लिये कलंक जान पड़ा

इस घटना के बाद मैंने अपने व्यवहार पर बार-बार विचार किया। मुझे यह स्वीकार करने का कोई कारण न मिला कि मैंने प्रेम के कारण अपने क्रांतिकारी कर्तव्य के प्रति कभी कोई अवहेलना दिखाई है परन्तु उस समय प्रश्न कर्तव्य के प्रति अवहेलना का नहीं बल्कि एक अनुचित काम कर देने का था। उस समय के अधिकांश क्रांतिकारी साथी मेरे दृष्टिकोण से सहमत न थे परन्तु आधुनिक क्रान्तिकारी मेरे उस समय के दृष्टिकोण से सहमत जान पड़ते हैं। अपने जीवन के व्यक्तिगत लक्ष्यों और सीमाओं को छोड़कर जो लोग पिछले दस-पन्द्रह वर्षों से कम्युनिस्ट पार्टी म काम कर रहे हैं, उन्हें मैं उनके लक्ष्यों के अनुसार क्रांतिकारी ही समझता हूँ। मैं ही नहीं, उन के घोर विरोधी भी उन की लगन और कर्तव्य निष्ठा को अस्वीकार नहीं कर सकते। इन क्रान्तिकारियों ने अपने जीवन के अनुभव से यह स्वीकार कर लिया है कि क्रांतिकारी उद्देश्य क प्रति सतत् निष्ठा बनाय रखने के लिए जीवन को यथासम्भव स्वाभाविक रखना या प्रेम की परिणिति को भी

स्वाभाविक अवसर देना ही उचित है। कम्युनिस्ट पार्टी के स्त्री-पुरुष कार्यकर्त्ताओं में परस्पर प्रेम और विवाह सम्बन्ध स्वीकार कर लेना ही नैतिकता की रक्षा का मार्ग समझा जाता है।

धन्वन्तरी ने आज तक क्रांति के ध्येय के प्रतिपूर्ण निष्ठा का प्रमाण दिया है। १ नवम्बर १९३० के दिन दिल्ली में गिरफ्तारी के बाद वह जेल में बराबर लड़ता रहा। उसने 'कालापानी' काटा और वहां क्रांतिकारी दल के प्रगतिशील साथियों के साथ वैज्ञानिक और संगठित मार्क्सवादी मार्ग पर काम करने के लिए अध्ययन करता रहा। जेल से छूटने पर स्वास्थ्य खराब होते हुए भी वह लगन से महत्वपूर्ण काम कर रहा है। यह सब ठीक है परन्तु क्रांतिकारी काम को अपनाये रह कर भी १९५० में जब वह लखनऊ आया था, उसने मुझे जलन्धर पहुँचकर अपने विवाह में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया था। वह विवाह प्रेमिका की भावना बदल जाने के कारण नहीं हो पाया परन्तु प्रेम को जीवन में व्यवहारिक रूप से चरितार्थ कर सकने के सम्बन्ध में धन्वन्तरी का दृष्टिकोण और आदर्श बदल चुका है, इसमें सन्देह नहीं। कैलाशपति ने इस विषय में जो कुछ किया वह यथाप्रसंग कहूँगा

कुछ लोगों की धारणा है कि भारतीय कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक संबन्धों अथवा यौन आचार में संयम को कोई महत्व नहीं देते, वे उच्छृङ्खलता के समर्थक हैं। यह धारणा भ्रम है। जिन लोगों का कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ताओं से परिचय है वे उनके संयम की प्रशंसा ही करेंगे। जिन्हें ऐसा अवसर नहीं मिला, वे कम्युनिस्ट पार्टी की निरन्तर बढ़ती शक्ति, संगठन और प्रभाव से स्वयं ही समझ सकते हैं कि उच्छृङ्खलता के पथ पर चलने वाले अपने कर्तव्य के प्रति कभी निष्ठावान नहीं रह सकते। अंतर है वास्तव में दृष्टिकोण का और सामाजिक संबन्धों की नैतिकता को यथार्थ के आधार पर मान्यता देने का। यह स्वीकार करने में मुझे कोई झिझक नहीं कि भारत के आधुनिक क्रान्तिकारियों (कम्युनिस्टों) का नैतिक दृष्टिकोण हिसप्रस के साथियों की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी है। इस प्रगति का आधार है आंख मूंद कर परम्परागत आदर्श की उपासना न करते रह कर नैतिकता को यथार्थ भौतिक परिस्थितियों के अनुकूल निश्चित करना।

हिसप्रस से पहले के क्रान्तिकारियों और हिसप्रस के साथियों का दृष्टिकोण प्रेम और यौन आचार के सम्बन्ध में अति आदर्शवादी और

भावुकता पूर्ण होने का कारण उनकी विशेष परिस्थितियाँ ही थीं। क्रांति के उद्देश्य से संगठनों का वह आरंभिक काल था। उस समय क्रांति के प्रयत्नों के रूप में किसी एक घटना विशेष (एक्शन) को पूर्ण कर देने के लिए ही दल का संगठन बनता था। उस घटना के पूर्ण या विफल हो जाने पर संगठन भी प्रायः बिखर जाता था और फिर नये सिरे से संगठन का आयोजन आरम्भ होता था। संगठन के रूप में आन्दोलनों की अवधि बहुत ही संक्षिप्त होती थी या किसी एक सदस्य के कार्यक्रम में भाग ले सकने का समय बहुत संक्षिप्त होता था। आज़ाद के शब्दों में एक बार जमाया दल अठारह महीने से अधिक नहीं चल सकता था। कुछ समय के भीतर एक काम को पूरा कर डालने के लिए प्राणायाम की सी एकाग्रता आवश्यक होती है। संक्षिप्त अवधि तक किसी अस्वाभाविक तनाव को निबाह भी दिया जा सकता है। हिसप्रस के क्रांतिकारी प्रयत्नों की अवधि पहिले क्रांतिकारी संगठनों की अपेक्षा बहुत लम्बी थी। लम्बी अवधि या कार्यक्रम को देर तक निबाह सकने की आवश्यकता ने ही हम लोगों की नैतिक धारणा को व्यवहारिकता की ओर ढालना शुरू कर दिया था। कम्युनिस्टों के सामने ऐसी परिस्थितियाँ और कारण और भी स्थूल रूप में आये। कम्युनिस्ट पार्टी के अनेक कार्यकर्त्ता दस और पन्द्रह वर्ष से अपने कार्यक्रम को उसी क्रांतिकारी लगन से निबाह रहे हैं जिस लगन से हिसप्रस से पहले के क्रांतिकारी छः महीने या बरस भर काम करते थे और हम लोगों ने दो-तीन वर्ष तक किया। इसी परिस्थिति ने कम्युनिस्टों के दृष्टिकोण को यथार्थवादी बना दिया और उन्हों ने अपने संगठन की नैतिकता को यथार्थवादी और व्यवहारिक रूप देना आवश्यक समझा।

एक प्रश्न जो उस समय मुझे परेशान करता था और जिस पर मैं अब भी अनेक बार विचार करता हूं, यह था कि यदि मेरे व्यवहार को अपराध भी मान लिया जाये तो क्या दल के एक ही व्यक्ति का आचरण और व्यवहार पूरे दल को तोड़ देने के लिए काफ़ी हो सकता था? दल को हानि पहुँचाने का मेरा व्यवहार क्या दल के शेष साथियों की अपने दल को बचाये रखने की चेष्टा से अधिक सबल हो सकता था? इस प्रश्न का उत्तर मुझे यही मिलता है कि दल के सब साथियों की दल को बचाये रखने की चेष्टा उनके व्यक्तिगत प्रयत्नों के रूप में सामने आ ही नहीं सकी। दल में उनकी व्यक्तिगत चेष्टा के लिए अवसर ही न था।

उनकी सम्पूर्ण चेष्टा और शक्ति दल के नेताओं द्वारा दी गई आज्ञाओं को मान लेने या पूरा कर देने तक ही सीमित थी। जैसे फौजी अनुशासन के अनुसार सेना के सब सिपाही आज्ञा देने वाले अफसर के हाथ पांव ही बन जाते हैं, अपनी स्वतन्त्र सूझ और निर्णय खो बैठते हैं। उससे मिलता जुलता ही व्यवहार हमारे दल में था। यह व्यवहार एक सत्तात्मक व्यवस्था का प्रतीक है, जनवादी व्यक्तिगत क्रिया शीलता और स्वतन्त्रता का नहीं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति से समाज के लिए सूझ और प्रेरणा का स्रोत होने की आशा की जाती है।

मेरे विरुद्ध किया गया निर्णय यदि प्रजातांत्रिक ढङ्ग से किया जाता अर्थात् दल के साथियों को इस विषय में विचार कर अपनी-अपनी बात कह सकने का अवसर मिलता तो या तो ऐसा निर्णय ही न होता और यदि ऐसा निर्णय होता तो उसके विरुद्ध जाने की इच्छा और साहस किसी को न होता। आदर्श के रूप में हम लोग प्रजातन्त्र के सिद्धान्त का आदर करते थे। यह बात 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र' के नाम से ही स्पष्ट है परन्तु प्रजातंत्र ढङ्ग पर काम नहीं कर पा रहे थे। काम होता था एक गुट्ट के रूप में। कैलाशपति ने अपने बयान में मेरे विरुद्ध जिस केन्द्रीय समिति में निर्णय होने की बात कही थी उसमें उपस्थित साथियों के नाम—आजाद, वीरभद्र, विद्याभूषण, कैलाशपति, सतगुरूदयाल अवस्थी और धन्वन्तरी बताये थे। मैं भैया और भगवती भाई द्वारा दल के पुनः संगठन के प्रसंग में केन्द्रीय समिति के सदस्यों के दूसरे नाम बता चुका हूँ। यह नाम थे —आजाद, भगवतीचरण, सेठ दामोदरस्वरूप, कैलाशपति और यशपाल। भगवती भाई, दामोदरस्वरूप और मेरी जगह विद्याभूषण, धन्वन्तरी और सतगुरदयाल अवस्थी का आ जाना किसी निर्वाचन अथवा जनमत के आधार पर न हुआ था। जैसे पहिली केन्द्रीय समिति हम लोगों ने आपस में गढ़ ली थी उसी प्रकार आवश्यकतानुसार दूसरी गढ़ ली गई। किसी भी केन्द्रीय समिति का कोई भी सदस्य अपने प्रान्त के साथियों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं था इसलिए यह सदस्य अपने प्रान्त के साथियों के प्रति कोई उत्तरदायित्व भी अनुभव न करते थे। प्रान्तों के सदस्य भी ऐसे संगठनकर्ताओं को अपने सिर पर थोपा हुआ मान सकते थे।

हमारा संगठन व्यक्तिगत सूत्रों द्वारा संगठित होता था। इसलिये हम एक दूसरे के प्रति जनवादी उत्तरदायित्व और अधिकार अनुभव

नहीं करते थे। यह हमारी सबसे बड़ी कमज़ोरी थी। एक नेता मात्र के निर्देश पर चलने वाले संगठन या आन्दोलन का ढङ्ग सदा ऐसा ही होगा। ऐसे उत्तरदायित्व की कमी ही हमारे साथियों की सब से बड़ी निर्बलता थी और संकट पड़ने पर दल के प्रति उनके विश्वासघात का कारण बन जाती थी। प्रत्येक साथी अपने व्यक्तिगत साहस और नैतिक बल पर ही निर्भर कर सकता था। दूसरी ओर कम्युनिस्ट कार्यक्रम के रूप में क्रान्तिकारी भावना का संगठन और विकास जनवादी रूप में हुआ है। कहीं भी तीन या अधिक कम्युनिस्ट होने से ही जनतांत्रिक रूप में उनका एक 'सेल' स्थानीय कमेटी बन जाना आवश्यक होता है। कम्युनिस्ट पार्टी में व्यक्ति का नहीं सेल का ही महत्व है। सेल ही व्यक्ति का महत्व और स्थान निश्चित करता है। यह सेल ही पार्टी में व्यक्ति की स्थिति और स्वतंत्रता की जमानत बना रहता है। कम्युनिस्ट पार्टी का प्रत्येक कार्यकर्ता अपनी व्यक्तिगत स्थिति और शक्ति को दल की शक्ति के रूप में देखता है। वह अपनी बात कह सकने के अवसर और न्याय के लिये दल के जनमत पर निर्भर कर सकता है। उसे किसी भी अवस्था में अपने आप को पीड़ित समझने का अवसर नहीं आता इसलिए संकट में पड़ने पर वह सामूहिक नैतिक बल पाकर विश्वासघात से बचा रहता है। तेलंगाना और आन्ध्र में हजारों कम्युनिस्टों के जेलों में सड़ते रहने और गोली मार दिए जाने पर भी उनका अपने दल के प्रति विश्वासघात न करने का यही कारण है।

यह कह देना भी अप्रासंगिक न होगा कि जनवादी दृष्टिकोण से हिसप्रस के आधुनिक क्रान्तिकारी आन्दोलन और संगठन की अपेक्षा पिछड़े हुए होने पर भी हिसप्रस का वातावरण और भावना अपने से पहले के क्रान्तिकारियों की अपेक्षा जनवादी था। कमाण्डर-इन चीफ के अधिकार से आजाद द्वारा केन्द्रीय समिति का निर्णय स्वयम् बदल देने का कारण उस निर्णय के प्रति अनेक साथियों के असंतोष की भावना को जान लेना ही था। अपने विरोधियों पर मेरा गोली न चला बल्कि बार-बार केन्द्रीय समिति के सामने या दूसरे साथियों के सामने अपना मामला रखने की मांग करना भी जनमत पर विश्वास और भरोसे के ही कारण था। काकोरी की घटना से पहले 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र दल' के क्रान्तिकारियों में, रामप्रसाद बिस्मिल और उनके प्रतिद्वन्दियों में एक बार ऐसा ही झगड़ा किसी कारण से उठ खड़ा हुआ

था। उस समय निर्णय के लिये जनमत की बात न सोची गयी थी। बल्कि सचमुच नदी किनारे जा परस्पर गोली चला कर ही फैसला कर लेना सम्भव समझा गया। हम लोग उस अवस्था में न थे। आजाद में तानाशाह की महत्वकांक्षा बिलकुल न थी। "मैं कुछ नहीं कहता, जैसा सब लोग कहें" या "आपस में तय कर लो" यह आजाद के अभ्यासगत मुहावरे थे, व्यवहार भी ऐसा ही था। परन्तु गुप्त संगठन का विकास और रूप ही ऐसा न था कि सभी निर्णय सदा जनवादी ढङ्ग से हो पाते।

वर्तमान क्रान्तिकारी आन्दोलन (कम्युनिस्ट पार्टी) की तुलना में हिसप्रस के साथियों की एक निर्बलता सैद्धान्तिक स्पष्टता की कमी थी। सिद्धान्त रूप से समाजवाद को हम लोगों ने लक्ष्य मान लिया था परन्तु उस लक्ष्य का परिचय हमारे अधिकांश सदस्यों के मस्तिष्क में बहुत धुन्धला था। समाजवाद के प्रति हमारा आकर्षण विचारात्मक की अपेक्षा भावात्मक ही था। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि इस लक्ष्य का जो कुछ परिचय हमारे दल में था वह पंजाब के साथियों के प्रभाव से ही। पंजाब के सभी साथियों के लिये यह बात भी समान रूप से नहीं कही जा सकती। आतिशीचक्कर के अवसर पर इन्द्रपाल की लिखी घोषणा केवल विदेशी सत्ता से विद्रोह और राष्ट्रीय भावना की ही पुकार है। अधिकांश में हमारे दल की प्रेरणा विदेशी सत्ता का विरोध ही थी। विदेशी सत्ता के विरोध की भावना सर्वसाधारण में मौजूद होते हुए हमारे दल में अधिकतर ऐसे ही लोगों के आकर्षित होने की सम्भावना थी जो अपनी मध्यवर्गीय या निम्न-मध्यवर्गीय स्थिति में जीवन की विषमताओं को उग्र रूप में अनुभव कर रहे थे और जिनमे साहस की मात्रा सर्वसाधारण से कुछ अधिक थी। विदेशी सत्ता के विरुद्ध आमरण संघर्ष की भावना का मुख्य पहलू विध्वंसात्मक था। हम लोगों की विचारधारा में यह पहलू उग्र होने पर भी निर्माणात्मक पहलू, समाज के नव निर्माण की भावना उतनी सबल न थी जितनी आज के एक साधारण कम्युनिस्ट कार्यकर्ता में पायी जाती है। इसी निर्माणात्मक भावना से बल ग्रहण कर साधारण कम्युनिस्ट कायकर्ता भी अधिक धैर्य का परिचय दे पाते हैं।

आजाद और कुछ साथियों ने विदेशी सत्ता के विरोध को ही प्राणपन से ग्रहण कर अपने अस्तित्व को उसी में डुबो दिया था। यह

बात उनके जीवन की दो घटनाओं से स्पष्ट है। सत्रह वर्ष की आयु में सत्याग्रह आन्दोलन में उनका सजा पाना। आयु कम होने के कारण उस समय उनके हाथों में लगाई गई हथकड़ियां ढीली चूड़ी की तरह हाथों से बाहर निकल आती थीं। उन्हें जेल में रखने लायक न समझ कर केवल बारह बेंत लगा देने की सजा दी गई। बारह बेंत का अर्थ है—कपड़े उतार, हाथ पांव टिकटिकी पर बांध चूतड़ों पर इस प्रकार बेंत लगाना कि खाल फट जाय। आजाद ने आह-ऊंह किये बिना होंठ काट कर बेतों की मार सह ली थी परन्तु बेतों की इस मार ने विदेशी सत्ता के प्रति घृणा और विरोध उनके मन में कितना गहरा बैठा दिया होगा; यह समझा जा सकता है। आजाद के जीवन की दूसरी घटना थी काकोरी केस में फरार होकर उनका अपने साथियों को फांसी लग जाने का समाचार सुनना। उस समय आजाद ने आंखों में क्रोध के आंसू भर एक तोड़ेदार बन्दूक बिस्तर में बांध काकोरी के मुकद्दमे की तहकीकात करने वाले अफसर को गोली मार कर स्वयं मर जाने की तैयारी कर ली थी। साथी कठिनता से ही उन्हें धैर्य से काम लेने के लिये समझा सके थे।

दिल्ली में दल भंग के बाद ही कुछ दिन तक कानपुर में और फिर इलाहाबाद में आजाद को ऐसे साथियों के साथ रहने का अवसर मिला जिनसे वे समाजवाद के सम्बन्ध में काफी विचार विनिमय कर सकते थे और उस का प्रभाव भी उन पर गहरा पड़ा। मैंने और हमारे अधिकांश साथियों ने मार्क्सवाद का भरोसे लायक अध्ययन अपनी गिरफ्तारियों के बाद जेलों में ही किया।

समाजवाद को हिसप्रस के साथी यदि वैज्ञानिक रूप में नहीं तो भावना से काफी दृढ़ता से पकड़े हुए थे। काकोरी के साथियों की अपेक्षा उनकी समाजवादी प्रेरणा विशेष उग्र थी। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि हमारे साथियों में से कोई भी जेल से लौट कर कांग्रेस के पूंजीवादी संगठन में न सट पाया परन्तु काकोरी के अनेक साथी बड़े उत्साह से कांग्रेस को जनवादी संस्था मान सहयोग दे रहे हैं। हिसप्रस के साथियों में से केवल दुर्गा भाबी और सुशीला जी ने ही कांग्रेस के कार्यक्रम को अपनाने की चेष्टा की ? ज्यों ही कांग्रेस विदेशी सत्ता विरोधी संयुक्त मोर्चे का रूप छोड़ समाजवादी प्रवृतियों के प्रति असहिष्णु हो गई, दुर्गा भाबी एक समय दिल्ली प्रान्तीय कांग्रेस की

प्रधान होने के बाद भी कांग्रेस से अलग हो गइ। सुशीला जी ने अलबत्ता कांग्रेस से सम्बन्ध बनाये रखने का यत्न जारी रखा। इसका कारण भी स्पष्ट है। वे भावुकता के उबाल से हमारे दल में आ तो अवश्य गई थीं परन्तु उनकी सैद्धान्तिक स्पष्टता कितनी थी, इसका प्रमाण मुझे मिला १६३८ में अपनी रिहाई के बाद। संयोगवश मैं दिल्ली गया था और स्वर्गीय कम्युनिस्ट साथी बहालसिंह के साथ सुशीला जी से मुलाकात करने गया। सुशीला जी की एक बात तब से याद है। शायद बहालसिंह को ताना देने के लिये ही हो, उन्हों ने कहा था—"मुझे तो एक ट्यूटर रख कर समझना होगा कि सोशलिज्म है क्या?"—यह सुन कर खेद ही हुआ कि बेचारी व्यर्थ ही इतने दिन 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन ऐसोसियेशन' की सदस्य बन जाने के कारण परेशान रही होंगी परन्तु यह भी समझ में आया कि क्यों वे हमारे कार्यक्रम को आधे रास्ते से साथ छोड़ अलग हो गई थीं। यदि हिसप्रस के अधिकांश साथियों के विचारों और व्यवहार को ही हिसप्रस की विकास दिशा का संकेत माना जाये तो उसे हम किसी न किसी रूप में कम्युनिज्म की ओर ही झुका पाते हैं। जिन लक्ष्यों को हिसप्रस ने भावात्मक रूप से अपनाया था उनसे पथ भ्रष्ट न होने पर यही परिणाम अनिवार्य था।

दल के टूट जाने से हम सभी दुखी थे परन्तु दल टूट ही गया। भैया को स्थिति सुलझाने का और कोई उपाय दिखाई न दिया। मुझे अपनी स्थिति ही सब से असहाय जान पड़ी क्योंकि अभिन्न रूप से मेरा साथ देने वाले लाहौर के निम्न-मध्यम वर्ग के प्रायः सभी साथी एक ही हल्ले में गिरफ्तार हो गये थे। अत्यन्त निराशा अनुभव हो रही थी। उस निराशा में केवल एक ही सूक्ष्म सा अवलम्ब था, भैया की अंतिम बात—"सोहन, इस समय और कुछ नहीं हो सकता। यह तो निश्चय है कि अपनी जान बचाने के लिए पान-बीड़ी की दुकान खोल दिन नहीं काटेंगे। जब भी कुछ करने की बात सोचो, मेरा भरोसा करना।"—उन्हों ने दिल्ली और कानपुर में उन से सम्बन्ध स्थापित कर सकने के लिए दो पते बता दिये।

श्री यशपाल द्वारा लिखित कहानी संग्रह

वो दुनिया

"Yashpal is a rebel to whom art comes natural यशपाल विद्रोही है परन्तु कला उसके स्वभावगत है।......यह कहानियाँ संसार की अच्छी कहानियों के संग्रह में ऊँचा स्थान पाने योग्य हैं।"—नेशनल हैरल्ड। मूल्य २)

ज्ञानदान

"विधाता ने लेखक को प्रतिभा और शक्ति मुक्तहस्त हो कर दी है। कोरे परिश्रम से यह कला सम्भव नहीं। हिन्दी कथा साहित्य अभी तक लेता हो रहा है। राम कृपा से अब ऐसी रचनाओं के कारण वह देने योग्य भी हो गया है।—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त। मूल्य २)

फूलो का कुर्त्ता

"अपनी लाज बचाने के विश्वास में अपना दामन उठा कर मुंह ढक लेने वाला समाज कैसे उघड़ता जा रहा है ?" यह इन कहानियों से स्पष्ट है। मूल्य २)

तर्क का तूफान

इन कहानियाँ का विषय कहानी संग्रह के नाम से ही बहुत कुछ व्यक्त है यह कहानियों के तीव्र यथार्थ का परिचायक है। २॥)

अभिशप्त

इस संग्रह की अनेक कहानियाँ अंग्रेजी में अनूदित होकर इस के लेखक का परिचय हिन्दी से बाहर पहुँचा चुकी हैं। इस संग्रह की 'दासधर्म, 'आदमी का बच्चा, 'शम्बूक' आदि कहानियाँ दलित वर्ग की अदम्य और स्थायी पुकार है। मूल्य २)

भस्मावृत्त चिन्गारी

इस संग्रह की कहानियाँ में यशपाल ने कला के लिये कला के मिथ्या विश्वास की विकट आलोचना की है। यह कहानियाँ कला और जीवन के अटूट सम्बन्ध को निर्विवाद रूप से स्पष्ट कर देती हैं। मूल्य २)